गुरु घंटाल

अनुवादक

पं० केदारनाथ भट्ट, एम० ए०

प्रकाशक

काशी

प्रथम संस्करण

१९४६ ई०

मूल्य तीन रुपये

मुद्रक—ह० मा० सप्रे,
श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, जतनबर, काशी।

निवेदन

हिंदी पाठकों के मनोविनोद के लिए मिर्ज़ा रुसवा साहब के उपन्यास 'ज़ात-शरीफ़' का अनुवाद प्रस्तुत है। इससे पहले उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'उमराव जान अदा' का अनुवाद प्रकाशित हो चुका है।

रुसवा साहब का स्थान उर्दू-साहित्य में बहुत ऊंचा है और उनके उपन्यासों का बड़ा आदर है। लखनऊ के वास्तविक जीवन का चित्र खींचने में रुसवा साहब किसी प्रकार 'फ़िसाना आज़ाद' के अमर लेखक पं० रतन नाथ 'सरशार' से कम नहीं हैं और कहीं कहीं तो उनकी कला ऐसे जीते-जागते दृश्य अंकित करने में सफल हुई है कि पाठक बिलकुल मुग्ध हो जाता है।

इस उपन्यास के पात्र लखनऊ के हैं और इसी कारण यथा-साध्य उनकी बोली की रक्षा करने का प्रयत्न किया गया है। साथ ही साथ इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि हिंदी-पाठक लेखक के भाव समझ सकें। उर्दू का रंग रखते हुए भाषा को बिलकुल हिंदोस्तानी का लिबास पहनाने की चेष्टा की है।

मुझे विश्वास है कि हिन्दी पाठकों का इस उपन्यास से काफी मनोरंजन होगा।

केदारनाथ

गुरु घंटाल

हमें यह बातें बचपन में मुअल्लिम ने सिखाई हैं
बुराई में भलाई है, भलाई में बुराई है।

गर्मियों के दिन, सुबह का वक्त है। अभी सूर्य क्षितिज से ऊपर नहीं आया। ठंडी हवा चल रही है, जो लोग गर्मी के मारे रात भर करवटें बदल-बदल कर तड़पा किये हैं उनकी आँखों में नींद का खुमार भरा हुआ है मगर कारबार की ज़रूरतों ने बिस्तर से उठाकर बैठा दिया है। कोई हुक्का भरने की फ़िक्र में है, कोई हाथ-मुँह धो रहा है, कोई कपड़े पहन रहा है, कोई ईश्वर का नाम लेकर घर से नौकरी की तलाश में निकला है। बाज़ारों में चहल-पहल है। खोंचेवाले गलियों में चीख़ते फिरते हैं। बाज़ नींद के माते अभी तक सो रहे हैं और देर तक सोवेंगे। हज़रत अब्बास की दरगाह के पास वजीरबाग़ को जो सड़क जाती है, उस पर थोड़ी दूर चलकर दाहिने हाथ को जो गली मुड़ी है, इसी गली में चंद क़दम के फ़ासले पर कच्चा अहाता है और इस अहाते में चंद मकान हैं। एक में तो हकीम साहब रहते हैं। उनका दरवाज़ा उत्तर की तरफ़ है। दरवाज़े के पास एक छोटा सा कमरा है। इस कमरे में हकीम साहब मरीज़ों को देखते हैं। इसके आगे चबूतरा है, उस पर सायेबान पड़ा है। चबूतरे से मिला हुआ एक इमली का दरख़्त है। यहाँ दो तीन कुर्सियाँ और पाँच-चार मूँढ़े पड़े हुए हैं। अभी हकीम साहब घर से निकलकर एक कुर्सी पर बैठे हैं। आदमी ने हुक्का भरके सामने रख दिया

है। हकीम साहब ने हुक़्क़े के दो ही एक कश पिये होंगे कि दो साहब और अपने-अपने घरों से निकलकर बाद मामूली दुआ सलाम और मिज़ाजपुर्सी के, सामने मूँढ़ों पर आ बैठे। उनमें से भी एक साहब के हाथ में डेढ़ खुम्मा हुक़्क़ा है, खूब सुलगा हुआ।

हकीम साहब—मीर साहब, वल्लाह, आपका हुक़्क़ा तो इस वक़्त क़यामत कर रहा है, ग़ज़ब ढ़ा रहा है।

मीर साहब—(हुक़्क़ा हकीम साहब के सामने लाकर) लीजिये, मुलाहिज़ा फ़र्माइये, शौक़ कीजिये।

हकीम साहब—जी तो योहीं चाहता था। तो फ़िर (अपने हुक़्क़े की तरफ़ इशारा करके) यह हुक़्क़ा।

मीर साहब—मुझे इनायत कीजिये।

हकीम साहब—खुदा जाने नबीबख्श (खिदमतगार) किस तरह हुक्का भरते हैं। डेढ़ पहर हो गया, अभी तक सुलगा ही नहीं।

नबीबख्श—(होठों-होठों में मुस्कराकर) ए, हुज़ूर, अभी तो भरके रक्खा है। भारी तवा है, सुलगते सुलगते सुलगेगा। लाइये फूँक दूँ। अगर ऐसी ही जल्दी है तो सुल्फ़ा ही भरवा लिया कीजिये।

नबीबख्श हुक्के से चिलम उतारकर चले ही थे कि मीर साहब ने चिलम हाथ से ले ली।

मीर साहब—अब क्या हुक्के को ग़ारत करोगे। देखो मैं दुरुस्त किये देता हूँ।

हकीम साहब—आप न तकलीफ़ फ़र्माइये, दुरुस्त हो जायगा। (नबीबख्श की तरफ़ आँख से इशारा किया। नबीबख्श चिलम लेने को बढ़े ही थे कि)

मीर साहब—नहीं तुम रहने दो, मैं दुरुस्त कर लूँगा।

दारोग़ा साहब—(दूसरे साहब जो अभी तक चुपके बैठे थे) यह मुमकिन नहीं। अब मीर साहब चिलम की जान न छोड़ेंगे।

हकीम साहब—इसमें शक नहीं कि जैसा शौक़ हुक़्क़े का हमारे जनाब मीर साहब को है ऐसा भी कम होता है।

दारोग़ा साहब—क्यों न हो, अफ़ीम के शौक़ में ख़ास चीज़ है।

हकीम साहब—इसमें तो शक नहीं। अफ़ीमची जैसे हुक़्क़े के गुण-ग्राहक होते हैं और कोई नहीं होता।

दारोग़ा साहब—गुण-ग्राहक न कहिये, नब्ज़ पहचानने वाले कहिये। हुक़्क़े की देख-भाल भी इन्हीं के हिस्से में है।

मिर्ज़ा साहब—(एक और साहब जो अभी आकर सामने दारोग़ा साहब के क़रीब कुर्सी पर बैठ गये हैं) यों कहिये हुक़्क़े के हक़ में मसीहा हैं।

मीर साहब—वाह वाह ! जीते रहो।

हकीम साहब—(मुस्कराकर) दुरुस्त, ठीक।

दारोग़ा साहब—मीर साहब के लतीफ़े तो क़यामत के होते हैं, ग़ज़ब की बात कहते हैं। यह मसीहा के वास्ते 'जीते रहो'। क्या ख़ूब।

मतलब यह कि दोनों चिलमें तबीयत के माफ़िक़ धुवाँ देने लगीं। हुक़्क़े कौड़ियाँ गिनने लगे। इतने में हकीम साहब के घर से ख़ास-दान आया। सब ने पान खाये। महफ़िल का रंग जम गया। मामूली मज़ाक़-दिल्लगी के बाद गंभीर विषयों पर बातचीत होने लगी।

इन पृष्ठों के देखने से पाठकों को मालूम हो जायगा कि गंभीर विषयों से हमारा अभिप्राय क्या है।

हकीम साहब—कहिये, दारोग़ा साहब, आपकी सरकार में क्या कैफ़ियत है।

दारोग़ा साहब—मेरी सरकार कैसी? सरकार तो परलोक-वासी नवाब साहब के दम तक थी। अब हम कोई चीज़ नहीं। अब और ही लोगों का क़ब्ज़ा है।

मिर्ज़ा साहब—बेगम साहिबा को आपका बड़ा एतबार था, क्या वह भी ख़िलाफ़ हो गईं?

दारोग़ा साहब—नहीं, ख़ुदा उनको सलामत रक्खे। अभी तक तनख़्वाह दिये जाती हैं, मगर लोगों को इसकी भी शिकायत है। देखिये, मगर मैं तो कहता हूँ कि इस बेकसी की हालत से बेहतर है कि पूरी-पूरी बेतरफ़ी हो जाय, बिलकुल ही अलग कर दिये जायँ। पंद्रह रुपये में मेरा होता ही क्या है।

हकीम साहब—यह क्यों?

दारोग़ा साहब—हकीम साहब, अब उस सरकार में रहना सरासर बदनामी है।

हकीम साहब—छोटे नवाब साहब का क्या हाल है?

दारोग़ा साहब—कुछ न पूछिये। कुछ कहा नहीं जाता। चंट लोग घुसे हुए हैं। उन्होंने अपने रंग पर चढ़ा लिया है।

हकीम साहब—यह कहिये बेगम साहिबा का भी कहना नहीं सुनते!

दारोग़ा साहब—बेगम साहिबा क्या चीज़ हैं। इस हालत में बड़े नवाब साहब भी क़ब्र से उठकर चले आवें तो उनकी भी कुछ न सुनी जायगी।

मिर्जा साहब—बशर्ते कि नोट छोटे नवाब साहब ही के तहत में हों।

हकीम साहब इसमें क्या शक है। यह सारी खुद-सरी (मन-मानी) इसी की तो है मगर वह तो अभी नबालिग़ हैं।

मिर्जा साहब—नबालिग़ हैं तो क्या हुआ, जालियों ने तो महाजन लगा रक्खे हैं। खूब छनाछन रुपया उड़ रहा है।

दारोग़ा साहब—जी ,हाँ खुदा की क़ुदरत है।

हकीम साहब—तो यह सरकार भी मिटी, अच्छा तो यह कहिये, बेगम साहिब को क्या मिला।

दारोग़ा साहब—क्या मिला ? नवाब साहब के वसीक़े में से सवा दो रुपये तीन आने चार पाई। तीस हज़ार के नोट हिस्से में आये। बेगम साहिबा को इसकी क्या परवाह है। वह अपने घरसे खुश हैं। मुर्शिदाबाद से जो चाहें मँगा लें। मगर मुर्शिदाबाद की आमदनी का हाल किसी को मालूम नहीं।

हकीम साहब—और बेटे से कैसी पटती है ?

दारोग़ा साहब—बहुत चाहती हैं मगर उनकी हरकतों से दुःखी हैं।

हकीम साहब—इतना मैं कहे देता हूँ कि एक न एक दिन बिगड़ेगी जरूर।

दारोग़ा साहब—जी हाँ, इसमें क्या शक है, जबतक छोटे नवाब साहब अपनी हरकतों से बाज़ न आ जायँ।

हकीम साहब—(मुसकराकर) दारोग़ा साहब, हमें बेगम साहिब के पास नौकर रखवा दीजिये।

दारोगा साहब—(बात का पहलू समझकर) जी नहीं, वह ऐसी बेगम नहीं हैं जैसी और इस शहर की बेगमात हैं। बड़ी सख्त हैं।

हकीम साहब—आप कोशिश तो कीजिये।

दारोगा साहब—(किसी क़दर रूखे बनकर) मुझे आपने कभी ऐसी कोशिश करते देखा है ?

मिर्जा साहब—इसमें शक नहीं कि हमारे दारोगा साहब जिस सरकार में रहे, साफ़ रहे।

हकीम साहब—क्या मैं नहीं जानता ? हँसी से कहता हूँ।

बातचीत का सिलसिला यहाँ तक पहुँच पाया था कि हकीम साहब के दवाख़ाने में कुछ मरीज़ आ गये। ज़रूरत-मंदों के तक़ाज़े शुरू हुए। हकीम साहब को अपना ध्यान उनकी तरफ़ देना पड़ा।

दारोगा साहब, मीर साहब, मिर्ज़ा साहब बीमार तो थे ही नहीं, इसलिये अपने-अपने घरों में चले गये। हकीम साहब कमरे में जा बैठे। नब्ज़ और क़ारूरा (पेशाब) देख-देखकर नुस्ख़े लिखने लगे।

इस मौक़े पर हम हकीम साहब का हुलिया बतलाये देते हैं, जिससे पाठक जहाँ-कहीं देखें, उनको पहचान लें। मध्यम क़द, गेहुआँ रंग, स्थूल, नाक नक़्शे में किसी तरह बेहूदापन, गोल चेहरा आँखें किसी क़दर छोटी, उम्र चालीस के कुछ ऊपर। इसी हिसाब से तोंद का फैलाव और गोलाई समझ लीजिये। मगर अपनी सूरत शक्ल पर हद से ज़्यादा नाज़ाँ (अभिमानी) थे। प्रायः दर्पण मुख के सामने रखकर देखा करते थे। किसी क़दर धर्म की पाबंदी मिज़ाज में थी, इसलिये दाढ़ी मुंडवाई तो न

जाती थी मगर इतनी महीन कतरवाते थे कि अगर खुर्दबीन से देखी जाय तो भी कठिनता से दिखलाई पड़े। मूँछों में सफेद बाल बहुत थे कि उनको चुनते-चुनते नाई की नाक में दम आ जाता था। खिज़ाब की कई बार सलाह दी गई मगर उसकी नौबत अभी तक न आई थी। या तो कोई बढ़िया नुस्ख़ा (परीक्षित प्रयोग) अभी तक हाथ नहीं आया था या यह कि हकीम साहब उसको बुढ़ापे की निशानी समझते थे और बालों की सफेदी एक अनावश्यक चीज़ थी। अभी हकीम साहब की उम्र ही क्या थी। अच्छी अच्छी पोशाक पहनने में भी हकीम साहब ज्यादा ध्यान देते थे। कपड़ेवाली गली तक जाने की नौबत न आती थी। मगर जब कोई टुकड़ा जामदानी का या जामेवार या कोई चिकन की चौगोशिया टोपियाँ, किसी मशहूर कारीगर के हाथ की, या सूफ़ियाना गुलूबंद, जब किसी फेरीवाले के हाथ लग जाता था, वह पहले हकीम साहब ही को दिखाता था। कपड़ों की क़िते-बज़ो का भी अच्छा सलीक़ा था। अच्छे अच्छे दर्ज़ी उनके कपड़े ब्योंतते हुए घबराते थे। अँगरखा, जिसकी चोली बाँकपन की वज़ो में बढ़ से बढ़ हो उसकी काट को हकीम साहब से बहतर कोई नहीं जानता था। यह सब सामान इसलिये था कि आपको मालदार औरतों को फँसाने का निहायत शौक़ था। आपकी हिम्मत मर्दाना हर वक्त इस तरफ़ लगी रहती थी कि कोई वसीकेदार बेगम फँस जाय ताकि बुढ़ापा चैन से कटे। अकसर जगहों पर डोरे डाले जाते थे मगर अभी तक कोई सोने की चिड़िया जाल में न फँसी थी।

नवाब मुख्तारउद्दौला की ड्योढ़ी लखनऊ में कौन नहीं जानता। कुछ ज्यादा ज़रूरत पता देने की नहीं। बक़ौल इमा-

मन महरी के पूछते-पूछते आदमी लंदन तक पहुँच सकता है। यह तो हमारे मकान से चार ही क़दम के फ़ासले पर है। चलो इस वक़्त वहीं चलें।

क्या आलीशान मकान है। इसको बने हुए अभी थोड़े ही दिन हुए होंगे। बनने कहाँ पाया! नवाब की ज़िंदगी ने वफ़ा न की, साथ न दिया। बनते-बनते रह गया। मगर किस सलीके से बनवाया था। क्या शानदार फाटक है। सामने चमनबंदी (फुलवारी-बाग़) किस क़यामत की है! दाहनी तरफ़ दीवान-ख़ाना किस ख़ूबसूरती से बनाया गया है। बाग़ के दरमियान जो बारहदरी है, वह बनते-बनते रह गई। बाईं तरफ़ ज़नानी ड्योढ़ी पर दो दरबान बैठे बैठे-हुक़्क़ा पी रहे हैं। यह बड़े मियां, जो सामने तिपाई पर बैठे हुए कुछ बड़बड़ा रहे हैं स्वर्गीय नवाब के बड़े नमक-हलाल नौकरों में से हैं। इन्होंने छोटे नवाब को गोदियों में खिलाया है। मियां करीम ख़ां इन्हीं का नाम है।

यह महलसरा का पर्दा उलटकर छप से कौन बाहर निकल आया। बी इमामन महरी यही है। बेगम साहिबा की ख़ासुल-ख़ास। "शायद इन्हीं से अंदर का कुछ भेद मिले तो मिले।" यह फ़िक़रा जनाब हकीम साहब का था। यह रात के नौ बजे का वक़्त, हकीम साहब यहाँ कहाँ?

बात यह थी कि सुबह को दारोग़ा साहब से जिस बारे में छेड़छाड़ की थी, जिस पर दारोग़ा साहब नाराज़ हुए तो वह बात टाल दी गई। उसकी फ़िक्र हकीम साहब को बहुत दिन से थी। बड़े नवाब साहब के मरने के बाद आपको यह ख़ब्त सवार हुआ कि मालदार बेवा से किसी क़िस्म का ताल्लुक़, जायज़ या नाजायज़, पैदा करना चाहिये। आज इस वक़्त रात को इस

फ़िक्र में आये हैं कि किसी न किसी से कुछ भेद बेगम साहिबा का लेना चाहिये। मामला बहुत मुश्किल था और काम-याबी कठिन, मगर हकीम साहब को अपनी सूरत के सौंदर्य, अपने स्वभाव, शानदारी और खुश-वज़ाई पर पूरा भरोसा था। किसी दूसरे को इस मामले का भेद देना भी मंजूर न था इसलिये मौके वारदात की देखभाल करने के लिये खुद ही तशरीफ लाये हैं। एक नौकर पीछे-पीछे है। ज्योंही महरी दरवाजे से निकली, हकीम साहब ने आदमी की तरफ मुड़कर देखा। वह हाथ बाँधे हुए आगे को बढ़ा।

हकीम साहब—नबीबख्श।

नबीबख्श—हुजूर।

हकीम साहब—देखो इस महरी को पहचान लो।

नबीबख्श—(जरा जोर से) यह महरी। इसको तो मैं जानता हूँ।

हकीम साहब—मियां चुप रहो। कोई सुन न ले। हाँ यही महरी। तुम इसे क्या जानो ?

नबीबख्श—इससे आपको क्या मतलब। आपका काम किसी तरह हो जायगा।

अच्छा अब हकीम साहब और मियां नबीबख्श को यहीं छोड़िये। एक जरा छोटे नवाब साहब की महफ़िल का रंग देखिये।

इस वक्त दीवानखाने में विराजमान हैं। बैठने का कमरा दुलहिन की तरह सजा हुआ है। फ़र्श फ़रूश, शीशे आलात, जो चीज है लाजवाब है। तो इसमें छोटे नवाब साहब के सलीके और शऊर को कोई दख़ल है ? बड़े नवाब के बैठने का कमरा

है। अभी उनको इन्तक़ाल किये हुए दिन ही कै हुए। चालीसवाँ भी तो नहीं हुआ। दो चार महीने के बाद देखियेगा, इस बारहदरी में कुत्ते लोटते होंगे। यह हम क्या कहते हैं, हर समझदार कह सकता है। दर-दीवार से यही सदा आ रही है। ज़रा छोटे नवाब साहब के नौकरों और साथियों को देखिये। शहर के छटे हुए बदमाश जमा हैं और यह जो उन में दो-चार सूरतें नज़र आती हैं, खुदा उनसे बचावे। चार ही दिन में न यह मकान होगा न यह सामान। जिसके दम से यह रौनक़ थी वही दुनियां से उठ गया। छोटे नवाब को न अक़्ल न तमीज़, न कोई सलाह-कार उम्दा। दिन-रात जिन लोगों के घेरे में रहते हैं उनमें से हरएक चालाकी में यकता, अय्यारी में एक ही उस्ताद, जालसाज़ी में लासानी है। नवाब साहब को अपने आप कोई सलीक़ा सिवाय हाहा-हूहू करने के नहीं है। या यह कि दो-तीन दौर बरांडी के पी लिये, अंटा ग़फ़ील हो गये। या कोई रसीले नैनोंवाली नज़र पड़ गई तो उसे पाँच की जगह पचीस खर्च करके बुलवा लिया। थोड़े दिनों में दीवानी के जेलखाने में होंगे मगर इस वक़्त तो मौज उड़ा रहे हैं। जवानी का आलम है, शराब है, बाज़ारी लोगों की भीड़ है, लाओ लाओ की धूम मच रही है। एक ही दौर की कसर है। नवाब साहब खाक में मिला ही चाहते हैं।

अब ज़रा महफ़िल के अन्दर भी कुछ सुन-गुन लेना चाहिये।

महलसरा के सदर दालान में बेगम साहिबा सामने तख़्त की चौकी पर गाव तकिया लगाए बैठी हैं। किसी पर्दा-नशीन की शक्ल हूबहू बयान करने से क्या फ़ायदा? ऐसी बातों की फ़िक्र अगर हो तो हकीम साहब ऐसों को हो, हमें क्या ग़रज़? इतना

कह सकते हैं कि सूरत से मौरूसी अमीराना शान जाहिर है। रौब ऐसा है कि ऐसी वैसी औरत की मजाल नहीं कि सामने बग़ैर इजाज़त बैठ जावे या बात कर सके। लिबास बिलकुल सादा नफ़ीस, छछोरेपन से पूरी-पूरी नफ़रत, ख़ुदा का ख़ौफ़, बुज़ुर्गों की आबरू का ख़्याल दिल में समाया हुआ। इज्ज़तदार शौहर (पति) की मृत्यु से चेहरे पर उदासी छाई हुई, इकलौते बेटे की मुहब्बत के सहारे पर ज़िन्दगी ख़ुदा से लौ लगाए हुए, सामने मुसल्ला (नमाज़ की दरी) बिछा है, मग़रब की नमाज़ तो ठीक वक़्त पर पढ़ी थी पर इस वक़्त तक तस्बीहें (माला) पढ़ रही हैं। मुग़लानियां पेशख़िदमतें अपने-अपने काम पर मुस्तैद हैं। इतने में ख़ासेवाली ने आकर कहा, "हुज़ूर, ख़ासा तैयार है।"

बेगम साहिबा ने माला पूरी करके, "अरे कोई है, छोटे नवाब को बुला लाओ। क्या इस वक़्त भी ख़ासा घर में न खाएँगे।"

एक महरी दौड़ी हुई बाहर गई। थोड़ी देर के बाद आई तो यह ख़बर लाई।

महरी—हुज़ूर, छोटे नवाब के दुश्मनों की तबीयत अच्छी नहीं है। इस वक़्त ख़ासा न खाएँगे।

बेगम साहिबा—अरे, कैसी तबीयत है ?

महरी—हुज़ूर, यह तो नहीं मालूम।

बेगम साहिबा—जा, अभी अपनी आँख से देखकर आ।

महरी आगे बढ़ी थी कि इतने में छोटी अन्ना उठ खड़ी हुई। "हुज़ूर मैं जाती हूँ, आख़िर यह है क्या ? नवाब घर में

क्यों नहीं आते। आज तीन दिन हुए महल में नहीं आये।"

महरी ने पलटकर कहा, "अन्नाजी, आपके जाने का मौक़ा नहीं।"

बेगम साहिबा—क्यों ?

महरी—जी कुछ नहीं।

बेगम साहिबा—आख़िर साफ़-साफ़ कह। बात क्या है ?

महरी—हुज़ूर, ख़ैरसल्लाह है। मगर इस वक्त घर में शायद ही आवेंगे।

बेगम—आख़िर माजरा क्या है ? कहती क्यों नहीं ? और अन्ना को क्यों साथ नहीं ले जाती।

महरी—इस वक्त मौक़ा नहीं है।

बेगम साहिबा—कुछ कह तो, क्यों मौक़ा नहीं।

महरी ने कुछ होठों ही होठों में कहा जिसे बेगम साहिबा ने नहीं सुना।

बेगम साहिबा—हाय ! यह मेरे सामने इस तरह चबा-चबा-कर बातें करती है। मुर्दार की शामतें आई हैं।

महरी—हुज़ूर, अब मैं आपसे क्या कहूँ। वहाँ खचाखच मुर्दए भरे हैं। औरतज़ात का गुज़र नहीं।

बेगम साहिबा—अरे यह क्या कहा, 'औरत ज़ात का गुज़र नहीं।' क्या किसी ने तुझसे कुछ कहा।

महरी—कहा क्या, जान छुड़ाना मुश्किल हो गया। हुज़ूर, मैं आपके सदक़े ही जाऊँ। इज्जत नहीं दी जाती। मुझे दस-बारह बरस इस घर में हो गये। अंदर से बाहर तक किसी ने आधी

बात तक नहीं कही। आँख उठाके नहीं देखा। अब जैसे-जैसे नये आदमी छोटे नवाब (अल्लाह उनकी रक्षा करे) नौकर रखते जायँगे वैसी ही वैसी बातें होंगी। वह मुआ हबशी जो नौकर हुआ है, जब बाहर जाऊँ मुझे छेड़ता है। चाहे हुज़ूर नौकर रक्खें या न रक्खें, हुज़ूर मैं बाहर न जाऊँगी।

बेगम साहिबा—यह कौन मुआ हबशी है। महलदार जाना तो ज़रा बाहर। देख तो करीम ख़ां ड्योढ़ी पर है। अभी निकालो इस मुए हबशी को। लो साहब, हमारे घर का नाम बदनाम होता है। अभी तो बड़े नवाब का चालीसवाँ भी नहीं हुआ और अभी से यह बातें ड्योढ़ी पर होने लगीं। ना साहब, ऐसे आदमियों का हमारे यहाँ काम नहीं।

महलदार ड्योढ़ी पर गई। करीम ख़ां को बुलाया।

महलदार—यह हबशी कौन नया नौकर हुआ है ?

करीम ख़ां—क्या तुम नहीं जानतीं।

महलदार—मैं मुए को क्या जानूँ।

करीम—अरे वही फ़ौलाद का नवासा मसऊद।

महलदार—फ़ौलाद का नवासा! मुआ दुनियाँ भर का उठाईगीरा। यह छोटे नवाब को हो क्या गया है कि ऐसे आदमियों को घुसेड़ते हैं। बेगम साहिबा ने हुक्म दिया है कि अभी घर से निकाल दो।

करीम—बहुत ख़ूब।

(यह 'बहुत ख़ूब' इस लहजे में कहा था कि महलदार समझे कि करीम ख़ां को इसमें कुछ हिचक है)

महलदार—बहुत खूब नहीं। तुम बेगम साहिबा का मिजाज जानते हो।

करीम—मेरी तरफ से हाथ जोड़कर अर्ज कर दो कि हुजूर मेरे निकाले नहीं निकल सकता। बुढ़ापे में मुझे अपनी आबरू देना मंजूर नहीं। वह योंही जब इधर निकल आता है, मुझ पर फबतियां छाँटता है, आवाजें कसता है। मैं गुमसुम सुना करता हूँ और चुप हो रहता हूँ। ऐसे गुर्गों के कौन मुँह लगे। मैं कुछ मुँह से कहूँ और वह उल्टी-सीधी सुनाने लगे तो मेरी इज्जत खाक़ में मिल जाय।

महलदार—अच्छा तो मैं योंही जाकर कहे देती हूँ।

करीम—बेशक यों ही कह दो, हम उसके मुँह न लगेंगे।

महलदार घर में गई और जो कुछ करीम खां ने कहा था सब बयान कर दिया। मुद्दतों से ऐसी घटना नहीं हुई थी कि बेगम साहिब का कोई हुक्म टला हो। खुद बड़े नवाब बेगम से डरते थे और उनका मिज़ाज भी इस क़िस्म का था कि जो मुँह से कहा वही किया। ज़मीन टल जाय, आसमान टल जाय उनका कहना न टले। फ़ौरन दूसरा हुक्म सादिर हुआ।

बेगम साहिबा—अच्छा तो जाओ, छोटे नवाब को बुला लाओ, अगर तबीयत ज्यादा ख़राब हो तो गोद में उठा लाओ और नहीं तो पर्दा करो, मैं खुद जाऊँगी।

महलदार यह हुक्म लेकर करीम खां के पास गई।

करीम खां—बुआ महलदार, इस हुक्म की तामील भी मुझ से नहीं हो सकती।

महलदार—करीम खां, यह आज तुम्हें हो क्या गया है जो

बात तुमसे कही जाती है टुकड़ा सा तोड़कर हाथ पर रख देते हो।

करीम खां--मैं सच कहता हूँ, इस वक्त मैं छोटे नवाब के पास नहीं जा सकता।

महलदार--क्यों ?

करीम खां--क्यों क्या, नहीं जाते।

महलदार--आख़िर कुछ सबब तो बतलाओ। बेगम तो मुझसे हिंदी की बिंदी पूछती हैं। यहाँ तुम हर बात का दो टूक जवाब दे देते हो। मेरी जान मुई आफ़त में है। हेरे फेरे करते करते टाँगें टूटी जाती हैं।

करीम--बुआ, मैं सच कहता हूँ, मेरे जाने का वहाँ मौक़ा नहीं। इससे ज़्यादा और क्या कहूँ।

महलदार--अच्छा तो पर्दा कराके बेगम साहिबा खुद जायँगी।

करीम--बेगम साहिबा के भी जाने का मौक़ा नहीं है।

महलदार--आख़िर क्यों ?

करीम--फिर वही क्यों। कह दिया मौका नहीं है।

महलदार--भला हुजूर इस बात को मानेंगी।

करीम--मानें या न मानें। मैंने जो बात असल थी, कह दी।

महलदार--तुम तो मुग्घम में कहते हो। कुछ खोलकर बात करो तो कोई समझे भी।

करीम खां--अच्छा, तो अब सुनो साफ़ साफ़। मैं तो चाहता हूँ मालिक की चुग़ली न खाऊँ और तुम जानती हो मुझसे छोटे नवाब से कैसी मुहब्बत है, मगर क्या कहूँ (एक

दोहत्थड़ मुँह पर मारकर) तक़दीर फूट गई। (इतना कहकर करीम खां रोने लगा)

महलदार--(हक्का-बक्का हो गई) आखिर माजरा क्या है। (घबराकर कहने लगी) कहो तो क्या है। आखिर तबियत कैसी है ?

करीम खां--(आँसू दामन से पोंछकर) अल्लाह के फज़ल से तबीयत अच्छी है।

महलदार--फिर क्या है ?

करीम--अरे कहता हूँ, तक़दीर फूट गई ! वहाँ इस वक्त नशे में सब ऊल-जूल बक रहे हैं। छोटे नवाब बेहोश पड़े हैं।

महलदार--क्या किसी ने फ़लक सैर खिला दी।

करीम--फ़लक सैर लिये फिरती हैं। वहाँ बोतलें उड़ती हैं।

महलदार--तो उनमें क्या नशा होता है। विलायती पानी की बोतलें बड़े नवाब के वक्त में आती थीं। मुझे एक दफ़ा खाना हजम नहीं हुआ था, बड़े नवाब ने मुझे सारी की सारी बोतल पिला दी। उसमें तो नशा-वशा कुछ नहीं था। और अगर नशा होता तो बड़े नवाब क्यों पीते। हमारी बेगम भी पीती हैं।

करीम खां--क्या नन्हीं बनी हो ! विलायती पानी नहीं, काला पानी।

महलदार--थूः थूः। ए है, क्या नवाब की सोहबत में कोई काला पानी पीता है ? यह मुआ हुसेनी पीता होगा।

करीम खां--सब पीते हैं।

महलदार--ऐहै, तो क्या छोटे नवाब भी पीने लगे।

करीम ख़ां—जी हाँ, इसीका तो रोना है।

महलदार—है है। ले भला अब हुजूर से क्या जाकर कहूँ।

करीम ख़ां—इसीलिये तो मैं नहीं कहता था।

महलदार—अरे वह सुन लेंगी तो पीटते-पीटते अपना बुरा हाल करेंगी।

करीम ख़ां—उनसे कहना मुनासिब नहीं है।

महलदार—(थोड़ी देर ठहर के) देखो करीम ख़ां, यह बात अच्छी नहीं। आख़िर एक दिन भेद खुलेहीगा। बेगम से कह देना ठीक है। यह घर की तबाही के लच्छन हैं। हमको तुमको ऐसी बातें नहीं चाहिएँ। बेगम साहिब के दुश्मनों पर जो कुछ गुज़र जाय गुज़र जाय, मैं तो कह दूँगी।

करीम ख़ां—मेरे जाने तो अभी न कहो।

महलदार—फिर कब कहूँ।

करीम ख़ां—अच्छा तुम्हें अख़्तयार है।

× × ×

दूसरे दिन सुबह को मियां नबीबख्श ख़रामा ख़रामा मुख्तारुद्दौला की ड्योढ़ी पर पहुँचे। कहीं टिकाव सहारा न मिला। पहले फाटक के इर्द-गिर्द हेरे-फेरे किया किये। आख़िर सामने एक फुल्केवाले की दूकान थी, यह वहीं पहुँचे। एक पैसे की फुलकियाँ लीं। गरम-गरम ताज़ी-ताज़ी फुलकियाँ पैसे की पाँच मिलीं, उनको खाया। उसके बाद तामलोट में बंबे से पानी लेकर पिया। फुलकेवाले का हुक्क़ा लेकर पीने लगे। थोड़ी देर के बाद इधर-उधर की बातें करके फुलकेवाले के यारग़ार बन गये। एक

पैसे की फुलकियां और खाईं। उस दिन बड़ी देर तक बैठे रहे, इमामन महरी घर से निकली ही नहीं। आखिर हताश होकर वापिस आये।

दूसरे दिन सुबह को फिर पहुँचे।

नबीबख्श (फुलकेवाले से)—भई क्या कहूँ, तुम्हारे फुलकों ने आज फिर खींच बुलाया। ले, देओ ना एक पैसे के।

फुलकेवाला—तो एक पैसे के क्या लेते हो। दो पैसे के तो लो। एक पैसे में तो कल्ला भी गरम न होगा।

नबी बख्श—अच्छा तो भई तुम्हारी खातिर दो ही पैसे के दे दो। मगर चार चटनी जरा ज्यादा देना।

फुलकेवाला—तो जितनी जो चाहे चटनी ले लो। यह कहकर चटनी की हंडिया सामने रख दी।

नबीबख्श—भई तुम्हीं अपने हाथ से लगा दो। मगर यार चटनी तो बासी मालूम होती है।

फुलकेवाला—वाह! बस इसी से तो जी जलता है। अभी सुबह को तो हमने पावभर खटाई पीसकर चटनी बनाई है। तुम कहते हो बासी है। मालूम हुआ आप चटनी पहचानने में बड़े मश्शाक़ हैं।

नबीबख्श—यह पहली हुई। आप चटनी के सौ बार मुझे कह लीजिये, मैं बुरा नहीं मानता।

फुलकेवाला—(एक जरा रूखा होकर) मैं भी दिल्लगी नहीं करता। दिल्लगी और दूकानदारी से बैर है।

नबीबख्श—तो क्या मैं कुछ बुरा मानता हूँ। आप सौ दफे

दिल्लगी कीजिये। मियां, यहाँ तो दिन-रात दिल्लगी में बसर होती है।

फुलकेवाला—अच्छा तो भई हम ठहरे दूकानदार। हमारी क्या मजाल जो गाहकों से दिल्लगी करें।

नबीबख्श—अच्छा तो हम ऐसे गाहक नहीं हैं। हम तो याराने के आशिक़ हैं। तुम्हारी फुलकियां वल्लाह ऐसी अच्छी मालूम हुईं। ज़रा एक घान ख़ूब खरा करके निकालो तो एक आने की हकीम साहब को लेता जाऊँ। अगर उनके मुँह लग गई तो दो एक आने की रोज़ मेरे हाथों मँगवाया करेंगे।

फुलकेवाला—(लड़का दूकान पर बैठा था उससे) अरे ज़रा हुक़्क़ा तो भर ले।

लड़का—उस्ताद, तम्बाकू तो नहीं है।

फुलकेवाला—तो ले क्यों नहीं आता, तंबाकू नहीं है, तंबाकू नहीं।

नबीबख्श—(चौसेरा तंबाकू तोप दरवाज़े से हकीम साहब के लिये ख़रीद कर लाये थे, वह उनके चादरे में बँधा हुआ था। फ़ौरन चादरा खोलके) लो, इसमें से भरो।

यह कहकर कोई डेढ़ छटाँक तंबाकू टिकिया से तोड़कर लौंडे को दे दिया। माले मुफ्त दिले बेरहम।

फुलकेवाला—नहीं भई तंबाकू को मँगवाए लेते हैं, यह ख़र्च न करो।

नबीबख्श—तो कुछ हमारे तुम्हारे ग़ैरियत है। बस यही तो मुझे बुरा मालूम होता है।

फुलकेवाला—अच्छा तो भई खुशी तुम्हारी। लेबे लौंडे ले ले। भर हुक्का जल्दी से (नबीबख्श से) दो पैसे रोज़ का तंबाकू मँगवाता हूँ। यह सब गाहकों के पिये जाता है या यह लौंडा उड़ाया करता है। मैं तो जब काम में लग जाता हूं, मुझे हुक्का पीने की वार नहीं मिलती।

नबीबख्श—सच है और जो तुम हुक्का पियो तो काम न खराब हो जावे। फिर यह फुलकियां कौन तले।

फुलकेवाला—जी हाँ, यह आँच का खेल है। एक ज़रा में बिगड़ जाता है।

नबीबख्श—बेशक। अजी बड़ा मुश्किल काम है। और भई, एक बात और कहूं, यक़ीन न आयेगा। बाजों के हाथ में भी मज़ा होता है। घर में तुम्हारी भावज से भी अकसर पकवा कर खाईं मगर यह मज़ा नहीं आता। अजी तुम्हें मालूम नहीं, मुझे कोई दस बरसें हुईं तुम्हारी दूकान से फुलकियां लेते।

एक और खरीदार—तीन बरस तो उन्हें दूकान किये नहीं हुए, तुम दस बरस से फुलकियां खरीद रहे हो।

नबीबख्श—दुरुस्त है। बारह बरस तो मुझे इन्हें देखते हुए हो गये।

ख़रीदार—अरे मियां, अल्लाह अल्लाह करो। इनको यहाँ दूकान किये हुए चार बरस से कुछ ऊपर हुए होंगे। यह बंबे जब निकले हैं, उसको कितने बरस हुए होंगे।

एक और आवाज़—कोई पाँच बरस हुए होंगे वहो (अल्लाह रक्खो) मेरी प्यारी की पैदा हुए कोई पाँच बरसें हुईं।

ख़रीदार—बी महरी, हाँ ठीक है। अच्छा तो पाँच छै बरस

हुए होंगे। अच्छा बी महरी, इनको यहाँ दूकान किये कितने दिन हुए होंगे।

महरी—भई कोई पाँच छै बरस हुए होंगे। अल्लाह रक्खे छोटे नवाब की बारहवीं साल गिरह लगी थी।

हसनू—हाँ, हाँ वह जब बारहदरी में नाच वाच हुआ था।

महरी—वह नाच वाच तो बड़ी शादी में हुआ था, जब तुम्हारी दूकान कब थी। वही मैं नई नई नौकर हुई हूँ, वही छोटे नवाब घोड़े पर चढ़े हैं।

खरीदार—मैंने तो पहले ही कह दिया, बंबे निकल चुके हैं उसके बाद इन्होंने दूकान रक्खी है।

महरी—अब तो मुझे याद नहीं, हाँ यही कोई पाँच छै बरसें हुई होंगी।

मियां नबीबख्श को अब इस इतिहास के सिलसिले से कुछ ज़्यादा ताल्लुक न रहा था क्योंकि इमामन महरी, जिसकी तलाश में यह दो दिन से फिर रहे थे, सामने खड़ी थी। मियां हसनू पहले खरीदार को फुलकियों का दोना बनाकर दे चुके हैं। वह अब सिर्फ़ एक कश हुक्के के मुंतज़िर हैं। हुक्क़ा मिया नबीबख्श के कब्ज़े में है। यह महरी के नख शिख में महव हैं और हुक्के पर कस कस कर दम डाल रहे हैं। फुलकी वाले की नज़र भी हुक्क़े की तरफ़ है मगर तंबाकू मियां नबीबख्श का दिया हुआ, इनको इस वक्त हुक़्क़े पर मालिक के समान अधिकार है। लौंडा बिलकुल ही हताश होकर सिल के पास मुँह बनाये बैठा बड़बड़ा रहा है। बी महरी फुलकियों की जल्दी कर रही है। मियां हसनूने अभी धान कढ़ाई में डाला है। अब यह इस फ़िक्र में हैं कि

पहले हुक्का पिऊँ या दोना बनाऊँ। अभी तक कोई राय क़ायम नहीं हुई। मियाँ नबीबख़्श का दम भी अब करारा नहीं पड़ता। उनकी तमाम तवज्जह इस तरफ़ है कि बी महरी से बातचीत की राह खुले। कोई उचित भूमिका अभी तब ख़याल में नहीं आती। जैसे जिस किसी से परिचय प्राप्त करना हुआ, उससे यह कहना कि 'मैंने आपको कहीं देखा है,' यह फ़िक़रा बहुत पुराना हो गया या जैसे उसे किसी फ़र्ज़ी नाम से पुकारा। जब उसने कहा कि 'मेरा नाम तो यह नहीं,' तो फ़ौरन पूछा, 'फिर क्या नाम'। जब उसने बताया तो कह दिया, 'हाँ हाँ, माफ़ करना, भूल गया था।' बाद उसके सही नाम लेकर उससे बातें करने लगे। इसमें ज़रा भी नई बात नहीं। या यह कि अगर किसी औरत से बात करनी हो तो किसी का नाम लेके पूछा, जैसे, 'अहमदख़ां अब कहाँ रहते हैं।' जब उस औरत ने कहा, 'मैं उन्हें क्या जानूँ,' तो आप हँसने लगे। इस सूरत में वह औरत ज़रा झेंपकर सोचने लगती है कि जिस शख़्स का नाम लिया जाता है, वह उसके जाने हुए लोगों में है या नहीं।

इस हालत में औरत बात को टालकर कोई और ज़िक्र शुरू कर देती है। ऐसे ऐसे सैकड़ों फ़िक़रे खिलाड़ियों के मँजे हुए होते हैं और इन सबसे चुस्त फ़िक़रा यह है कि जिससे बात करनी हो उसके हालात किसी तीसरे आदमी से दरयाफ़्त कर लिये और बहुत ही प्रभावशाली और शर्तिया तदबीर दोस्ती बढ़ाने की यह है कि जिस शख़्स से दोस्ती बढ़ानी हो, जब उससे किसी तीसरे से दिल्लगी होती हो तो, जिससे दोस्ती करनी है उसकी तरफ़ से अपने आप जवाब देने लगे। मगर यह तदबीर उस सूरत में चल सकती है जहाँ साथ बैठने का मौक़ा मिले या इससे बेहतर यह है कि अगर वह शख़्स किसी से बातें करता हो तो उसे ग़ौर से

सुनता रहे और उसमें नमक मिर्च लगाकर दिल में रख ले। दोनों सूरतों में कुछ न कुछ हाल उसकी पिछली ज़िन्दगी के मालूम हो जायँगे। बात करने का मौक़ा मिलने पर इस जानकारी से काम ले। इससे उसको यक़ीन हो जायगा कि बात करनेवाला उसके निजी हालात से किसी हद तक परिचित है। इससे बेतकल्लुफ़ी बहुत जल्दी हो जायगी। मियाँ नबीबख़्श ने इस तद्‌बीर से काम लिया। उधर तो हुक्क़ा, जो अब क़रीब जलने के था, मियाँ हसनू के हाथ में दे दिया और फ़ौरन महरी की तरफ़ मुत-वज्जह हुए।

नबीबख़्श—मैंने कहा तुम्हें तो कोई नौ बरसें तो हुई होंगी इस सरकार में नौकर हुए।

महरी—(पहले तो कुछ अचंभे में आई, इसलिये कि नबी-बख़्श का अन्दाज़ा बिल्कुल ठीक था। उन्होंने दिल ही दिल में हिसाब लगा लिया था कि बारहवीं साल की गिरह को पाँच बरस हुए। बड़ी शादी अकसर छठे सातवें साल हुआ करती है, इस हिसाब से नौ दस बरस होते हैं। महरी को अपनी पहले कही हुई बात याद रखने की कोई वजह न थी) हाँ, यही कोई नौ दस बरसें हुई होंगी।

नबीबख़्श—तो छोटे नवाब की मुसलमानी को नौ बरस हो गये। ऐ लीजिये, दिन जाते भी कुछ देर नहीं लगती। अभी कल की बात है।

ख़रीदार—(दौना हाथ में लेकर) जी हाँ, दिन जाते कोई देर नहीं लगती।

यह कहकर एक फुलकी मुँह में रक्खी और चलते हुए।

नबीबख़्श—कहिये अब सरकार का क्या हाल है?

महरी—अच्छा हाल है और क्या हाल है।

नबीबख़्श—अजी मेरा मतलब है कि किसी के आध सेर आटे का भी सहारा हो सकता है।

महरी—अल्लाह रक्खो, छोटे नवाब की सरकार में नित नये नौकर होते हैं। क्यों? क्या तुम कहीं नौकर नहीं हो।

नबीबख़्श—जी, मैं नौकर हूँ। मेरा भाई बहुत दिनों से यों ही बैठा है।

महरी—देखो मैं कहूँगी, मगर एक बात है ज़मानत देनी होगी।

नबीबख़्श—ज़मानत एक से हज़ार तक की खुद हमारे हकीम साहब कर देंगे।

महरी—कौन हकीम साहब।

नबीबख़्श—(इस वक्त नाम बतलाना ठीक न समझकर) वही हकीम साहब जो दरगाह के पास रहते हैं।

महरी—ऐ, तो नाम बताओ।

नबीबख़्श—(भोले बनके) भई नाम तो मुझे मालूम नहीं।

इस बात पर महरी ने जोर से एक क़हक़हा मारा। मियां हसनू भी मुस्कराये।

हसनू—अच्छी कही! लो साहब, यह नौकर हैं कि मालिक का नाम तक मालूम नहीं।

नबीबख़्श—(दिखलाने को खिसियाने से होकर) हमें नाम से क्या मतलब, काम से काम है। माशूर (मशहूर) हकीम हैं, सब हकीम साहब कहते हैं वही मैं भी कहता हूं।

महरी---अच्छा तो सामना करा दोगे।

नबीबख़्श---बरब्बर (बराबर)

महरी---अच्छा भई, नौकर तो मैं करा दूँगी पर एक महीने की तनख़्वाह लूँगी जो दस्तूर है। सारा जमाना जानता है। इसमें न ईरान चोरी न पीरान दग़ाबाज़ी।

नबीबख़्श---(बहुत गिड़गिड़ाकर) तो हम ग़रीब आदमी हैं, खायँगे क्या। आधी तनख़्वाह ले लेना।

महरी---(किसी क़दर बेपर्वाही से) दस्तूर के खिलाफ़ न होगा। अच्छा दो दफ़े करके दे देना।

नबीबख़्श---(बहुत गिड़गिड़ाकर) तो हम ग़रीब आदमी हैं, इतना न हो सकेगा। क्यों मियां हसनू, आदमी वह बात कहे जो हो सके।

हसनू---(मियां हसनू अपने घान की तरफ़ मुतवज्जह थे, एक फलकी जली जाती थी, उसे निकाल रहे थे। वह सीखचे से निकल कर कढ़ाही में गिर गई, बल्कि जलते हुए तेल की एक छींट भी उनके हाथ पर पड़ गई। उससे किसी क़दर झल्लाए हुए थे) भई, तुम जानो वह जानें। दस्तूर तो है। अभी मेरा भतीजा नौकर हुआ है, एक तनख़्वाह देनी पड़ी।

महरी---सभी देते हैं और भई एक दफ़ा में लूँगी। छोटे सरकार का कारख़ाना लखलुट। और तो मैं कुछ नहीं जानती, जो नौकर होगा मज़े करेगा। फिर मुझे कोई कुछ दिया करेगा।

नबीबख़्श---अच्छा तो मैं उन्हें कहाँ लेकर आऊँ।

महरी---ड्योढ़ी पर आना और कहाँ। इमामन महरी कह-कर पूछ लेना।

नबीबख़्श—तो नाम क्या मुझे मालूम नहीं। मैंने इस लिये कहा कि अमीर की ड्योढ़ी है, शायद कोई रोके टोके।

महरी—नहीं, तुम सीधे करीम खां के पास चले आना और मेरा नाम लेना, कहना मैं उनके पास आया हूं।

नबीबख़्श—अहहा। तो करीम खां अभी तक हैं?

महरी—हैं नहीं तो क्या। खुदा न करे, उनके दुश्मन···। क्या तुम उन्हें जानते हो?

नबीबख़्श—मैं उन्हें जानता हूं चाहे अब वह न पहचाने और क्या तुम्हें नहीं जानता या तुम मुझे नहीं जानतीं।

महरी—(पहले तो सूरत देखने लगी, मगर इस वक्त इस बात पर ज़िद करना जरूरी न था कि जान पहचान नहीं है) हाँ, आँ।

नबीबख़्श—और तनख़्वाह क्या होगी?

महरी—वही तीन रुपये महीना।

नबीबख़्श—और तनख़्वाह का क्या हिसाब है? महीने के महीने पटती है ना?

महरी—बड़े नवाब वक्त में तो महीने के महीने पटती थी, अब का हाल मालूम नहीं।

हसनू दोनों दोने तैयार कर चुके थे। लौंडे ने हुक़्क़ा फिर से भरा था। अब की मियां हसनू का इरादा था कि हुक़्क़ा खुद बेशिरकत और बिना किसी दूसरे को दिये हुए पियें क्योंकि दो बार ऐसा हो चुका था कि जब हुक़्क़ा भरा गया था मियां नबीबख़्श ने पीकर जला दिया। बाद को मियां हसनू तक पहुँच पाया। अगरचे तंबाकू मियां नबीबख़्श का सही, मगर फिर भी एक इनसान कहाँ तक सब्र कर सकता है।

हसनू—भई, तुम भी कितने हुज्जती हो। घर घोड़ा नख़ास मोल। पहले अपने भाई को लाओ। मालिक का सामना करादो। बातचीत जो कुछ होना होगी, हो जायगी। अभी से निकाह की सी शर्तें करते हो—इससे फ़ायदा।

नबीबख्श—(अब ज्यादा ठहरना और बातों को तूल देना ऐसा जरूरी न था) सच कहते हो। अच्छा तो मैं उन्हें कल नहीं तो परसों लेकर आ जाऊँगा।

महरी—जब जी चाहे।

दोनों अपने अपने दौने लेकर रवाना हो गये। तोप दर्वाजे से हजरत अब्बास की दरगाह तक ज्यादा से ज्यादा दस मिनट तक की राह होगी लेकिन हमारे मियाँ नबीबख़्श साहब मामूली तौर से एक घंटे में पहुंचा करते थे। कुछ ऐसे सुस्त रफ़्तार (धीरे चलने वाले) भी न थे। बात यह थी कि आपको हुक्के से बेहद शौक़ था। कुछ रास्ते पर मौक़ूफ़ नहीं, हर गली कूँचे में आपके हुक्का पीने के सैकड़ों ठेके थे। जैसे इस राह में हसनू की दूकान से फलकिमां खाते हुए चले फ़ैज़ू गंधी की दूकान पर ठेका लिया। यहाँ पानी पिया। उसकी दूकान से तम्बाकू लेके हुक्का भरा। दो चार कश पिये। हुक्का फ़ैज़ू के हवाले किया। आगे बढ़े। आगे रज्जब कुँजड़े की दूकान मिली। उससे तीन पैसे की अरबियाँ लीं। यहाँ भी हुक्का पीना जरूर है। आगे बढ़े। तम्बाकू वाले की दूकान मिली। यहाँ एक बड़ा जंगी हुक्का हर वक्त भरा रहता है। आने जाने वालों पर वाजिब है कि जब उधर से गुज़रे, एक दो कश पी लिये। और चार क़दम आगे बढ़े। चाय वाले की दूकान मिली। यहाँ फ़र्ज़ कीजिये कि चोरी से खुफ़िया अफ़ीम बिकती है। यह सतर स्टेशन है। यहाँ कम से कम आध

घण्टे ठहरना जरूरी है। दो पैसे की पुड़िया अफीम की ली, घोलकर पी। एक पैसे के बिस्कुट और एक पैसे की प्याली चाय की पी। खुद ही हुक्का भरा, खूब जी भर के पिया। अब ताजे दम हो गये। ऐसे ही समझ लो, सैकड़ों मौक़े हुक्का पीने के हर जगह मिल सकते थे। हर दूकान पर हुक्का पीने का सहल उसूल यह था कि अकसर लोग हुक्के के शौक़ीन होते हैं मगर अपने हाथ से भरना पसंद नहीं करते। मियाँ नबीबख्श को इसमें ख़ास मलका (अभ्यास) था। बहुत ही फुर्ती से हुक्का भरते थे। मगर इस गुण के साथ इतना दोष भी था कि अगर दूसरा पीने वाला ग़फ़लत करे तो बहुत ही जल्द जता भी देते थे। हकीम साहब इनकी इन हरकतों से नाराज़ रहते थे। मगर खुफ़िया कारवाइयों में बगैर इनके काम ही नहीं चल सकता था। इस वजह से यह हकीम साहब की जिंदगी का मियाँ नबीबख्श एक ज़रूरी हिस्सा बन गये थे। यह हकीम साहब के ख़ास खिदमतगार थे। इनके अलावा एक बुड्ढा आदमी गुलामअली दरवाज़े पर और था। चार कहार नाम मात्र के लिये नौकर थे। तफ़सील इसकी यह है कि मकान के दरवाजे पर कहारों का अड्डा था और यह कोई ज़रूरी बात न थी कि हर शख्श इस बात को जानता हो कि इन कहारों में से कोई हकीम साहब का नौकर नहीं है। चारों वर्दियाँ अलबत्ता एक दफ़ा बनवाना पड़ी थीं। जब कहीं जाने की ज़रूरत हुई, वर्दियाँ पहना दीं, सवार हो गये। जब वहाँ से आए, क़िराया दे दिया, वर्दियाँ ले लीं। किराया जो मरीज़ों से वसूल होता था उसे मियाँ नबीबख्श अपने पास रखते थे। घर पर आकर मुनासिब किराया कहारों को दे दिया गया तो खैर, वरना किराया मय फ़ीस बेगम साहिब की तहवील में दाखिल हुए। बेगमात के फँसाने के शौक़ के

सिवाय हकीम साहब को मुक़दमेबाजी में भी बहुत बड़ा दख़ल था। शहर में जिस कदर भारी भारी जाली मुक़दमें दायर होते थे, उनकी कौंसिल में आपका शरीक होना जरूरी समझा जाता था। शहर के बाज़ वकील जो बहुत चलते पुर्जे समझे जाते हैं और अकसर जाली मुक़दमे मोल लिया करते हैं, उनसे दोस्ताना मरासिम थे। अच्छे मोअज़िज़ झूठे गवाह मुहैया करने और उनको हम्वार कर लेने में आपको ख़ास मलका था। दवाख़ाने के वक्त के बाद से रात के बारह बजे तक आपके घर पर तमाम शहर के छटे हुए जालियों का जलसा रहता था। झूठे वारिस पैदा करना, सच्चे जायज़ वारिसों को नाजायज़ क़रार देना, जाली दस्तावेजें बनाना, अदालत से मिसलों का उड़वा देना, झूठी रजिस्ट्रियाँ कर देना, ग़रज़ कि आप अपना नज़ीर (सानी) न रखते थे।

इस क़िस्म की तरतीबी कारवाइयाँ, जो किसी ख़ास मनसूबे में कामयाब होने के लिये जरूरी हों, इस क़िस्म के मनसूबों में मामूली तौर से मुफीद हों, एक ख़ास सिलसिले और इन्तज़ाम के साथ हमेशा जारी रहती थीं। आपके ख़ास दोस्त, जिनमें हर एक जालसाजी के किसी न किसी सीरे में पहुँचा हुआ था, अपने अपने काम में लगे रहते थे। इन सब में एक बुजुर्गवार दस्तख़त बनाने वाले थे जो शहर भर के जालियों के पीर मुर्शद (गुरु-घंटाल) थे। (इनको हम आगे के सफ़हों में मुर्शद के नाम से याद करेंगे और इसी तरह उनके बड़े बेटे को ख़लीफ़ा कहेंगे) आपकी हकीम साहब के हाल पर ख़ास मेहरबानी थी। अकसर तशरीफ लाते थे। अकसर नये नये बनाये हुए मुक़दमें सलाह के वास्ते उन्हें सुनाये जाते थे। मुश्किल मामलों में जो

पेच दर पेच कठिनाइयाँ पड़ जाया करती हैं उनका सुलझाना व हल करना उन्हीं के सुपुर्द था। अगरचे मुर्शद को इन बातों से, जैसी कि शान पहुँचे हुए लोगों की हुआ करती है, अब फ़रागत (निश्चिन्तता) हासिल थी, लेकिन अकसर फ़रेबी कारखाइयों में निस्वार्थ होकर यथाशक्ति कृपा करते थे। बुढ़ापे की वजह से अब आपने नई कारखाइयाँ बन्द कर दी थीं। जालसाज़ी के हुनर में आप अपने ज़माने के उमर अय्यार थे। आपकी कारस्तानियाँ अगर लिखी जायँ तो कई बड़े-बड़े पोथे तैयार हो जायँ। इस छोटे से उपन्यास में इसकी गुंजायश नहीं, मगर जहाँ तक आप का हकीम साहब के मामलों में दख़ल होगा उसे हम लिख देंगे। मगर अब बुढ़ापे की वजह से किसी नये मामले मुक़-दमे का इन्तज़ाम पैरवी अपने बलबूते पर न लेते थे। लेकिन इस हुनर (फ़न) से आपको यहाँ तक प्रेम हो गया था कि नये-नये जालिओं के बड़े-बड़े कामों के बारे में सब हाल सुनने का आपको ख़ास शौक़ था। इसलिये जहाँ बैठे-बैठे जी घबराया किसी नामी वकील के मकान पर चले गये। कभी हकीम साहब के पास चले आए। एक मौलवी साहब आपके बड़े यारग़ार थे। उनसे घड़ी भर सोहबत रही। खुलासा यह कि अपने समय को ऐसी ही दिलचस्पी व इत्मीनान के साथ गुज़ार रहे थे। यह कैसे मुमकिन था कि हकीम साहब "मुरशद" कामिल से अपने मनसूबे को न कहते। मगर हमको यह पक्की तौर से मालूम हुआ है कि मुरशद-कामिल की राय इस मामले में हकीम साहब के ख़िलाफ़ थी। मुरशद-कामिल के दो एक गुर्गे छोटे नवाब की सरकार में लगे हुए थे और घड़ी घड़ी की खबर मुरशद को पहुँचती रहती थी। मगर इस क़दर ध्यान सिर्फ़ एहतियात या शौक़ की वजह से था वरना इस सरकार से मुर-

शद को कुछ ज्यादा ताल्लुक़ न था। मगर खलीफ़ा जी को ताल्लुक़ था, इसलिये गोया कि इन्हीं को ताल्लुक़ था। इसके हालात भी पाठकों को मालूम हो जायँगे। मगर अब हकीम साहब खुद ही अपनी पक्की राय रखते थे। लिहाजा मुरशद की खास पैरवी इस काम में कुछ जरूरी न थी और न मुरशद ही को उन्हें अपने मन की करने से रोकने पर जिद थी। दिल में जो कुछ हो उसे ऐसे पक्के आदमी फाँसी पर भी मुँह से नहीं निकालते।

× × ×

इमामन महरी ने मोहम्मद बख्श (नबीबख्श का भाई) को छोटी सरकार में नौकर रखवा दिया। नबीबख्श ड्योढ़ी पर आने जाने लगे। इमामन से रब्त-जब्त बढ़ाने की फ़िक्र हुई। फुलकीवाले की दूकान पर अब बैठने की जरूरत न रही थी, मगर बात यह है कि मियां करीम खां कुछ ऐसे खुश्क मिजाज के आदमी थे कि नबीबख्श की लस्सानी ने उनपर कोई असर न किया। उनकी आँखों से दूर रहे आने का इशारा ही नहीं टपकता था बल्कि साफ़ तौर से ऐसा ही मंशा उनका जाहिर होता था। वह इस बात को क़तई पसंद न करते थे कि ड्योढ़ी पर ग़ैर आदमी दम भर भी ठहरे।

मियां करीम खां भी हुक्क़ा पीते थे मगर मिजाज में एह-तियात इस क़दर थी कि न किसी का हुक्क़ा खुद पीते थे और न अपना हुक्क़ा किसी को देते थे। प्यासे को पानी पिलाने का कष्ट उठाना धर्म का आदेश है मगर यह कष्ट उठाना वह जरूरी न समझते थे क्योंकि प्यासों के लिये सबीलें लगी हुई थीं।

छोटे नवाब के नये नौकरों से उनको कोई मतलब न था। न उनको किसी के पास जाने की जरूरत थी और न उनके पास कोई फटकता था। महल के नौकरों में अगर उनको किसी से खुसूसियत (विशेषता) थी तो वह बी महलदार थीं। और किसी से ज्यादा मेल जोल न था। महल की तमाम औरतों पर उनका रोब छाया हुआ था। लड़के उनसे डरते थे बल्कि उनका नाम लेकर डराये जाते थे। मियां नबीबख़्श दो एक बार ड्योढ़ी पर गये और करीम खां साहब से बहुत कुछ आपसदारी जाहिर की मगर वह किसी तरह न पसीजे। हर बात का ऐसा दो टूक जवाब देते थे कि अपना सा मुँह लेकर रह जाते थे। पहले रोज़ उन्होंने भाई करीम खां कहकर उन्हें बुलाया मगर उन्होंने कुछ इस तेवर से उनकी तरफ़ घूर के देखा कि दुबारा भाई करीम खां कहने की हिम्मत न हुई।

खुलासा बात यों है कि एक फलकीवाले के दूकान के सिवा और कोई जगह जमने की उन्हें नजर नहीं आई। मोहम्मद बख़्श के नौकर हो जाने के बाद इमामन से इनका मामला खतम हो चुका था मगर इनको तो इमामन से बहुत कुछ काम निकालना था, इसलिये फलकीवाले की दूकान पर दिन में दो एक बार इनको जाना जरूरी था। इमामन की उम्र अब ऐसी न थी कि उनपर कोई आशिक़ होता। जवानी को रुख़सत हुए एक मुद्दत गुजर चुकी थी। अगरचे यह अभी तक हर बात में जवानी की 'कसम' (क़सम) खाया करती थीं।

सुनते हैं यह किसी जमाने में बहुत फैयाज (उदार) थीं मगर अब इस गुण को दिखलाने का कोई मौक़ा न रहा था। अफ़सोस अगर बी इमामन का वह जमाना होता तो नबीबख़्श

को शायद अपने उद्देश्य में सफल होने के लिये दिक्क़त न उठानी पड़ती। फ़ौरन आशिक़ों में नाम लिखवा कर कृतकृत्य होते मगर अब बहुत कुछ भूमिका बाँधने की ज़रूरत थी। मतलब भी कठिन था। फ़ौरन ज़ुबान से उसे कह डालना सहल काम न था। इमामन के शील-स्वभाव से एक बात ख़ास तौर से पहले दिन की बातचीत से ही नबीबख़्श समझ गये थे यानी वह खरापन जो उसने नौकर रखवाने पर एक महीने की तनख़्वाह लेने पर ज़ाहिर किया था। यह मालूम हो चुका था कि इमामन रुपये की तरफ़ से ऐसी बेपरवाह नहीं है। रही यह बात कि रुपया बटोरने का शौक़ किस हद तक है, आया उसमें जायज़ और नाजायज़ का ख़याल भी है या नहीं, इमामन की ज़ाहिरी वज़े और पहनने ओढ़ने से इतना ज़रूर समझ पड़ता था कि चार रुपया महीना ख़ुश्क, इससे यह ठाठ नहीं हो सकता। गुलबदन का लहँगा, सासरलेट की गोट, घुटनों से ऊपर हल्की तनज़ेब का डुपट्टा बादामी रँगा हुआ, नेंनू की कुर्ती, हाथों में चाँदी के मोटे मोटे कड़े, चाँदी की चूड़ियाँ, उँगलियों में अंगूठियाँ, कानों में चाँदी के पत्ते बालिया, सोने की बिजलियाँ, पाँव में मोटे मोटे कड़े छड़े, पाँव की उँगलियों में छल्ले, आपका लिबास और जेवर कुछ मामूली औरतों का सा न था। हर चीज़ ख़ास इन्तज़ाम से बनवाई हुई थी कि आप मामूली से ज़्यादा मोटी ताज़ी थीं। सूरत ज़ाहिरी को देखकर मालूम पड़ता था कि ख़ुराक भी आपकी टट्टू के रातब से कुछ कम न होगी। चौड़ी थाली जैसा मुँह, स्याह चमकीली जिल्द, चौड़ी सी नाक, छोटी छोटी सी आँखें, उनमें काजल फैला हुआ, धँसा हुआ था, मोटे मोटे होंठ, हाथों में मेंहदी लगी हुई, भर भर हाथ चूड़ियाँ। रोज़ शाम को दो पैसे के हारों का ख़र्च भी था, इसलिये कि 'जान है तो जहान है'

और इनकी अकेली जान होती तो भी शायद जरूरत न थी। मियां अमजद भी इनके दम से लगे हुए थे। वह किसी क़दर नाजुक-मिज़ाज थे। रात को उन्हीं के साथ खाना खाती थीं। इधर नौ बजे उधर उन्होंने एक रकाबी में कोई सेर भर की चपातियाँ, दो तीन परांठे, प्याली में सालन और उसके अलावा जो कुछ सरकार के दस्तरख्वान से बचा बचाया मिला, सफ़ेद रूमाल में बाँध कर हाथ में लटका लिया। रास्ते में मियां हसनू से दो पैसे की फलकियाँ लीं। आध पाव मलाई, धेले की शकर, पैसे की अफ़ीम, धेले का तम्बाकू, यह सब सामान लेकर चौपटियों पर पहुँची। मियां अमजद इंतज़ार में दुर्गा तँबोली की दूकान पर बैठे हुए हैं। मियां अमजद एक नौजवान्, बाँके साँवले से आदमी, कोई पच्चीस छब्बीस बरस की उम्र, लुङ्गी बाँधे हुए, गुलाबी कुर्ती गले में, पट्टों में तेल पड़ा हुआ, हाथ में लठ, अड़े बैठे हुए हैं। इधर यह गई और उन्होंने देखा कि वह दूकान पर बैठे हैं, यह वहीं ठिठकीं। उन्होंने देख तो लिया मगर बेपरवाही से मुँह फेर कर दुर्गा से बातें करने लगे। अब नखरा किये बैठे हैं, उठते ही नहीं। दो चार मिनट यह ठहरी रहीं। आखिर सब्र कहाँ तक करें। दूकान ही पर जा पहुँची, 'लो अब चलते हो या नहीं।'

अमजद—चलते हैं। भूख के मारे दम निकल गया। अब आई हैं तो यह हुकूमत।

इमामन—अभी नौ बजे हैं, देर कहाँ हुई।

अमजद—दस बज गये। इनके यहाँ अभी नौ ही बजे हैं।

मगर भूख बुरी बला है। ज्यादातर इंतज़ार इनको भी पसंद न था। चुपके दूकान से उठकर साथ साथ हो लिये यह

कोई ऐसा राज़ न था कि नबीबख्श को इसकी ख़बर न हो जाती। दो ही तीन दिन के बाद मियां अमजद का ठेका आपको मालूम हो गया। इत्तफ़ाक़ की बात यह थी कि अमजद सुबहान खां के अखाड़े पर कुश्ती लड़ते थे और यह भी किसी ज़माने में सुबहान खां के शागिर्द हुए थे। अमजद आपके पीर-भाई ठहरे। मुलाक़ात तो न थी मगर जानते ज़रूर थे। इस मौक़े पर इस विशेषता के कारण बेतकल्लुफ़ी (घनिष्ठता) बढ़ा लेना कुछ ऐसी बड़ी बात न थी।

अमजद का मकान बिज़न बेग खां के कटरे में था और चौपटियों पर इनका उठना बैठना रहता था। दूसरे ही दिन मियां नबीबख्श ने इनका सुराग़ लगाकर मुलाक़ात कर ली। मियां अमजद का कैंडा कहे देता था कि इनको रुपये की हर वक़्त ज़रूरत रहती थी। अलावा निजी ख़र्च के जिसका बहुत सा भार इमामन पर था, जो कि एक ऐसी मद है कि उसमें राज के राज तक ख़र्च हो जाते हैं, इन्हें और भी रुपये की ज़रूरत रही आती थी। इमामन ने दुनियां देखी थी। वह अपने शौक़ के लिये एक मामूली रक़म से ज़्यादा ख़र्च नहीं कर सकती थी और फिर कुछ निगोड़ी नाठी भी न थी। एक जवान लड़की ब्याही हुई, पाँच बरस की नवासी, उसके ख़र्च की ज़िम्मेदारी भी इमामन के सर पर ही थी। इसके साथ एक तोता, एक मुर्ग़ा, तीन मुर्ग़ियाँ, एक जोड़ा बत्तख़ का, और सबसे बढ़कर अपना शौक़ीन जीवड़ा। मियां अमजद का जिस क़दर भार इमामन उठाती थी उसी को यह ग़नीमत समझते थे। इमामन ने इनको एक हद पर रक्खा था कि यह उससे ज़्यादा तलब भी न कर सकते थे। जुए के लिये पहले ही क़समा क़समी हो गई थी मगर यह छुपकर खेलते थे। फिर उसके लिये रुपये

का जुटाना भी उन्हीं के ऊपर था। मियां नबीबख़्श ने दो ही बातों में उनको हँम्वार कर लिया और उन्होंने काम कर देने का बंदोबस्त इमामन को बीच में डालकर अपने ज़िम्मे ले लिया था। हकीम साहब से सामना करा दिया गया। उन्होंने पहले ही दिन पाँच रुपये बे हिसाब दिये और पाँच सौ रुपये कामयाबी होने पर मियां अमजद को देने कहे और यह भी कहा कि दौरान में ज़रूरत के माफ़िक़ काम चलाने के लिये और भी रुपये समय समय पर दिये जाया करेंगे और यह इस तय हुई रक़म से न काटे जायँगे। इन पाँच रुपयों में से सवा रुपया मियां नबीबख़्श ने ले लिया। बाक़ी मियां अमजद ने अपने डबे में रक्खा। क़िस्मत साथ दे रही थी। उस दिन जुए में भी यह अच्छे रहे। पौने चार से दस हो गये।

अब क्या था। मियां अमजद इस दिन अमीर थे। आज उन्होंने इमामन के लिये दस आने की तीन गज छींट और बारह आने की डेढ़ गज़ जाली मोल ली। रात को रोज़ की तरह बी इमामन बिज़न बेग ख़ां के कटरे में मियां अमजद के घर एक टूटे से खंडरे में झबलंगा चारपाई पर बैठी हैं। चारपाई के पायँते की तरफ़ मियां अमजद धरे हुए हैं। दोनों सर जोड़े खाना खा रहे हैं। चारपाई पर एक कपड़ा नया ख़रीदा हुआ रक्खा है।

इमामन—(ज़रा शुबह करके) यह रुपया तुम्हें कहाँ से मिला ?

अमजद—(बड़े घमंड से) कहीं से मिला।

इमामन—मिलता कहाँ से, जुआ खेले होगे। मैं बाज़

आई इस कपड़े से। देखो फिर तुम जुए में जाने लगे।

अमजद—तुम्हारे सर की क़सम, यह कपड़ा जुए का माल नहीं है। अजी तुम से क्या कहें, एक रक़म हाथ आई है। जो तुम चाहो तो बहुत कुछ मिल सकता है।

इमामन—मैं क्या चाहूँ, मुझसे न होगा (यह समझी कहीं चोरी करवाने को तो नहीं कहता है)

अमजद—कितनी बेतुकी हो। अभी सुना नहीं और पहले ही से नहीं कर दी।

इमामन—अच्छा कहो।

अमजद—अच्छा जो हम कहें वह करोगी।

इमामन—जो मेरे करने का काम होगा वह करूँगी।

अमजद—हाँ, हाँ, तुम्हारे करने का काम है।

इमामन—तो कहो तो सही।

अमजद—क़सम खाओ।

इमामन—पहले मैं सुन लूँ तो क़सम खाऊँ।

अमजद—नहीं कोई ऐसी बुरी बात नहीं है।

इमामन—अच्छा तो फिर कहते क्यों नहीं।

खुलासा यह है कि थोड़ी सी बातें बनाने के बाद मियां अमजद ने अपना मतलब इमामन से कहा। बात के कई पहलू निकले। आख़िर उस पहलू पर दोनों राज़ी हो गये जिसमें उन्हीं दोनों का सरासर फ़ायदा था।

× × ×

यह हज़रत की चितवन से है आशकार,
किसी आनेवाले का है इंतज़ार।
आनेवाले की मदारात का बेहद है खयाल,
बिछे जाते हैं हमीं फ़र्श की हाजत क्या है।
दिले शैदा है मकां आपका बेशिरकते ग़ैर,
बेतकल्लुफ़ यहीं आ बैठिये पापोश समेत।

रात के नौ बजे होंगे। हकीम साहब के मकान पर तख़लिये (गुप्त) की सोहबत है। सामने गाव से लगे ख़ुद बदौलत बैठे हैं। उनके क़रीब मनसद से भिड़ी हुई बी ईमामन तशरीफ़ रखती हैं। कुछ फ़ासले पर सामने मियां अमजद और नबीबख़्श मुनकिर नकीर (फ़रिश्ते जो मुर्दे से क़ब्र में पूछ ताँछ करते हैं) की तरह हाज़िर हैं।

हकीम साहब—अच्छा, बुआ इमामन, तुम्हारी काररवाई भी देखता हूँ।

इमामन—मेरी काररवाई क्या और मैं क्या। बेगम साहबि का क़ाबू में आना कुछ सहज बात तो है नहीं मगर जहाँ तक हो सकेगा, कोशिश करूँगी। आइन्दा आपकी तक़दीर है। मगर एक बात मैं कह दूँ कि बेगम हैं तो अमीर आदमी मगर रुपये की बड़ी लालची हैं। पहले ज़रा ख़र्चा पड़ेगा, फिर तो पाँचों माल आपके हैं।

हकीम साहब—मगर निकाह हो जाय।

इमामन—हाँ मियां, यह तो मैं आप ही कहने वाली थी। अभी तो मैं हामी नहीं भरती हूँ। उनका इंदिया ले लूँ तो ज़बान दूँ। मगर पहले कुछ रुपये का ख़र्च है।

हकीम साहब—(खर्च के नाम पर ज़रा रुककर) पहले रुपया खर्च हो गया और जो निकाह न हुआ।

महरी—ऐ लो, आप तो पहले ही नहीं किये देते हैं।

हकीम साहब—तो फिर पक्की हो।

महरी—मेरे पक्के होने से क्या काम चलेगा (हँसके) क्या मेरे साथ निकाह होगा।

हकीम साहब—(हँसके) क्या मुज़ाइक़ा है।

इमामन—(अमजद की तरफ़ देखकर) क्यों ?

अमजद—(मुस्करा के सर नीचा कर लिया) फिर क्या हर्ज है ?

हकीम साहब—अच्छा तो पहले क्या खर्च होगा ?

महरी—यह मैं नहीं कह सकती जितना खर्च पड़ जाय।

हकीम साहब—आखिर उसकी कुछ इन्तहा भी तो हो।

महरी—अब मैं क्या इन्तहा बताऊँ।

अमजद—यही कोई सौ दो सौ का खर्च है। फिर तो आपके क़ब्ज़े में आ जायँगी। फिर चाहे कौड़ी न खर्च कीजिए।

नबीबख्श—फिर खर्च क्या करेंगे। उनकी जान माल के तो आप मालिक हो जायँगे।

इमामन—अल्लाह में सब क़ुदरत है।

हकीम साहब—यह लो, यह तो तुमने फिर कच्ची बात कही।

इमामन—हुज़ूर, कैसी कैसी बातें करते हैं। दूसरे के दिल में दिल डालना कुछ सहज है। मौक़ा पाकर कुछ कहूँगी।

हकीम साहब—क्या कहोगी ?

इमामन—जो वक्त पर बन पड़ेगा।

नबीबख्श—हुजूर, इसमें आप कुछ दखल न दीजिए। यह औरतों की बातें हैं। औरतें ही इसे खूब जानती हैं। आपको अपने मतलब से मतलब है।

अमजद—हुजूर, इनको (इमामन की तरफ़ इशारा करके) आप क्या समझते हैं ? आफ़त की पुड़िया हैं। अभी यह मुँह से कुछ नहीं, मगर देखियेगा।

इमामन—अल्लाह के हाथ है। खुदा चाहे तो बेगम को मोम कर लूँ।

नबीबख्श—वह तो मैं जानता हूँ। तुमको कुछ समझाना पढ़ाना है ?

हकीम साहब—अच्छा तो कब जवाब दोगी।

इमामन—आज कौन दिन है।

नबीबख्श—पीर (सोमवार) का दिन है।

इमामन—अच्छा तो आज तो नहीं।

हकीम साहब—कल सही।

इमामन—कल तो मेरी प्यारी की बलगूँधन है। मुझे फ़ुरसत न होगी। मंगल, बुध, जुमेरात, जुम्मा, जुमे को जवाब दूँगी।

हकीम साहब—ओ हो, इतने दिन।

इमामन—ओई, मियां। क्या कोई मुँह का निवाला है।

अमजद—हुजूर, हाँ, देर आयद दुरुस्त आयद।

नबीबख़्श—क्या मुज़ायक़ा है।

हकीम साहब—(चार ओ नाचार) बहतर, तो जुमे को किस वक़्त आओगी।

महरी—जब काम से फ़राग़त मिलेगी।

हकीम साहब—किसी वक़्त का नाम लो।

इमामन—एमियां, मैं क्यों कर कह सकती हूँ।

अमजद—बस हुज़ूर, यही वक़्त समझिये। मैं तो इनको ले आऊँगा।

नबीबख़्श—(इस लहजे से जैसे कोई सिफ़ारिश करता हो कि कुछ दे दीजिए) हुज़ूर, बस इनको मुक़द्दम समझिये। (महरी की तरफ़ इशारा करके) इनकी नकेल तो इनके हाथ में है।

जरूरी बातें हो चुकी थीं। रुख़सत (विदा) का वक़्त था। हकीम साहब के कोरे इसरार से बी इमामन एक, अमजद दो नबीबख़्श तीन उकता गये थे। तीनों मुंतज़िर थे कि हकीम साहब संदूक़चा खोलें ताकि पहले पहल रुख़सती ख़ाली खूली न हो। हकीम साहब चाहते थे कि आज का मामला योंही टल जाय तो अच्छा है। आख़िर बी इमामन ने रुपया लेने की भूमिका इस तरह बाँधना शुरू किया—

इमामन—अच्छा तो मैं अब रुख़सत होती हूँ। मगर हुज़ूर पहले दिन ख़ाली हाथ तो न जाऊँगी।

हकीम साहब—(इसी बात के मुंतज़िर थे) संदूक़चा मँगाया गया। पाँच रुपये महरी के हाथ धरे। अब बी महरी ने झुक कर तीन फ़रशी तसलीमें कीं और रुख़सत हुई। मियां

अमजद साये की तरह साथ हुए। नबीबख़्श हुक्का भरने के बहाने से बाहर आये। इमामन एक रुपया नबीबख़्श को देने लगी। यह चार आने के और तलबगार थे, इसलिए कि हक़ चौथाई से क्या कम हो, यह तो मामूली बात है।

नबीबख़्श—(रुपया लेकर) अच्छा तो चार आने वह भी दिलवाओ।

इमामन—ले लेना। कोई चोरों से ब्यौहार है।

नबीबख़्श—अजी दे भी दो। मुझे अफ़ीम लेनी है।

इमामन—अब इस वक़्त तो नहीं हैं।

नबीबख़्श—तो रुपया दो, मैं बारह आने फेर दूँगा। इमामन ने रुपया दे दिया।

अमजद—बारह आने कल मैं ले लूँगा।

अहाते से बाहर निकल कर इमामन ने बटुआ खोला। चाहती थी कि तीनों रुपये बटुए में डाल लें। एक मियां अमजद ने उचक लिया।

इमामन—रुपया क्या करोगे ? दे दो। कल मुझे काम है।

अमजद—जूता पहनेंगे।

अब इमामन को सिवाय खामोशी के कोई चारा न था।

× × ×

इमामन अहाते से निकली थी कि मुरशद से मुठभेड़ हो गई। मुरशद के आने का यह वक़्त न था, मगर उस रात को इत्तफ़ाक़ से दरगाह के पास उनके एक दोस्त के लड़के की शादी थी। वहीं जाते थे। रास्ते में हकीम साहब का मकान पड़ता था। पहले एक

ख्याल सा था कि हकीम साहब से मिलते चलेंगे, मगर मकान के क़रीब पहुँचते पहुँचते राय बदल गई थी, इसलिये कि यह आपके खाने का वक्त था। इस उम्मेद पर ज़रा जल्द जल्द क़दम उठाए चले जाते थे कि शायद शादी के घर में खाना तैयार हो गया हो और अगर न भी हुआ हो तो दूल्हा के बाप से कहकर हम खाना खा लेंगे। मगर हकीम साहब के दरवाज़े पर पहुँचकर महरी से सामना हो गया। अब हकीम साहब से मिलकर जानना ज़रूर था। मतलब यह था कि उनको मालूम हो जावे कि हमें यह भेद मालूम हो गया है ताकि एक तरह का दबाव रहे।

मुरशद--(हकीम साहब को देखते ही) आहा! आज तो बी इमामन आपके पास पहुँच गई और यह गुर्गा सा आदमी उनके साथ कौन था। उसे मैं नहीं पहचानता।

यह आखरी फ़िक़रा इस लहजे से कहा था कि नाम दरयाफ़्त करके फौरन थाने पर रिपोर्ट कर देंगे।

हकीम साहब चाहते थे कि इस मामले की कार्रवाई को मुरशद पर ज़ाहिर न होने दें मगर इत्तफ़ाक़ की बात है कि पहले ही दिन का हाल मुरशद पर खुल गया। मगर जवाब देना ज़रूरी था।

हकीम साहब--जी हाँ, यह मियां नबीबख्श बुला लाये।

खैरियत यह थी कि मियां नबीबख्श इस मौक़े पर मौजूद न थे वरना जहाँ उनमें और गुण थे, एक सिफ़्त सफ़ाई की भी थी। साफ़ कह देते कि 'जी आपने बुलवाया था मैं बुला लाया' नौकर को उज़्र क्या। मुरशद हकीम साहब की त्यौरियों से ताड़ गये कि इस मामले में हकीम साहब किसी को अपना भेद नहीं बताना चाहते। मुरशद को इसकी कोई परवाह न थी कि ख्वाह-

ख्वाह कोई मुझको ज़रूर सलाह में शामिल कर ले। इसलिये इस बात को टालकर इधर उधर की बातें करने लगे और बात-चीत को जल्दी से ख़तम करके उठ खड़े हुए।

× × ×

नौ बजे का वक्त है। बिजन बेगख़ां के कटरे में अमजद और इमामन में आज किसी संजीदा मामले में बातचीत हो रही है।

इमामन—देखो मियां यह बात यों है।

अमजद—अच्छा फिर तुम जानो, मगर इतना समझ लो कि हकीम भी काई ऐसा बोट नहीं है।

इमामन—देखो तो कैसा पटरा करती हूँ।

अमजद—मगर नबीबख्श को गाँठ लो।

इमामन—हाँ, यह तुमने मेरे दिल की कही। मगर ऐसा नहीं

इतने में मियां नबीबख्श बारह आने पैसे लिये हुए आ मौजूद हुए।

नबीबख्श—लो भई अच्छा हुआ यह, तुम दोनों आदमी मौजूद हो। यह लो यह बारह आने पैसे। बारह आने डबल और एक पैसा मोटा। क्योंकि भँजाने में जो ख़िसारा हुआ था उसे नबी बख़्श क्यों उठाते।

अमजद को देकर हुक्के की तरफ़ मुतवज्जत हुए। कोयले दहकाये, तवा जमाया, हुक्का ताज़ा किया। इमामन से चटनी की प्याली माँगकर धेले की पुड़िया अफ़ीम की घोली। चुस्की पी। इमामन आज बरही पराठे पका के लाई थीं। आधा पराठा

और थोड़ा सा चने की दाल का भुर्ता मियां नबीबख्श के हाथ धरा।

नबीबख्श—वल्लाह, यह तो तुमने बड़ा अहसान किया। अफ़ीम खाकर कलेजा खुरचने लगता है। मैं दिल में कह रहा था कि अब यहाँ दो कश हुक्का पीकर उठूँगा तो पैसे धैले का कुछ लेकर खाऊँगा, मगर वह तो दाने दाने पर मोहर है। क़िस्मत में यह पराठा लिखा था। और कुछ खा सकता था, मजाल है? मगर वल्लाह, क्या पराठे पकाये हैं। भई मैंने तो अपने होश में इस मजे के बरही पराठे नहीं खाये।

अगरचे यह तारीफ़ खास इस मतलब से न थी कि इमामन एक टुकड़ा पराठे का और दें मगर बी इमामन का इखलाक़ (सभ्यता) यही चाहता था कि वह ज्यादा सत्कार करतीं, मगर उनकी फ़ैयाज़ी (उदारता) को उत्तेजना मिल गई।

इमामन—तो और ले लो।

नबीबख्श—नहीं। वल्लाह बस इतना बहुत था।

अमजद इस उदारता को अच्छा नहीं समझता था, इसलिये कि पराठे सेर ही भर के थे और माशाअल्लाह बी इमामन भी खुशखुराक (अच्छी भूख वाली) थीं। उनको यह ख़ौफ़ था कि कहीं मेरे खाने में कमी न हो जाय।

अमजद—अफ़ीमी ज्यादा नहीं खाते। बस इतने ही में इनका भला हो गया।

नबीबख्स—वल्लाह सच है। बस घर पर भी मैं इतना ही खाता हूँ लेकिन खाने के बाद एक ज़रा सी मिठास ज़रूर खाता हूँ। कुछ न हो तो धमकी का गुड़ ही सही।

मगर इमामन अपनी फ़ैयाज़ी से न बाज़ आई। सरकार के दस्तरख़्वान का बचा बचाया बहुत सा ज़र्दा एक रकाबी में लाई थीं।

नबीबख़्श ने इनके हाथ के पके हुए पराठों की कुछ ऐसी तारीफ़ की थी कि इनके लिये आवश्यक और उचित हो गया कि उस नियामत से भी उनको महरूम (अलग) न रक्खें। दूसरे एक सबब यह भी था कि मियाँ नबीबख़्श की नज़र ज़र्दे पर पड़ चुकी थी बल्कि मिठास का ज़िक्र भी कर चुके थे और बी इमामन के मिज़ाज में नज़र गुज़र की एहतियात हद से ज़्यादा थी।

इमामन—अच्छा तो यह ज़र्दा एक ज़रा सा खालो। (रकाबी हाथ में उठाकर) इनके (अमजद की तरफ़ इशारा करके) घर-बाहे में बर्तन भी तो नसीब नहीं।

नबीबख़्श—नहीं तुम खाओ। इसकी क्या ज़रूरत है।

यह कहते हुए उठे और एक खीर का छोटा सा प्याला सामने पड़ा था, उसे उठा लाये। पलंग की पट्टी के पास टीन के लोटे में पानी भरा रक्खा था, उससे घँगाल डाला।

नबीबख़्श—लो इसमें एक चुटकी दे दो।

अमजद—वल्लाह, अफ़ीमी आदमी के मिज़ाज में कितनी सफ़ाई होती है।

इमामन—नहीं तुम्हारी तरह मलच्छ।

इमामन ने वाक़ई एक ही चुटकी दी। अब मियाँ नबीबख़्श की धेले की अफ़ीम की अच्छी ख़ासी गज़क हो गई। हुक्का ख़ुशबू दे रहा था। खाते खाते उसे मुँह लगाया। जल्दी का

सबब यह था कि ऐसा न हो कहीं मियां अमजद चरस का एक दम मारें तो हुक्क़े का मज़ा ही जाय।

अमजद—(आँख के इशारे से इमामन को अपनी तरफ़ मुतवज्जह करके चुपके से) वह उठा लाऊँ।

इमामन—(दाँत के नीचे उँगली दबा के) हां। बात यह थी कि मियां अमजद आज मामूली से ज्यादा खुश थे। मुफ्त की रक़म हाथ लगी थी, इसलिये एक अद्धा ठर्रे का लेते आये थे। इमामन को भी इससे कोई इन्कार न था। कभी कभी इस खंडहर में यह शग़ल हुआ करता था और जिस दिन ज्यादा हो जाता था, उस दिन दोनों में जूता भी खूब चलता था। मियां अमजद पहलवान थे मगर इमामन भी कुछ उनसे कम न रहती थी। बल्कि दो एक बार इन्हीं के करारे रहते थे।

अमजद ने इमामन से इशारा करके कहा "अद्धा उठा लाऊँ।" इमामन ने नबीबख़्श की तरफ़ देखकर दाँत के नीचे ज़बान दबाई। मतलब यह था कि इनके सामने न पियो।

अमजद के खाने का वक्त था। यह बेताब थे किसी तरह दौर शुरू हो तो खाना खाऊँ। इससे इस तरह बात उठाई।

अमजद—अजी पी भी जाओ। नबीबख़्श हमारे बड़े हैं। क्या हमारे ऐब किसी से कहते फिरेंगे ?

नबीबख़्श—(पीनक से सर उठाके) भई हम समझ गये। तुम्हें हमारे सर की क़सम, तुम अपने पियो पिलाओ। भई हमने तो इस काम को तर्क ही कर दिया।

अब क्या था। मालूम हो गया कि मियां नबीबख़्श भी पुराने गुनाहगार (पापी) हैं। इस सूरत में इमामन को भी

उनके सामने पीने में कोई उज्र न था और नबीबख़्श के कहने के ढंग से ऐसा मालूम हुआ कि अगर ज़िद की जाय तो उनको भी शायद इन्कार न हो।

अमजद ने अद्धा और तीन कुजियां (कूजे) चारपाई की पट्टी के पास लाके जमा दिये। एक कुज्जी भरके पहले ही मियां नबीबख़्श की तरफ़ बढ़ाई।

नबीबख़्श—नहीं भई मुझे तो माफ़ करो। मैंने तो, बहुत दिन हुए, छोड़ दी।

इमामन—पियो भई, सोहबत का मज़ा भी यही है, सब एक रंग में हों।

नबीबख़्श—नहीं भई हकीम साहब के पास जाना होगा।

अमजद—अरमां, एक कुज्जी पी भी लो। बू नहीं आयेगी, ज़रा सा धनिया चबा लेना।

इमामन—(आँचल से इलायची खोलकर तोड़ी) ए लो, दो दाने इलायची के खा लेना। ज़रा सी असरूद की पत्ती चबा लेना।

नबीबख़्श—अब अमरूद की पत्ती कहाँ ढूँढता फिरूँगा।

अमजद—यह क्या सामने अमरूद का दरख़्त लगा है।

नबीबख़्श—ए लो, सच तो कहा। मैंने ख़याल नहीं किया था। (यह कहते ही कुज्जी हाथ में थी। कुज्जी उड़ा गये।)

शराबे शौक़ से मत डर रंगीले।
खुदा ज़र दे तो घर में छुपके पीले।

अमजद—भई खूब कही।

इमामन—ए तुम समझे क्या हो! नबीबख्श को हजारों चुटकले याद हैं। यह भी हर सोहबत में बैठे हैं।

अमजद—लो जैसे मैं जानता नहीं। कहानियां सुनो, दास्तान कहते हैं।

इमामन—तो भई एक दिन हम भी सुनेंगे। महल में चिट्ठी नवीस रोज शाम को बेगम के सामने क़िस्से की किताब पढ़ती हैं। मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता। बेगम, खुदा रक्खे, खूब समझती हैं। पढ़ी लिखी हैं।

अमजद—तो क्या बेगम पढ़ी लिखी हैं।

इमामन—खूब पढ़ी हैं। अलमारी में किताबें चुनी हुई हैं। दिन रात पढ़ा करती हैं। हिसाब किताब अपना सब लिख लेती हैं। दीवानजी से भी मँगाकर खुद देखती हैं। दस्तख़त करती हैं। क्या मजाल एक पैसे की तो भूल चूक हो जाय।

नबीबख्श—(बड़े ताज्जुब से) अहा! बड़ी होशयार हैं। जभी तो सरकार अभी तक बनी हुई है।

इमामन—देखिये छोटे नवाब के लच्छन अच्छे नहीं हैं। शराब भी तो पीने लगे हैं।

अमजद—तो शराब पीना कोई बुरी बात है। रईसों का शग़ल यही है।

इस तेवर से कहा था कि गोया आप भी रईस हैं। कम से कम इस वक्त तो रईस जरूर हैं क्योंकि पौने दो रुपये टेंट में हैं, अद्धा सामने रक्खा है। अभी सिर्फ एक ही दौर उड़ा है।

इमामन—शराब पीना तो कुछ ऐसा बुरा नहीं है, मगर उनकी सोहबत बुरी है। लोग लूट रहे हैं।

नबीबख्श का हाल यह था कि अब नशा जोरों पर था। एक तो अफ़ीम, उस पर शराब। मियां नबीबख्श झूमने लगे। इस अर्से में इमामन और अमजद के दो दौर हो गये। शराब के साथ खाने में भी लग्गा लगा दिया था। नबीबख्श को दुबारा फिर पेश की गई मगर उन्होंने और नहीं पी न ज्यादा इसरार (जिद) किया गया क्योंकि आज की रात खुशगप्पी के लिये न थी। बहुत सी काम की बातें करनी थीं। इतने में खाने से छुट्टी पाई। इमामन ने पानों की डिबिया निकाली। सबने पान खाया। मियां नबीबख्श ने फिर से हुक़्क़ा भरा। बातें शुरू हो गईं। जो बातें मुश्किल से जबान से निकलती हैं, शराब का नशा उन्हें बेतकल्लुफ़ कहवा देता है। पहले क़समा क़समी हुई। उसके बाद भेद की बातें कही गईं। जब तीनों एक दिल और एक जबान हो गये तो मनसूबे के पूरा करने की सलाह होने लगी। सलाह मशवरे से जो बातें तय पा गई थीं उनका हाल पाठकों को आगे मालूम हो जायगा। इस जगह हम विस्तार के भय से छोड़ दे रहे हैं।

रात को ग्यारह बजे तक यह जलसा रहा। उसके बाद नबीबख्श रुख़सत हुए। अमजद और इमामन दोनों वहीं सो रहे। सुबह को पाँच बजे इमामन उठी। मुँह हाथ धोकर रात का बासी पान खाया। ड्योढ़ी पर गई अमजद पड़े सोया किये।

× × ×

जिस रात का जिक्र ऊपर किया गया उसके दूसरे दिन दो बजे नवाब मुख्तारउद्दौला के महल में सन्नाटा है। मुग़लानियाँ, पेशख़िदमतें सब पड़े सो रहे हैं। सिर्फ़ तीन शख्स जागते हैं।

तीनों औरतें। उनमें कुछ ऐसी बातें हो रही हैं, जिसके पोशीदा (गुप्त) रखने की हद से ज्यादा कोशिश की जाती है।

एक—खुदा के वास्ते महरी चीखकर न बोलो। ऐसा न हो कोई सुनता हो।

महरी—ए है, क्या करूँ! मेरी आवाज़ ही निगोड़ी ऐसी है। अच्छा तो बस अब इस बात से न पलटना।

दूसरी—पलटेंगे क्या, मगर एक बात है, किसी पर ज़ाहिर न हो।

महरी—क्या मजाल है बीबी, मुझे अपनी आबरू का ख्याल नहीं है?

पहली—अगर ज़ाहिर हो गया तो मैं कहीं की न रही।

दूसरी—अब क्या महरी ऐसी नादान है।

महरी—तोबा करो मुग़लानी, मैं तो वह हूँ कि कोई हँसिये पर रखकर बोटियां उड़ा दे मगर मुँह से बात न निकले।

पहली—देखो, यह बात अपने उनसे (अमजद से) न कहना।

महरी—जीते जी मेरी ज़बान से निकल जाय तो ज़बान काट डालना।

दूसरी—इससे तो मेरी ख़ातिर जमा है। अच्छा तो अब क्या करना चाहिये।

महरी—अभी कुछ भी नहीं करना चाहिये। वक्त पर जैसा होगा, देखा जायगा।

पहली—मगर उनको अभी ज़बान न देना।

महरी—यह आप मुझे सिखाती हैं।

दूसरी—(महरी से मुस्किराकर) अरे तू तो एक ही हरीफ़ है, तुझे कोई कम न समझे। (दूसरी से) सुना इस बात का कोई ख़ौफ़ नहीं है।

महरी—(बी मुग़लानी से) हाँ वह सरकार का नाम तुमने क्या बताया था।

दूसरी—अभी नाम बताने से क्या मतलब है। क्या कोई निकाह होता है ?

पहली—मैं सच कहती हूँ, तुम्हें यक़ीन ही नहीं आता।

महरी—हाँ हाँ, यक़ीन है।

पहली—सुनो, साफ़ साफ़ यह है कि अगर उनको सौ दफ़े ग़रज हो, निकाह कर लें। बग़ैर निकाह के सामना ग़ैर मुमकिन है।

दूसरी—और उन्हें तो क्या, कोई यहाँ कसबी ख़ानगी है। और तुम्हारा भी इसी में फ़ायदा है।

महरी—तो फिर यह ज़िंदगी भर का अलझेड़ा हुआ।

पहली—और क्या, इसमें कुछ शक भी है। खुदा रसूल को भी मुँह दिखाना है या नहीं। अव्वल तो ख़ानदान में किसी ने दूसरा किया नहीं। अब अगर किया भी जाय तो चार दिन के लिये।

दूसरी—ना साहब, अपने पराये क्या थूकेंगे।

महरी—और वह आप लोगों में मुता भी तो होता है। मुता न हो जाय !

पहली—नहीं हो सकता। मैंने तो सौ बात की एक बात कह दी, उनको गरज् हो तो निकाह कर लें।

दूसरी—मुता की सलाह हमारी भी नहीं है।

महरी—खूब हुआ, आपने पहले से कह दिया। कहीं मेरी ज़बान से निकल जाता तो मुश्किल होती।

पहली—मुई बात में बात निकल आती है। यह तो कहो कुछ उनका वसीक़ा है।

महरी—इसका तो हाल मुझे नहीं मालूम, मगर मैं तो जानती हूँ वसीक़ा न होगा।

दूसरी—ऐ है, खुदा जाने किस खानदान से हैं।

महरी—खानदान वानदान तो मुझे मालूम नहीं, कहो तो लिखवा ला दूँ।

पहली—लिखवा लाओ, मगर देखो कोई बुरी बात रुक़्के में न लिखें।

दूसरी—यह बुरी बात कैसी ?

महरी—यह मैं नहीं समझी।

पहली—मर्दुए जब औरतों को रुक़्क़ा लिखते हैं तो अकसर बुरी बुरी बातें लिख देते हैं।

महरी—अब यह हम बे पढ़े लोग क्या जानें। मैं तो यह समझती थी कि जब सफेदी पर स्याही चढ़ाई जायगी तो कोई बुरी बात क्या लिखेगा।

दूसरी—सच है, हम क्या जानें। पढ़े लिखे लोग इन बातों को खूब समझते हैं।

महरी—बी मुग़लानी, अच्छा अब बातें तो हो चुकीं। ज़रा एक काम तो करो। आज शाम को मैं वहाँ जाऊँगी। चलते वक़्त सरकारी ख़ासदान में दस ग्यारह गिलोरियाँ बनाकर रख देना।

पहली—महरी, तुम कैसी बातें करती हो। अपनी तरफ़ से किसी बात की पहल करना ठीक नहीं। वह समझेंगे कि आपसे गिरती हैं।

दूसरी—ना साहब, पान वान अभी कुछ नहीं। बात बिगड़ जायगी।

महरी—(कुछ सोचकर) हाँ हाँ, सच तो कहती हो। मैं अब समझी कुछ दिनों को झिकाइयाँ देना चाहिये।

दूसरी—लो तुम न समझोगी, पुरानी मश्शाक़ हो। मगर इस वक्त न मालूम तुमको क्या हो गया था। अभी सूत न कपास, यह गिलोरियाँ कैसी ?

पहली—इससे तो हमारी तरफ़ का इश्तयाक़ (चाव) पाया जायगा और यहाँ मतलब इसके बरक्स है।

महरी—हाँ, बीबी, बेशक मैं ही बहक गई थी। मैं तो आप ही क़ायल हो गई।

पहली—क्या हुआ, आदमी ही तो है। एक बात मुँह से निकल गई। मगर समझदार के यह मानी हैं कि समझा दिया तो फ़ौरन समझ गई।

महरी—अल्लाह रक्खो बीबी, खूब समझीं। क्यों न हो। पढे लिखों की चार आँखें होती हैं। बे पढ़ा आदमी लाख होश-यार होगा फिर भी कहीं न कहीं चूक हो जायगा।

× × ×

छोटे नवाब की सरकार में रात दिन की शराबख्वारी बन्द हुई। आनन्द के साधनों की आमदरफ़्त कम हुई। शोर गुल, हुल्लड़ हंगामा खतम हुआ। मुरशद-कामिल के बड़े साहब ज़ादे सब के ऊपर हैं। उन्होंने इस सरकार का क़रीना (ढंग) बिलकुल बदल दिया है। पाठकों को इतना बता देना चाहिये कि मुरशद ने जब से महरी को हकीम साहब के मकान से निकलते हुए देख लिया था और फिर हकीम साहब ने जो भेद को छुपाया, इससे उनको उस दिन से एक प्रकार की चुभन सी हो गई। लिहाज़ा मुरशद की तवज्जह इस सरकार की तरफ़ हो गई। मुरशद के बड़े साहबज़ादे, जिनको खलीफ़ा कहना चाहिये, एक मुद्दत से छोटे नवाब के मिज़ाज में दख़ल रखते थे। अगरचे ज़्यादा आना जाना न था, मुरशद के इशारे से खलीफ़ा जी ने आपसदारी पर एक और बल चढ़ा दिया। पहले नेक नसीहत देना शुरू किया, बहुत सी बुरी आदतों से छोटे नवाब को रोका। अपनी तरकीबों की उस्तादी से साथियों और नौकरों पर रौब जमा लिया। आखिर बेजा खर्च में कमी की। इस हमदर्दी की खबर बेगम साहिबा के कानों तक पहुँची। इससे वह भी उनकी दस्तंदाज़ी से नाराज़ न थीं। खलीफ़ा ने मामलात को इस हद तक ठीक करके छोटे नवाब को हमवार कर लिया। छोटे नवाब को खुद इन्तज़ाम व खर्च का सलीक़ा न था। नौकरों में सब के सब जाहिल व मूर्ख थे। सिवाय इतनी अक़्ल के अगर छोटे नवाब दस रुपये का सौदा बाज़ार से मँगवाएँ, भाँड़ भगतुओं या रंडी मुंडियों को कुछ दिलवायें तो उसमें चौथाई से कुछ ज़्यादा कुतर लेना और किसी बात की तमीज़ न थी। ग़रज़ कि इस सरकार को इस अंकुश की ज़रूरत थी। खलीफ़ा जी की ज़ात खास ने इस ज़रूरत को पूरा कर दिया।

मुरशद—कामिल कभी-कभी आते थे और कठिन मामलों में मुश्किलें दूर करते थे। मुरशद की रौबदार शक्ल का छोटे नवाब की सीधी सादी तबीयत पर वही असर पड़ता था जो मासूम बच्चों के दिलों पर मकतब के ज़ालिम मौलवीका। जहाँ उन्हें देखा और सहम गये। यह असर उनकी इन्सानी तबीयत पर कुदरती था जैसे कोई रस्सी को साँप समझकर डर जाता है। यह असर जैसा सच्चा होता है वैसा ही थोड़ी देर के लिये भी हुआ करताहै। क्योंकि ज़ाहिरदारी में मुरशद उनके हाल पर बहुत ही कृपा बड़ों जैसी किया करते थे और एक प्याली चाय से ज़्यादा, जो उनके लिये ख़ास इंतज़ाम के साथ तैयार होती थी ज़्यादा कुछ नहीं चाहते थे। या कभी-कभी अगर बड़ी इनायत की, तो खाना खा लिया या बतौर नज़राने के या फ़र्माईश पर एक अचारी अनन्नास के मुरब्बे की या सेर दो सेर ख़ास सोहन हलवा भेज दिया गया। चंद ही रोज़ में मुरशद और ख़लीफ़ाजी का सिक्का खुद नवाब साहब और उनके मुसाहिबों व नौकरों पर बैठ गया।

× × ×

समझले तू कोई गिरियां, कोई हैरां, कोई खोजां,
किसी के भेस में हम भी तेरी महफ़िल में रहते हैं॥

बेगम साहिबा की सरकार में बड़े नवाब के मरने के बाद किसी क़िस्म का फ़र्क़ नहीं हुआ था। वही पुरानी महलदार रही, वही बड़े दारोग़ा साहब, वही दक़ियानूसी दीवानजी और सब से बढ़कर हमारे मेहरबान दोस्त करीम ख़ां। नई नौकरानियों में एक बी मुग़लानी और एक चिट्ठी-नवीस थीं। यह बी मुग़लानी

और चिट्ठी-नवीस उन औरतों में से थीं जो बड़े नवाब के तीजे के दिन मातम-पुरसी को आई थीं। और सब लोग, जो इस मौक़े पर आये थे, अपने अपने घरों को चले गये मगर यह दोनों जानकर या इत्तफ़ाक से चहल्लुम तक के लिये रह गईं। अपनी चालाकी और कारगुज़ारी से दोनों ने बेगम साहिबा के मिजाज में इस क़दर दख़ल कर लिया कि चहल्लम के बाद जब उन्होंने घर जाने का इरादा ज़ाहिर किया तो बेगम साहब ने रोक लिया। यह दोनों औरतें आई तो थीं बतौर मेहमान मगर पहले से इरादा नौकरी का था, इसलिये हर काम में दख़ल देना शुरू किया। अगरचे बेगम साहब को खुशामद पसंद न थी और न ऐसे लोगों से ख़ुश होती थीं जो बेमतलब हर बात में दख़ल देने लगते हैं लेकिन बड़े नवाब के मरने का सदमा ऐसा न था कि उससे तबीयत पर किसी क़दर कमज़ोरी न आ जाती। यही कमज़ोरी इन दोनों के हक़ में फ़ायदेमंद साबित हुई। इसमें शक नहीं कि यह औरतें निहायत तजुर्बेकार और सलीक़ेदार थीं। बी मुग़लानी की उम्र अब चालीस से ऊपर थी। नसीरुद्दीन हैदर बादशाह के ज़माने की घटनाएँ इनको इस तरह याद थीं जैसे कल की बात। चिट्ठी-नवीस तीस और चालीस के बीच में थीं। काठी अच्छी थी, इसलिये जवान मालूम होती थीं। दोनों एक ही मोहल्ले की रहनेवालियां थीं और आपस में कुछ रिश्ता था या न था, मगर चिट्ठी-नवीस मुग़लानी को ख़ाला कहती थी और दोनों में मेल-जोल भी इस तरह का था कि यह रिश्ता अगर दरहक़ीक़त न था तो इसका ज़ाहिर किया जाना जरूरी था। दोनों एक जान और क़ालिब (शरीर) थीं। चिट्ठी-नवीस लिखने पढ़ने में पक्की थीं। मुग़लानी पढ़ी लिखी न थीं मगर हद की ज़बान चलानेवाली। दोनों इल्म-मजलिस में ताक़ (सभा-चतुर)

और अमीर-ज़ादियों के दिल बहलाने में मश्शाक़ (दक्ष) थीं। तमीज़दारी और सलीक़ा, बात-चीत का ढंग, मिज़ाज पहचानना यह सब गुण इन दोनों में खूब थे। अगर एक इनमें से किसी हुनर में कम थी तो दूसरी ने उस कमी को पूरा कर दिया था। दोनों एक दूसरे के लिये लाज़िम-मज़लूम (अन्योन्याश्रय) थीं। जैसे मुग़लानी बेपढ़ी थी, चिट्ठी-नवीस पढ़ी-लिखी; चिट्ठी-नवीस को सिलाई के काम में दख़ल न था, मुग़लानी इस फ़न में यकता (एक ही) थी। मुग़लानी हज कर आई थीं, समुद्र के सफ़र का इनको तजुर्बा था; चिट्ठी-नवीस हैदराबाद कलकत्ता हो आई थीं, कई साल तक देसी रियासतों की सैर की थी, एक साल भर मटिया-बुर्ज में रही थीं। वह कहानी खूब कहती थीं। उनको सैकड़ों शेर नोके-ज़बान (जिव्हाग्र) थे। हदीस खूब पढ़ती थीं। वह नूहा-ख्वानी (मर्सिया पढ़ने) में कमाल रखती थीं। ग़रज़ कि हर बात में जोड़ का तोड़ था। दोनों प्राण एक थे, अगरचे बज़ाहिर दो थीं। बेगम साहिबा से जिस क़दर इनका मेल-जोल ज़्यादा बढ़ता जाता था और नौकरों का रश्क (ईर्षा) ज़्यादा होता जाता था। बेगम साहिबा खुद अक़ील (बुद्धिमान्) और समझदार थीं। कोई वजह माक़ूल नहीं है कि अगर नौकर मर्ज़ी के मुताबिक़ काम करे तो मालिक की तवज्जह उस पर ज़्यादा न हो। बेगम साहिबा के मिज़ाज में किसी क़दर किफ़ायत-शारी ज़रूर थी। उसी के मुनासिब इनमें ज़्यादा लालच न थी। फिर क्योंकर न निभती।

मुरशद से और इन दोनों औरतों से किसी न किसी तरह का भीतरी वास्ता ज़रूर था, मगर इस क़दर बारीक (सूक्ष्म) और गुप्त कि खुर्दबीन से भी मुश्किल से नज़र आवे। इसके

ऊपर यह कि खास बेगम साहिबा और उनके रिश्तेदारों से उसके पोशीदा रखने की कोशिश की गई थी। इससे मुरशद और खलीफ़ा को सिर्फ़ यह फ़ायदा पहुँचता था कि अगर इत्तफ़ाक़ से उनका ज़िक्र बेगम साहिबा के सामने आवे तो उचित शब्दों में उनकी तारीफ़ करें। या अगर कोई दर-अंदाज़ (दो आदमियों में लड़ाई कराने वाला) उनकी बात में कुछ काट-छाँट करे तो उसकी काट वहाँ की वहीं कर दिया करें। खुलासा यह कि मुरशद का असर अंदर से बाहर तक फैला हुआ था और फिर इस पोशीदगी के साथ कि सैयाद (व्याध) अपने दाम (जाल) को भी इस तरह नहीं छुपा सकता।

हकीम साहब को अगरचे और जाल-बंदियों की ख़बर पूरी पूरी न थी मगर इतना ज़रूर जानते थे कि वहाँ मुरशद का फेरा उनके हक़ में सख्त नुक़सान पहुँचानेवाला है। हकीम साहब को यह मालूम हुआ था कि मुरशद ने महरी को उनके घर से जाते देख लिया है, उस दिन से और भी खटकने लगे। मगर फिर भी उन्हें अपने ज़ोर-बाज़ू (बाहु-बल) पर भरोसा था और महरी की चिकनी-चुपड़ी बातों और उसके साथ अपने अच्छे बर्ताव से उनको पूरी उम्मेद कामयाबी की थी।

× × ×

बरसात के दिन हैं। कई दिन से मेंह की झड़ी लगी हुई थी। आज तीसरे पहर को ख़ुदा ख़ुदा करके ज़रा बारिश कम हुई है। हल्की हल्की बुँदियां पड़ रही हैं। बारिश की कमी ने इस क़दर दिलों को सैर पर आमादा किया है, छोटे नवाब की टुकड़ी (जोड़ी) तैयार हुई। नवाब साहब और खलीफ़ा जी दोनों सवार होकर

बादशाह बाग़ की सैर करने को गये। यहाँ एक ताज़ा मुसीबत का सामना हुआ। एक बाज़ारी रंडी से छोटे नवाब की आँख लड़ गई। छोटे नवाब साहब को अगरचे सलीक़ा हुस्न-परस्ती (सुन्दरता) का न था, न ऐसे खुश-नज़र (आंख वाले) थे, मगर नातजुर्बेकार अमीरज़ादे जब पूरे मालिक होते हैं और मुफ़्त की दौलत हाथ आती है तो उन्हें सिवाय इसके कोई फ़िक्र ही नहीं होती कि उसके लुटाने का कोई बहाना हाथ आवे। इस क़िस्म के बहाने तबीयत अपने आप निकाला करती है। दोस्त-आशना, नौकर-चाकर, उनकी तलाश में रहते हैं। जैसे फ़र्ज़ कीजिये कि आज आख़री हफ़्ता है, चलिये पीक आलन (Peake Allan) के नीलाम में चलें। वहाँ गये। बेकार बेज़रूरत चीज़े ख़रीद लीं। वह चीज़ें कि न इनकी ज़रूरत की थी और न होंगी और जहाँ पर लाकर डाल दी गईं वहाँ से अगर उठेंगी तो उसी दिन उठेंगी जब क़र्ज़-ख़्वाह महाजन उन्हें कुर्की में ले जायगा। एल-फ्रेड कंपनी शहर में आई है (अच्छा तो जिस दिन से वह तमाशा करे और जिस दिन तक ख़तम हो, वहाँ सबको बिला नाग़ा जाना ज़रूरी है। दस दस टिकट ख़ास दर्जे के रोज़ाना ख़रीदे जाते हैं, बल्कि एक माह के लिये मामला कर लिया (ठेका दे दिया) या कोई फ़लां बाईजी ग्वालियर से आई हैं। अच्छा तो उनका मुजरा देखना मुनासिब है। चलिये दो चार सौ इसी तरह ख़र्च हो गये। या कोई बाज़ारी रंडी नया नया बाज़ार में आई, उसे नौकर रखना लाज़िम है। दो चार महीने के लिये नौकर रख लिया। हज़ार दो हज़ार रुपये ख़र्च हो गये, शहर भर में शोहरत हो गई।

वाक़ई दौलत के लुटाने में एक लुत्फ़ ख़ास है जिसे दर-

हक़ीक़त किसी क़िस्म के मौक़े जरूरत नहीं। शराब, रंडी, नाच रंग, सैर शिकार, खेल तमाशे, यह सब बहाने ही बहाने हैं। अगर ग़ौर से देखा जाय तो दौलत लुटाने वालों को इन चीजों से ज्यादा हज़ (मज़ा) नहीं मिलता। इस क़िस्म की शौकीनियाँ किफ़ायतदारी से भी हो सकती हैं—बल्कि जो ऐसा करते हैं वही ज्यादे मज़े उड़ाते हैं। मगर रुपया जिनके हाथ में काटता है वह क्या करें। उनको तो उसी के फेंकने में मज़ा आता है। हमारे छोटे नवाब साहब इसी मर्ज़ में मुब्तला थे। एक रंडी पहले ही से नौकर थी—खुरशैद। इसमें शक नहीं वही जरूरत से ज्यादा थी। अब यहाँ इस दूसरी को देख के इसके भी नौकर रखने की फ़िक्र हुई। इस बेजा काम और बेहूदा हविस का इलाज क्या है। मुरशद और ख़लीफ़ाजी जो दिखावे के लिये तो बड़े शुभचिन्तक सलाहकार बने हुए थे, उनका यह मन्शा था कि दौलत के बहाव का एक ही रुख़ कर दिया जावे और वह रुख़ अपने घर की तरफ़ हो।

जब बादशाह बाग़ में उस बाजारी सुन्दरी से नवाब की आँखें लड़ीं और नवाब साहब ने उसे ताल्लुक़ क़ायम करने का क़स्द किया तो सबसे पहले यह क़स्द उससे ही कहा जाता जो इस वक्त, उनके साथ था यानी ख़लीफ़ाजी से। ख़लीफ़ाजी ने पहले तो बड़े शुभचिन्तक बन के मना किया। इस मना करने से यह मन्शा न था कि नवाब साहब बाज़ आएँ बल्कि चली हुई तबीयत को और ज्यादा उसकाना था। जब नवाब साहब की तबीयत का ज्यादा ज़ोर देखा तो खुद ही चारासाज़ (उपाय करने वाले) बन गये। गाड़ी से उतरे। एक नौकर को भेजकर उसकी नायका से अलग बुलाकर कुछ इधर उधर की बातें करके चले आये।

जब तक खलीफ़ा जी और नायका से बातचीत हुआ की, नवाब निहायत ही शौक़ से इंतज़ार करते रहे। हज़ारों दुआएँ माँगी। सैकड़ों मिन्नतें मानीं। मगर अफ़सोस कि खलीफ़ाजी ने किसी भीतरी कारण से इस हसरत (वासना) को पूरा न होने दिया।

खलीफ़ा—(नवाब साहब से) पाँच सौ रुपया माहवार माँगती है।

छोटे नवाब—(पाँच सौ रुपये का नाम सुनके कुछ हताश से हो गये। इसलिये कि अगरचे दौलत काफ़ी थी मगर वह सब बेगम साहिबा के क़ब्ज़े में थी। क़ानून से अभी नाबालिग़ थे। पाँच सौ रुपये माहवार की रंडी नौकर रखने की ताक़त थी न हिम्मत) अच्छा दो एक रात के लिये आएँ।

खलीफ़ा—मैंने बग़ैर आपके कहे कहा था, वह राज़ी नहीं होती। ख़ुदा की क़ुदरत ! पाँच सौ रुपया माहवार ! सौ रुपये पर तो कोई पूछेगा नहीं। आपका नाम सुनकर मुँह फैलाती हैं। हुज़ूर, क्या यही रंडी है, और सैकड़ों हैं।

नवाब—(एक दबी हुई आह भरके) जाने दो।

खलीफ़ा—फिर क्या किया जाय। पाँच सौ रुपया भी मुमकिन है मगर उस लियाक़त का आदमी भी हो।

नवाब—(ज़ाहिरा अपनी बेपरवाही जताने के लिये) नहीं पाँच सौ की लियाक़त तो नहीं है।

खलीफ़ा—पाँच सौ कैसे ? सौ रुपये पर भी मँहगी है।

नवाब—हाँ बस यही सौ डेढ़ सौ।

खलीफ़ा—बस आपने हद की बात कह दी। डेढ़ सौ मय फ़र्माइशों के। हम यही समझ के गये थे कि सौ रुपये माहवार

तनख्वाह दी जायगी, और पचास रुपये ऊपर से खर्च होंगे। मगर वह तो पुट्ठे पर हाथ नहीं रखने देतीं।

नवाब—(दिल का मालिक अल्लाह है मगर ऊपरी दिल से) दफ़ान करो।

ख़लीफ़ा—जी हाँ, दफ़ान कीजिये। देखिये एक और मामला है उसे देख लीजिये।

नवाब—कहाँ ?

ख़लीफ़ा—अब कहाँ बताऊँ ? दिखाऊँगा।

नवाब—इससे अच्छा है ?

ख़लीफ़ा—अच्छा कैसा। यह उसके सामने लौंडी मालूम होगी।

नवाब—और तनख्वाह क्या लेगी ? कुछ कम पर हो जायगी ?

ख़लीफ़ा—पहले देख लीजिये। उसके बाद बातचीत की जायगी।

नवाब—अच्छा तो आज ही बुलवा भेजिये।

ख़लीफ़ा—हुज़ूर आज कैसा, दस दिन में भी मुमकिन नहीं। क्या कोई कसबी ख़ानगी है ? घर गिरस्त है।

नवाब—फिर क्यों कर दिखा दीजियेगा ?

ख़लीफ़ा—हम तो किसी न किसी तरह दिखा देंगे।

नवाब—तो फिर कब ? इतने कहने से यहाँ तो इश्तयाक़ हो गया। रात भर नींद न आयगी और आप टालमटूल करते हैं। फिर क्यों कर बात बने।

ख़लीफ़ा—हुजूर, अभी आप नातजुर्बेकार हैं। इश्क़बाज़ी के यही तो मज़े हैं। जिस क़दर फ़िराक़ की मुश्किलें ज़्यादा होती हैं उसी क़दर मिलने का मज़ा बढ़ जाता है। अभी तो आप इश्क़ के कूचे में दाखिल भी नहीं हुए और न बाज़ारी औरतों से आपने ताल्लुक़ात पैदा किये। यह इश्क़ नहीं है। इनसे इश्क़ ही क्या? दस की जगह बीस ख़र्च किये यह हाथ जोड़ने लगीं। इश्क़बाज़ी का मज़ा पर्दानशीनों से है। बरसों इंतज़ार है, पैग़ाम व सलाम है। वादे चल रहे हैं। नाकामयाबियां, बेताबियां, तारे गिनना, शौक़ की तड़प है। ग़रज़ कि जो जो मज़े इश्क़ पर्दानशीन में मिलते हैं बाज़ारियों से उसका एक ज़र्रा भी मुमकिन नहीं। फिर लुत्फ़ यह कि अगर इश्क़ पर्दानशीन में कामयाबी हो गई और वह क़ाबू में आ गई, फिर क्या है? उम्र भर निबाह देती है। बाज़ारी औरतें बेवफ़ा होती हैं। एक इनकी यह आदत है कि जिनकी नौकर हैं, उसी के खिदमतगार से अटकी हुई हैं।

नवाब—मगर पर्दानशीन के इश्क़ में मुश्किलें हैं। उसके लिये मुद्दत चाहिये। इतनी फ़ुरसत किसे?

ख़लीफ़ा—जब पूरा प्रेम हो तो सब मुश्किलें आसान हो जाती हैं। देर ज़रूर होती है, मगर आपने सुना होगा, 'देर आयद दुरुस्त आयद'। और फ़ुरसत को जो कहिये तो आपको काम ही क्या है। महज़ बेकारी। उससे यही शग़ल कीजिये। दिल तो एक तरफ़ उलझा रहेगा।

नवाब के दिल पर इस जादू-भरी तक़रीर (बात) ने अपना पूरा असर किया। तबीयत पहले से ही मुस्तैद थी अब इस चकसाने से बिलकुल ही आमादा हो गई, बिना देखे आशिक़

बन गये, इसलिये कि ख़लीफ़ा जी का एतक़ाद (विश्वास) उनके दिल पर जमा हुआ था। उनकी एक एक बात को आकाशवाणी समझते थे। बादशाह बाग़ में इस वक्त, शहर की बहुत-सी रंडियाँ जमा थीं। नवाब एक एक तरफ़ इशारा करके ख़लीफ़ा से पूछते थे, "ऐसी है, वैसी है"। ख़लीफ़ा जी हर एक से उसको बढ़कर बतलाते थे। नवाब साहब अनुपम सौंदर्य की कल्पना में मग्न थे। एक्सशा नंबर अव्वल की बोतलें, बर्फ़, सोडा लेमनेड, विलायती नारंगियाँ, यह सब सामान साथ था। दौर चलता जाता था। ख़लीफ़ा जी खुद धतियल पीने वालों में थे और ताज्जुब यह कि बोतलें की बोतलें ख़ाली हो जायँ मगर उन पर नशे का असर न ज़ाहिर हो न क़दम बिगड़ें, न ज़बान लड़खड़ाये। हाँ अलबत्ता आँखें किसी क़दर चढ़ जाया करती थीं। नवाब को भी अच्छी मश्क़ (अभ्यास) हो गई थी। शराब का असर कल्पना-शक्ति पर ज्यादा होता है। आदमी जिस चीज़ का ख़याल करता है, वैसा ही हो जाता है। नवाब उस वक्त, सिर से पैर तक आशिक़ बने हुए थे। ग़रज़ कि अजब लुत्फ़ था। आठ नौ बजे रात तक यह सैर रही। उसके बाद घर पर आये। ख़ासा तैयार था। नौ बजे दस्तरख्वान बिछाया गया। नवाब साहब ख़लीफ़ा जी और चुनीदा चुनीदा मुसाहिबों ने खाना खाया। खाने के साथ ही दौर चलता जाता था। खाना खाते खाते नवाब को ग़फ़लत आने लगी। ख़िदमतगारों ने उठाकर पलंगड़ी पर लिटा दिया। ख़लीफ़ा जी गाड़ी कसवा कर अपने घर को रवाना हुए। रात को तीन बजे नवाब की आँख खुली। ख़िदमतगार को पुकारा। उसने दो गिलास बरफ़ का पानी पिलाया। एक दौर शराब का और दिया। फिर नींद आ गई। अब जो सोये तो दिन को आठ बजे आंख खुली। जब तक

नवाब ने ग़ुसल किया, रात के कपड़े उतारे, चाय तैयार हुई, उतनी देर में ख़लीफ़ा भी पहुँच गये। दोनों ने एक साथ चाय पी। तबीयत हरी हुई। वही रात की बातों का सिलसिला शुरू हुआ।

नवाब—कहिये वह रात की बात।

ख़लीफ़ा—रात की बात गई रात के साथ। मैंने तो सिर्फ़ उस रंडी की तरफ़ से आपका दिल फेरने के लिये एक बात कह दी थी। आप को यक़ीन आ गया?

नवाब साहब ने इसका वही जवाब दिया जो जान आलम ने तोते को दिया था।

नवाब—जी हाँ, वह झूठ था तो यह कब सच है। ले बस मज़ाक़ न कीजिये। लिल्लाह आज उस जाने जहाँ की सूरत एक नज़र दिखा दीजिये।

ख़लीफ़ा—उफ़री बेताबी। कहीं सूरत देख लीजियेगा तो नहीं मालूम क्या हाल होगा। अच्छा ख़ैर, क्या याद कीजियेगा। आज ही उसकी सूरत आपको दिखा दूँगा।

नवाब—तो किस वक़्त। सवारी को हुक्म दे दीजिये।

ख़लीफ़ा—चार बजे।

× × ×

और हसरत अभी नहीं दिल में,
एक नज़र देखने का हूँ मुश्ताक़।

आशिक़ की हसरतें (इच्छाएँ) धीरे धीरे बढ़ती हैं। जब किसी हसीन (सुन्दरी) का ज़िक्र किसी से सुना, पहले तो सिर्फ़

इतनी आरज़ू होती है कि एक नज़र उसे देख लें। जब एक नज़र देखना नसीब हुआ तो अब यह अरमान पैदा हुआ कि वह हमें एक नज़र देख ले। जब यह कठिनाई भी दूर हुई तो अब हम-कलामी (वार्तालाप) का शौक़ पैदा होता है और अगर यह भी मुमकिन न हुआ तो वहाँ तक संदेसा पहुँचाने की धुन है। ग़रज़ कि किसी न किसी तरह इश्क़ का इज़हार (प्रदर्शन) हो उसके बाद दिल के मतलब का ज़ाहिर करना। यह काम सख़्त मुश्किल है, इसलिये कि लफ़्ज़ों पर क़िस्मत का फ़ैसला है। 'हाँ' या 'नहीं।' अगर इक़रार हुआ तो अब वादा हुआ। मुद्दतें वादे के पूरा होने के इन्तज़ार में गुज़र गईं। इस पर भी मिलना हो या न हो। और अगर मिलना भी हुआ तो क्या ज़रूरत है कि स्थायी हो। एक रात कहीं इत्तफ़ाक़ से बिगड़ी हुई तक़दीर रास्ते पर आ गई फिर वही फ़िराक़, वही इन्तज़ार, वही रात को तारे गिनना, वह रोना पीटना।

अगर इन्कार हो गया तो, अगर बड़े सख़्त जान हुए और उसी वक़्त दम न निकल गया तो एक उम्र मरना पड़ा। अब देखिये नवाब की तक़दीर में क्या लिखा है। चार बजे सवार हुए। गाड़ी ख़लीफ़ा जी के इशारों पर रवाना हुई।

× × ×

मेरी आँखें नसब हों रौज़ने दीवार जानां में,
कोई तजवीज़ ए मेमार ऐसी बस्महल निकले।

कश्मीरी मोहल्ला, मनसूरनगर, काज़मैन—यह सब महल्ले तय हुए। दयानत दौला की करबला के पास गाड़ी रुकी। नवाब साहब, ख़लीफ़ाजी और एक ख़िदमतगार गाड़ी पर से उतरे।

सड़क की बाईं तरफ़ एक गली में रवाना हुए। पेच दर पेच गलियों में से होते हुए खुदा जाने कहाँ से कहाँ जा निकले। खिदमतगार अगरचे खलीफ़ाजी का आवुर्दा (पिट्ठू) था, मगर फिर भी एहतयात के लिये उसे एक जगह ठहरा दिया। अब यहाँ से नवाब साहब और खलीफा एक पतली सी गली में रवाना हुए। यह गली एक नाले पर खतम हुई। उस नाले में से होकर फिर कई गलियाँ तय कीं। अब वीराना सा मिला। इसमें एक पुख्ता मकान था, मगर बहुत ही बोसीदा, जगह जगह से टूटा हुआ। इस मकान के बराबर एक और छोटा सा मकान था जिसमें ताला पड़ा था। खलीफ़ाजी ने जेब से कुंजी निकाली। ताला खोला। नवाब साहब को अंदर ले गये। लकड़ी का जीना लगा हुआ था। उस पर से कोठे पर चढ़े। एक छप्पर सा पड़ा हुआ था। इस छप्पर में एक चटाई पड़ी हुई थी। यहाँ दोनों साहब बैठे। जहाँ पर बैठे थे, उसके पास दीवार में एक झरोखा था। खलीफ़ाजी ने कहा, 'इस झरोखे से आँख लगाकर कुदरत का तमाशा देखिये।' नवाब साहब ने झरोखे से आँख लगाकर झांका। सामने पुख्ता मकान का दालान था। उसमें तख्तों का चौका लगा हुआ था। गाव तकिये से लगी हुई एक बड़ी बी बैठी हुई थीं।

नवाब साहब—एक बुढ़िया सामने बैठी है।

खलीफ़ा—मैं देखूँ।

खलीफ़ाजी ने कहा "फिर देखिये। मैं अभी आता हूँ।" नवाब साहब दीवार के झरोखे से नजर लगाकर फिर देखने लगे।

आखिर वह चन्द्रमुखी नजर आई और नवाब साहब की खुश नसीबी से इसी तरफ़ मुँह करके बैठी। नवाब साहब देखते ही गश (बेहोश) हो गये। परी की सूरत थी। चंपई रंग, बड़ी

बड़ी आँखें, सुतवां नाक, पतले पतले होंठ, नाज़ुक नाज़ुक नक़्शा, छरैरा बदन, बूटा सा क़द, सुघड़ अंग, उठती जवानी। हम तो इतना ही कह सकते हैं कि सौ दो सौ सुन्दरियों में एक सुन्दरी थी। मगर नवाब साहब को झरोखे से जो दृश्य नज़र आया होगा, उसका हाल नवाब साहब के दिल से पूछिये या ख़लीफा जी की ज़बान से सुनिये।

नवाब--वल्लाह, क्या प्यारी सूरत है!

ख़लीफा--ख़ैर, यह कहिये पसंद है या नहीं?

नवाब--मेरा तो अभी से दम निकला जाता है। हाय! इससे मिलना भी मुमकिन है?

ख़लीफ़ा--मुमकिन है। मगर मुश्किल से। इज़्ज़तदार लोग मालूम होते हैं। यह बड़ी दिक्क़त से राज़ी होंगे। कुछ इस नज़र से तो आपको दिखाया न था। आप तो उस रंडी को लासानी समझते थे। अब कहिये।

नवाब--अब उसका ज़िक्र ही न कीजिये। कहाँ वह और कहाँ यह। वाक़ई कोई मुक़ाबला ही नहीं। मैंने तो भई, ऐसी सूरत नहीं देखी। मगर अब मिलने की तदबीर बताइये।

ख़लीफ़ा--कह तो दिया। दुश्वार बल्कि क़रीब क़रीब नामुमकिन।

नवाब--जो कुछ हो।

ख़लीफ़ा--अच्छा तो इस वक्त, इन बातों का मौक़ा नहीं। ख़ूब जी भर के देख लीजिये। फिर कुछ न कुछ तदबीर की जायगी। आगे आपकी क़िस्मत।

नवाब--हाय ऐसा तो न कहिये। आप तो अभी से कलेजा

फाड़े देते हैं, जी भर के देखना कैसा। अगर जिंदगी भर देखा करूँ तो भी जी न भरे।

खलीफ़ा—ले अब घर चलिये। शाम होती है और यह रास्ता भी ठीक नहीं। यहाँ दिन दहाड़े कपड़े छिन जाते हैं।

नवाब—(सहम कर) खुदा के लिये एक नजर तो और देख लेने दीजिये।

खलीफ़ा—अच्छा जल्दी से देख लीजिये।

नवाब साहब की निगाहें झरोखे से हटती ही न थीं खलीफ़ा जी बड़ी मुश्किल से उठाकर लाये। रास्ते में नवाब साहब अगरचे उस वक्त बहुत पिये हुए न थे मगर मतवालों की सी चाल चल रहे थे। क़दम रखते कहीं थे, पड़ता कहीं था। बड़ी मुश्किल से इतना रास्ता पूरा हुआ। रास्ते से खिदमतगार को लिया। गाड़ी पर आये। कोचवान ने गाड़ी की लालटेन रोशन की। खिदमतगार ने बोतल खोली। एक एक दौर चला। उसके बाद रवाना हुए। मनसूर नगर से होते हुए नखास पहुँचे। वहाँ से ताल कटोरे की करबला की तरफ़ गाड़ी मोड़ दी शाम को अकसर रोज़ हजरतगंज की तरफ़ जाया करते थे मगर आज खलीफ़ा जी जान बूझकर वीराने की तरफ़ ले चले ताकि नवाब साहब के दिमाग़ में वह ख्याल पक्का हो कर जम जाय। रोज़ की तरह आठ बजे तक इधर उधर फिरते रहे। नौ के अमल में मकान पर वापिस आये। नवाब साहब का घाव ताज़ा था। सर्द आहें भर रहे थे।

खलीफ़ा जी ने जब यह रंग देखा, और ही राह पर चले। बेपरवाही ज़ाहिर करने लगे। ग़रज़ कि दो ही घंटे में नवाब

को अच्छी तरह कस लिया। कामयाबी की छांह तक न दी। नौजवान अमीर-ज़ादा मुर्ग़ बिस्मिल की तरह फड़क रहा था और ज़ालिम ख़लीफ़ा अपनी कारगुज़ारी से खुश हो हो कर और फड़का रहा था। आज रात को नवाब ने खाना भी कम खाया। शराब बहुत सी पी। मगर ख़याल में क़यामत की लहरें उठ रही थीं। इसलिये नशे का असर बिलकुल न हुआ। ख़लीफ़ा दस बजे रुख़सत हुए। नवाब साहब रात भर पानी से बाहर मछली की तरह तड़पा किये। बड़ी मुश्किल से दो बजे रात को नींद आई।

× × ×

हकीम साहब के घर पर आज किसी के आने का इन्तज़ार है। मियां नबीबख़्श इन्तज़ाम में लगे हुए हैं। तख़्तों के चौके पर चाँदनी बदली गई है। मसनद तकिया ढंग से लगाया गया है। दो कँवल कमरे में रोशन किये गये हैं। ख़ासदान में चांदी के वर्क़ की गिलौरियाँ भरी हुई हैं। अहाते में दो फ़ानूस ज़मीन में गाड़े गये हैं। खुद हकीम साहब के ठाठ देखने के लायक़ हैं। विलायती चिकन का कुर्ता, जामदानी का अँगरखा, सब्ज़ मशरू का पाजामा, ज़र्द मख़मली बूट, कुमकुमे-दार टोपी, एक ज़रा कज (टेढ़ी) रक्खी हुई है। डाढ़ी ख़ुर्दबीनी कतरवाई गई है। मूछों में एक सफ़ेद बाल भी नज़र नहीं आता। हल्का सुर्मा भी आँखों में दिया गया है। तेल पटों में से टपक रहा है। इत्र में सारा बदन ग़र्क़ है।

सवा आठ बजे के क़रीब गाड़ी की कड़कड़ाहट की आवाज़ आई। मियां नबीबख़्श दौड़े। हकीम साहब घबराकर मसनद

से उठ खड़े हुए। गाड़ी अहाते के पास थी। बी महरी हाँपती हुई उतरीं।

महरी—(हकीम साहब से) बरफ़ है।

हकीम साहब—हाँ मौजूद है।

नबीबख़्श चाँदी की लुटिया में बरफ़ बनाके लाये बी महरी गाड़ी के पास लेकर गईं। महरी लुटिया गाड़ी में देकर वापिस आईं। चाँदी का ख़ासदान ले गईं। वह भी गाड़ी में ग़ायब हुआ। दूसरे फेरे में चाँदी की गुड़गुड़ी, जो मियां नबीबख़्श ने पहले से भरके रख दी थी, ले गईं।

हकीम साहब इस इन्तज़ार में हैं कि बेगम साहब उतर के आएँगी। मसनद तकिये पर कँवलों की रोशनी में तशरीफ़ रक्खेंगी। मगर कुछ न हुआ। चंद लमहे के बाद महरी जो आईं तो हर्फ़ रुख़सत (विदा) ज़बान पर लाईं। हकीम साहब, अंदर की साँस अंदर और बाहर की बाहर, सन्न से हो गये।

हकीम साहब—तो क्या उतरेंगी नहीं।

महरी—नहीं। इस वक़्त गर्मी बहुत है। देर से सवार हुई हैं। अभी एक जगह और जाना है।

इस बात ने हकीम साहब के दिल पर नश्तर का काम किया मगर हो ही क्या सकता था।

महरी—मैं कोई घंटे भर में सवारी पहुँचाकर आती हूँ। आप कहीं जाइयेगा नहीं।

हकीम साहब कुछ उधर के पैग़ाम की राह देख रहे थे, मगर महरी ने इस वक़्त तक एक बात भी ऐसी नहीं कही जिससे दिल को कुछ तसल्ली होती। चलते चलते फूलों का गहना, चाँदी के

चंगेरदान समेत उठा लिया और यह जा वह जा। गाड़ी में जा बैठीं। गाड़ी चल निकली।

हकीम साहब इस फ़िक्र में हैं, अफ़सोस सोने की चिड़िया जाल के क़रीब आकर बैठी, दाना खाया, और फुर्र से उड़ गई। इतने में नबीबख़्श सामने आ खड़े हुए। आये तो जी जलाते हुए आये।

नबीबख़्श—हाय, दम भर न ठहरीं। हमने तो जाना था घड़ी दो घड़ी बैठेंगी। बातचीत होगी, आपसे सामना होगा। वह तो खड़ी सवारी आईं और रवाना हो गईं।

हकीम साहब—बी महरी की कारस्तानी है।

नबीबख़्श—(बात का पहलू भूल के) महरी का क्या क़सूर मालूम होता है कोई ज़रूरी काम था। नवाजगंज की तरफ़ गाड़ी गई है। ख़ैर फिर आयँगी। और यह ख़ासदान और गुड़गुड़ी भी लेती गईं ?

हकीम साहब—क्या हर्ज है चंगीरदान भी तो ले गईं।

नबीबख़्श—और चंगीरदान भी गया। अच्छा तो कोई दो सौ की रक़म ले गई हैं।

हकीम साहब—दिल में अंदाज़ा करने लगे। वाक़ई इतने ही का माल था। अब देखिये वापिस भी आता है या नहीं।

वापिसी का फ़िक्र इसलिये थी कि यह सब असबाब मांगे का था। अगर वापिस न आया तो माल के मालिक से क्या कहा जायगा। हर सूरत में अब तो गया ही। हकीम साहब ने यह अंदाज़ा दिल ही दिल में किया था मगर नबीबख़्श तो पेसे

आदमी थे कि जो हकीम साहब के दिल में हो, वह उनकी जबान पर जारी हो जाय।

नबीबख्श—खैर, जाने दीजिये। खुदा ने चाहा तो कुछ लेकर आयगा।

हकीम साहब को इस वक्त यह बातें कुछ ऐसी अच्छी नहीं मालूम होती थीं। बहुत झुँझलाये हुए बैठे थे। इसलिये कि वादा यह हुआ था कि बेगम साहब आएँगी, दो तीन घंटे तशरीफ रक्खेंगी, खासा नोश फर्माएँगी (खाएँगी)। आज ही कुल झमेले तय हो जायँगे। यहाँ यह कुछ भी न हुआ।

हकीम साहब—ले के क्या आयगा? यह कहते क्या हो? शायद अफीम ज्यादा हो गई।

नबीबख्श—बेगम साहिबा को ले के आयगा। अफीम आपकी सलामती में कहाँ ज्यादा होती है। वही दोपहर को धेले की पी थी। दौड़ते-दौड़ते पाँव टूट गये।

हकीम साहब कुछ कहने को थे कि इतने में बी महरी सामने से आ पहुँचीं। और हकीम साहब की सूरत देखते ही—

महरी—मुबारक हो। ले इनाम दिलवाइये।

हकीम साहब—यह मुबारकी काहे की। इनाम कैसा। अभी हुआ ही क्या है?

महरी—हाँ, अब कैसा है, यह तो कहिये ही गा। आप तो अभी से ऐसी बातें करने लगे। फिर बे-घोड़े यहीं-से ऐसे में सवेरा है।

महरी की बातें ऐसी न थीं कि हकीम साहब का मिज़ाज दुरुस्त न कर देती, इसलिये कि यह समझे हुए थे कि सोने की

चिड़िया का उड़ा लाना और दाम में फँसवा देना उसके हाथ में है।

हकीम साहब—कुछ कहो तो क्या हुआ?

महरी—कहते तो हैं। सब बात ठीक ठाक हो गई। अब की नौचंदी को ताल कटोरे की करबला में आपको बुलाया है।

हकीम साहब—तुमने तो कहा था वह उतर के आएँगी, थोड़ी देर बैठेंगी। हमने यहाँ खाना वाना तैयार करवाया था। किश्तियाँ लगी रक्खी हैं।

महरी—इसीलिये तो मैं आई हूँ। मजदूर बुलवाइये। यह सब साथ कर दीजिये। मैंने सब कह दिया है।

हकीम साहब—यहाँ उतर के क्यों न आईं।

महरी—देखो तो नबीबख्श, इनकी कैसी कैसी बातें हैं। लाख कुछ हो, फिर औरत जात हैं। घर से यही इरादा करके चली थीं, यहाँ पहुँच कर हियाव न पड़ा। हिचकिचा गईं। फिर आएँगी।

हकीम साहब—फिर क्या कहती हो कि सब बात ठीक ठाक हो गई। न उन्होंने मुझे देखा न मैंने उन्हें देखा और सब बात ठीक ठाक हो गई। तुम भी क्या आदमी हो।

महरी—देखा क्यों नहीं। जब आप नीम के पास खड़े थे, उन्होंने अच्छी तरह देखा।

नबीबख्श—फिर क्या कहा?

महरी—कहतीं क्या?

नबीबख्श—मतलब यह है कि हमारे हकीम साहब को पसंद भी किया।

महरी—पसंद क्यों नहीं किया। कहती थीं अभी तो ऐसे बुड्ढे नहीं है।

हकीम साहब इस फ़िक़रे से कुछ ऐसे खुश नहीं हुए, इसलिये कि अपने आपको जवान छैला समझते थे। और यह फ़िक़रा सचाई का पहलू लिये हुए था। हकीम साहब के माथे पर शिकन पड़ने ही को थी कि नबीबख्श ने जोड़ का तोड़ किया। और बेगम सहिबा माशा अल्लाह से कब जवान हैं।

महरी—यह मैं कब कहती हूँ। जवान तो नहीं हैं। मगर माशा अल्लाह से मेरी आँखों में खाक, अभी जवानों से अच्छी हैं। एक बाल सर में सफ़ेद नहीं। चेहरे पर एक झुर्री का निशान तक नहीं। अमीरज़ादियां कहीं बुड्ढी होती हैं।

नबीबख्श—सच है। अच्छा तो मैं सौ बात की एक बात कह दूँ। अच्छा खासा जोड़ है।

महरी—हाँ आँ। अजी लाख रुपये की एक बात तो यह है कि मर्द जात की सूरत क्या। खूबसूरती तो औरत के लिये चाहिये है।

इस तक़रीर पर नबीबख्श और महरी की बहस का फ़ैसला हो गया।

खाना रकाबियों में निकलने लगा। रकाबियां ख्वानो में चुनी गईं। किश्तियां पहले ही से सजी सजाई रक्खी थीं। फूलों का गहना महरी पहले ही से ले जा चुकी थी। नबीबख्श चार मजदूरनियां बुला लाये। ख्वान कसनों में कसे गये। ऊपर से

ख्वान पोश डाले गये। किश्तियों पर किश्ती पोश पड़े। बी महरी इनाम के लिये झगड़ने लगीं। मगर इसका फ़ैसला सुबह पर ठहरा। मियां नबीबख्श बी महरी के साथ हुए। ख्वान किश्तियां रवाना हुईं। हक़वाले को हक़ पहुँचा।

× × ×

दिल लगाने को न समझो दिल्लगी,
दुश्मनों की जान पर बन जायगी।

हमारे भोले भाले नवाब साहब को अभी पहले पहल दिल लगाने का इत्तफ़ाक़ हुआ है। पर्दानशीनों के इश्क़ में हज़ारों आफ़तों का सामना होता है। लाख तदबीरों से एक झलकी नजर आती है। उस पर यह सितम कि अगर किसी ने झाँकने ताकते देख लिया, बदनाम हुए। लोग दुश्मन हो गये। अपने बेगानों की नज़रों से गिर गये। एतबार जाता रहा। और अगर किसी ने न देखा, ख़ुद अपना अंतःकरण धिक्कार देता है। और जिसे पाप-पुण्य की तामीज़ नहीं, उसे भले आदमी मुर्दा समझते हैं। मगर न हम छोटे नवाब साहब के उस्ताद और न ख़लीफ़ा जी के सलाहकार। हमको तो सिर्फ़ घटनाओं के लिख देने से काम है।

दूसरे दिन छोटे नवाब ख़लीफ़ा जी की मिन्नत आरज़ू करके उस ख़ाली मकान में ले गये। नवाब साहब ने झरोखे से झाँक कर देखा। मकान ख़ाली पड़ा था। बड़ी देर तक देखते रहे। न व तख्तों का चौका था, न बुढ़िया थी न वह परी-पैकर।

नवाब—हाय, यहाँ तो कोई नज़र नहीं आता।

खलीफ़ा—कहीं गई होंगी। ज़रा ठहरिये।

नवाब—और वह तख्तों का चौका भी तो नहीं। यह तो जैसे मकान खाली पड़ा है। वह घड़े टूटे हुए सामने पड़े हैं। यह मामला क्या है?

खलीफ़ा—(झरोखे में देख के) हाँ, सच तो है। हाय, यह क्या हुआ। क्या यह लोग मकान से उठ गये।

खलीफ़ा जी और नवाब साहब दोनों उस छप्पर से बाहर निकले। खलीफ़ा जी ने पहले एक छोटी सी कंकड़ी उस मकान की तरफ़ फेंकी। फिर एक बड़ा सा ढेला फेंका। मतलब यह था अगर कोई मकान में होगा तो गुल मचाएगा। कोई आवाज़ न आई। इस मकान की दीवारें छोटी छोटी थीं। ख़लीफ़ा जी और नवाब दोनों दीवार पर चढ़ गये। देखा तो मकान बिलकुल ख़ाली पड़ा है। कानी चिड़िया तक नहीं। मकान बिलकुल ढाया हुआ पड़ा था। सिर्फ़ वही एक दालान बाक़ी था, जिसमें उस दिन वह बुढ़िया और वह परी नज़र आई थी।

खलीफ़ा—इस मकान में रह कौन सकता है। यह तो बिलकुल गिरा हुआ है।

नवाब—फिर वह लोग इसमें क्योंकर रहते थे?

खलीफ़ा—यही तो मैं भी हैरान हूँ। (फिर कुछ भयभीत होकर) चलिये घर चलें। यह तो कुछ अजीब तिलस्मात है।

नवाब—चलिये।

दोनों साहब मकान से बाहर निकले।

खलीफ़ा—चलिये, ज़रा इस मकान को अंदर से देखते चलें।

नवाब—हाँ, यह तो आपने मेरे दिल की कही।

खलीफ़ा और नवाब दोनों उस घर में गये। कोना कोना देखा। ऐसा मालूम होता था जैसे यहाँ कोई कभी रहता ही न था। चूल्हा न चक्की, किसी चीज़ का निशान न था। दालान के ताक़ में एक कोरी काग़ज़ी हाँडी रक्खी हुई थी। नवाब ने उसे उठाके देखा। उसमें पाँच गिलौरियां एक शालबाफ़ (लाल रेशम) की साफ़ी में लिपटी हुई रक्खी थीं और सात फूल बेले के पड़े थे। एक काग़ज का पर्चा रक्खा था। गिलौरियां निहायत ही नफ़ीस बनी हुई, इत्र में बसी हुई थीं। दो पर सोने का वर्क़ लिपटा हुआ था और तीन पर चांदी का वर्क़ था। क़ाग़ज के पर्चे पर कुछ नक़्श ऐसा बना हुआ था।

|४१३६| |४६५२|

नवाब—मैं न मानू—यह कुछ असरार (रहस्य) है।

खलीफ़ा—इसमें शक ही क्या। लिल्लाह घर चलिये। हाँडी को यहीं पटखिये। ख़ुदा जाने क्या हो क्या न हो।

नवाब—हाँडी तो मैं लेता चलूँगा। मगर आप इस मकान तक क्योंकर पहुँचे। मैं न जानता था। आप बड़े सख्त दिल के आदमी हैं।

खलीफ़ा—अब यह क़िस्सा बयान न करूँगा। दिल क़ाबू में आवे तो कहूँ।

खलीफ़ा जी की सूरत और आवाज़ से ऐसा मालूम होता था जैसे कोई डर गया।

दोनों साहब गाड़ी की तरफ़ रवाना हुए। रास्ते में खिदमतगार मिला। नवाब ने हाँडी उसको दे दी। थोड़ी दूर जाके खलीफ़ा ने कहा—"खूब याद आया। मकान की कुंजी तो मीर साहब को देता चलूँ।"

नवाब साहब—मीर साहब कौन ?

खलीफ़ा—जिनका वह मकान है जहाँ से आपने उस परी (अब तो परी कहना ही चाहिये) को देखा था।

वहाँ से थोड़ी दूर पर एक गली में से होके मीर साहब का मकान था। दोनों वहाँ गये। खलीफ़ा ने आवाज़ दी। मीर साहब एक बूढ़े से आदमी नीली लुंगी बाँधे हुए घर से निकल आए।

खलीफ़ा—(मीर साहब से) लीजिये हज़रत यह अपने मकान की कुंजी लीजिये।

मीर साहब—क्यों ख़ैर तो है ?

खलीफ़ा—जी कुछ नहीं। मैं न रहूँगा।

मीर साहब—आप रहिये या न रहिये, एक महीने का किराया जो आपने दिया है वापिस न होगा।

खलीफ़ा—जनाब मैं किराये से बाज़ आया। आपका मकान आपको मुबारक रहे।

मीर साहब—आखिर कुछ कहिये तो। आप इस क़दर नाराज़ क्यों हैं ? मुझसे तो कुछ क़सूर नहीं हुआ ?

खलीफ़ा—अव्वल तो वीराने में मकान है। वह मकान जो उसके बराबर है, उसमें कोई रहता था। वह भी उठ गया। अब तो बिलकुल ही उजाड़ हो गया।

मीर साहब—उस खंडहर में कौन रहता था। वह तो बरसों से खाली पड़ा है। भला वह किसी के रहने के क़ाबिल है ?

खलीफ़ा—मैंने सुना था उसमें दो औरतें रहती हैं। इसी सहारे पर मैंने मकान लिया था। मेरे घर की औरतें भी

वहाँ रहतीं। मैं किसी दिन आया न आया। खैर आबादी तो थी।

मीर साहब—दुरुस्त। जनाब उस खंडहर में बरसों से कोई नहीं रहता। आपने किससे सुना था कि उसमें औरतें रहती हैं। मेरे बड़े भाई का वह मकान है। अगर कोई रहता होता तो मुझे न मालूम होता? क़सूर माफ़ हो, आपको वहम है।

ख़लीफ़ा—ख़ैर ऐसा ही होगा। कुंजी तो लीजिये। मीर साहब ने कुंजी ले ली। ख़लीफ़ा और नवाब दोनों रुख़सत हुए। जिस वक़्त ख़लीफ़ा और मीर साहब में बातें हो रही थीं, एक बुज़ुर्ग उस महल्ले के रहनेवाले स्याह-फ़ाम (रंग) से, पस्ता क़द खड़े सुन रहे थे। जब ख़लीफ़ा ने कुंजी मीर साहब को दी और वह मकान में चले गये, वह साहब साथ साथ हो लिये।

चंद क़दम आगे बढ़कर वह ख़लीफ़ा से बातें करने लगे।

वह साहब—वह मकान आपने अपने रहने को लिया था?

ख़लीफ़ा—जी हाँ।

वह साहब—ग़ज़ब किया था!

ख़लीफ़ा—क्यों?

वह साहब—जनाब उस खंडहर में रहस्य है। रातों को गाने की आवाज़ आया करती है। मोहर्रम में मातम होता है। रातों को अकसर रोशनी नज़र आती है। फिर सुबह को जाके देखो तो कुछ भी नहीं। यह तो महल्ला भर जानता है कि उसमें जिन्न रहते हैं। आपने अच्छा किया मकान ख़ाली कर दिया। और किराया क्या दिया था?

ख़लीफ़ा—डेढ़ रुपया।

वह साहब—अच्छा तो आप डेढ़ रुपये से हाथ धोइये। और अब कभी उस तरफ़ का रुख़ न कीजियेगा।

ख़लीफ़ा—मगर मीर साहब को देखिये। हमसे न कहा कि मकान में आसेब है और ऊपर से झुटालते हैं। वाह क्या शराफ़त है!

वह साहब—जनाब वह क्यों कहते? उनका तो फ़ायदा था। डेढ़ रुपया आपसे क्योंकर वसूल होता।

ख़लीफ़ा—अपना तो डेढ़ रुपये का फ़ायदा हुआ और दूसरों की जान पर बन गई होती।

वह साहब—उनकी बला से। इसी तरह जब कोई फँस जाता है उससे किराया मार लेते हैं। उस मकान में हज़रत कोई ठहर ही नहीं सकता।

ख़लीफ़ा—ख़ैरियत हुई कि अभी मैं अपना असबाब वग़ैरह नहीं लाया था।

वह साहब—मुफ़्त में बारबर्दारी (ढुवाई) पड़ जाती। मीर साहब की दिल्लगी थी। मेरी राय में तो ऐसे मकान को खुदवा के ज़मीन बराबर करवा दी जाय।

ख़लीफ़ा—जी हाँ, दुरुस्त है।

इतनी बातें हुई थीं कि वह साहब रास्ते से अलेहदा हो गये। ख़लीफ़ा और नवाब में इन पिछली घटनाओं पर बातचीत होने लगी।

ख़लीफ़ा—सुना आपने यह भी अजीब मामला हुआ।

नवाब—मगर यह तो कहिये आप यहाँ तक क्योंकर पहुँचे।

खलीफ़ा—बात यह हुई कि मैं कोई आठ दस दिन हुए इधर से जाता था। इस टूटे मकान के क़रीब पहुँच के मेरी नज़र उस चंद्रमुखी पर पड़ गई। जब मेरी उसकी चार आँखें हुई तो उसने मुस्किरा कर मुँह फेर लिया। अब मुझे यह ख़याल पैदा हुआ कि यहाँ किस तरह रसाई (पहुँच) करना चाहिये। यह मकान मुझको ख़ाली मालूम हुआ। मेरे जी में आई कि यह मकान किराये पर ले लूँ। कोई न कोई सूरत निकल ही आयेगी। मेहतरानी खड़ी थी। मैंने उससे दरयाफ़्त किया कि यह मकान किसका है। उसने मीर साहब का पता दिया। मैंने मीर साहब के पास जाकर मकान किराये पर ले लिया। यह सब तदबीरें अपने लिये की थीं।

उस दिन बादशाह बाग़ में आप उस रंडी की तारीफ़ करने लगे। यह सूरत मेरी नज़र में थी। मैंने कहा नवाब साहब को ज़रा एक झलकी दिखा दूँ। ऐ लीजिये, यहाँ यह मामला निकला। चलिये यहीं तक ख़ैरियत हुई।

नवाब—मगर क्या बला की सूरत है। मेरी तो नज़र से ऐसी सूरत नहीं गुज़री। वल्लाह कलेजे पर एक दाग़ हो गया।

खलीफ़ा—अब उसका ख़याल न कीजिये। अच्छा हुआ अभी से हाल खुल गया वरना ख़ुदा जाने क्या आफ़त होती। मगर यह आपका इक़बाल (सौभाग्य) है कि आपने परी को आँख से देख लिया। कहीं यह सूरतें देखना नसीब होती हैं। परी का हाल क़िस्सा कहानियों मे सुनते थे। यहाँ आँखों से देख लिया। मगर एक बात मैं आपको और समझाये देता हूँ, लिल्लाह, इसका ज़िक्र किसी से न कीजियेगा। और उन गिलौरियों से तो एक और बात समझ में आती है।

नवाब—वह क्या ?

खलीफ़ा—इस वक़्त का कहना मेरा याद रखियेगा, वह आपसे कहीं न कहीं मिलेगी जरूर।

नवाब—हाँ यह बात तो मेरे खयाल में भी आती है। अजब नहीं। मगर बस पर्चे में खुदा जाने क्या लिखा है।

खलीफ़ा—लाइये, देखूँ।

नवाब—(जेब से पर्चा निकाल के दिया) देखिये, खुदा जाने कौन सा खत (लिपि) है।

खलीफ़ा—जिन्नी खत है। देखिये मैं करामत अली शाह साहब को ले आऊँगा। वह साहब पढ़ देंगे।

नवाब—हाँ ऐसे लोग भी हैं जो यह खत पढ़ लेते हैं ?

खलीफ़ा—जो लोग अमल वग़ैरह करते हैं, वहीं पढ़ सकते हैं। आप देखियेगा करामत अली शाह साहब बड़े कामिल हैं। बल्कि वह आपको और कुछ हाल भी बताएँगे। इस फ़न में यकता हैं।

नवाब—वल्लाह, हमारा शहर लखनऊ लाख गया गुज़रा है मगर इसमें अभी हर फ़न का कामिल मौजूद है। मीर करामत अली शाह साहब से मैं जरूर मिलूँगा।

खलीफ़ा—क़ाबिल मिलने के हैं। मगर ज़रा बेपरवा आदमी हैं।

नवाब—कामिल हैं, उनको परवा क्या है। मगर वह हमारे घर काहे को आयँगे।

खलीफ़ा—अव्वल तो मैं उन्हें ले आऊँगा और अगर शायद न आये तो आपको चलने में कोई इन्कार है ?

नवाब—मैं आँखों से चलूँगा। अव्वल तो अपना मतलब, दूसरे वह फ़क़ीर हैं। ऐसों से मिलना फ़र्ज़ (धर्म) है बल्कि इसी वक़्त चलिये।

ख़लीफ़ा—यह तो उनके मिलने का वक़्त नहीं। दूसरे यह कि मैं उनसे आपका ज़िक्र कर लूँ तो चलिये। कल बुध का दिन है, मैं जाऊँगा। परसों जुमेरात (बृहस्पति) को आपको ले चलूँगा।

नवाब—रहते कहाँ हैं ?

ख़लीफ़ा—गोमती उस पार। नसीरुद्दीन हैदर बादशाह की करबला के पास रहते हैं। चलके देखियेगा। क्या सुहावनी जगह है। मेरा तो वहाँ ऐसा जी लगता है कि जब जाता हूँ, उठने को जी नहीं चाहता।

नवाब—तो कल आप जाइयेगा।

ख़लीफ़ा—ज़रूर; और ख़ुदा चाहे तो परसों आपको ले चलूँगा।

मगर एक बात है कि वह ज़रा अमीरों से कम मिलते हैं। इन बातों में गाड़ी तक पहुँच गये थे। अब गाड़ी पर सवार हुए। परी का ख़त नवाब ने ख़लीफ़ा से लेकर बड़ी चाव-भरी निगाह से कई बार देखा और फिर जेब में डाल लिया।

रुक़्क़ा, गिलौरियाँ, फूल, हांडी, इन में से हर चीज़ को नवाब बार बार देखते थे। हसरत और शौक़ दोनों ने दिमाग़ पर कब्ज़ा कर लिया था। किसी और ख़याल को आने ही न देते थे। गाड़ी में बैठकर कुछ देर बाद नवाब साहब ने कहा—"जी चाहता है इनमें से एक गिलौरी खाऊँ।"

ख़लीफ़ा—शौक़ से नोश कीजिये। मुझे यक़ीन है कि यह

पान वह आपके लिये ही रख गई है। अब करामत अलीशाह से पूछें तो कुछ हाल खुले। मुझे तो यक़ीन है कि कहीं उसकी नज़र भी आप पर पड़ गई है। अजब नहीं वह आप पर आशिक़ हो।

नवाब--नहीं, मुझ पर क्या नज़र पड़ी होगी।

खलीफ़ा--नवाब यह न कहिये। आपकी सूरत-दारी (सुंदरता) में किसको शक हो सकता है। एक तो खुदा के फ़ज़ल से जामा-ज़ेबी वह क़यामत की है कि जो आप पहन लेते हैं, आप पर फब जाता है। हमने तो ऐसी कपड़े की फबन किसी पर नहीं देखी। हाँ (ईश्वर उन्हें सद्गति दे) आपकी जान से दूर, बड़े नवाब भी जामाज़ेब थे उन्हें भी पोशाक खूब फबती थी।

नवाब--(इस मौरूसी गुण को सुनकर बहुत ही खुश हुए) हाँ, वालिद मरहूम की जामा-ज़ेबी तो मशहूर थी।

खलीफ़ा--फिर आप भी तो उन्हीं के बेटे हैं। उनकी कौन सी सिफ़्त आपने छोड़ दी है। सूरत-शकल, बात-चीत का अंदाज़ सब वही है।

नवाब--जी हाँ, सूरत तो मेरी उनसे बहुत मिलती है।

इन बातों में गाड़ी मकान पर पहुँच गई थी। दोनों उतरे। शराब अर्ग़वानी (लाल) का दौर चलने लगा। उसके बाद खासा आया। नवाब साहब पर इश्क़ का जिन (भूत) सवार था। कुछ नाम मात्र को खा लिया। खलीफ़ा जी ने बेशक जी भर के खाना खाया। उसके बाद नवाब साहब पलंग पर गये। खलीफ़ा रुख़सत हुए।

× × ×

जिस दिन बेगम साहिबा पर छोटे नवाब के शराब पीने का भेद खुल गया था, उस दिन से उन्हें इनकी तरफ़ से कोई उम्मेद नहीं रही थी। मगर थीं अक़्लमंद। इसलिये उन्होंने छोटे नवाब पर यह नहीं ज़ाहिर होने दिया कि उन्हें सब हाल मालूम है। जानबूझ कर अनजान बनी रहीं ताकि आँख का लिहाज़ बाक़ी रहे। नवाब साहब अब मामूली तौर से बाहर ही सोने लगे। बेगम साहिबा ने भी किसी ख़याल से उज्र नहीं किया।

सिर्फ़ सुबह को सलाम के लिये जाते थे। इसमें भी कभी कभी नाग़ा होने लगी। बेगम ने इस पर भी नाराजी ज़ाहिर न की। जब सामना हो गया उन्हीं तेवरों से मिलीं जैसे पहले मिलती थीं। और अगर दो दिन भी महल में न गये, खुद न बुलाया। ज़ाहिरदारी में ख़ातिरदारी में किसी तरह की कमी नहीं की। सिर्फ़ नौकरों को समझा दिया था कि छोटे नवाब के खाने पीने के बरतन अलेहदा रक्खो। मगर इस तरह कि छोटे नवाब को मालूम न होने पावे। खुद हद की मज़हब की पाबंद थीं। बड़े नवाब के मरने के बाद तबीयत में एहतियात (परहेज़) ज़्यादा हो गई थी। हर चीज़ को अपने सामने धुलवाती थीं। इस बात में किसी पर एतबार न था। अपना खाना अपने सामने पकवाती थीं। कहीं से कैसी ही चीज़ तुहफ़ा (भेंट) क्यों न आवे, मुमकिन न था कि ज़बान पर भी रख लें। अज़ीज़ों (रिश्तेदारों) के घर पर आना जाना बिलकुल बंद कर दिया था। छोटे नवाब की आवारगी (भ्रष्टता) ने उनके मिज़ाज में एक ख़ास तग़य्युर (परिवर्तन) पैदा कर दिया था। अब हर चीज़ से उनको नफ़रत सी हो गई थी। न किसी से मिलना पसंद करती थीं। दुनियां से कुछ काम न था। चुपचाप बैठे

रहना या किताब देखना या चिट्ठी-नवीस से पढ़वा के सुनना। किताबें भी वह जिनमें खुदा और रसूल की कुछ बातें हों। किस्सा कहानियों की किताबों से पहले बहुत शौक़ था मगर अब उससे जी हट गया था।

चिट्ठी-नवीस ग़ज़ब की औरत थी। नौकर होने के बाद उसने बड़ी कोशिश की कि किसी तरह बेगम साहिबा के मिजाज को अपने रंग पर लाऊँ मगर बेगम साहिबा किसी तरह न पसीजीं। पढ़ी लिखी होने के कारण चिट्ठी-नवीस को वह पसंद करती थीं मगर चिट्ठी-नवीस का रंग-ढंग उनको कुछ अच्छा नहीं मालूम होता था। इसलिये बेगम साहिबा ने उनको नौकरों की हद पर रक्खा था। किसी तरह की बेतकल्लुफ़ी (घनिष्ठता) का बर्ताव नहीं रक्खा था। बेगम साहिबा के दिल की बातें उनके दिल ही में रहती थीं। कभी किसी से कही सुनी न जाती थीं। बड़े नवाब के मरने के बाद किसी को नहीं बता सकते हैं जिससे उन्होंने अपनी कोई गुप्त बात कही हो। हिसाब-किताब के वक्त बिलकुल बेमुरव्वत हो जाती थीं। मुमकिन न था कि उनकी एक कौड़ी भी किसी के जिम्मे रह जाय। इससे दिल की तंग मशहूर थीं। असल में ऐसा न था। खर्च करने के मौके पर दिल खोलकर खर्च करती थीं। बेजा एक पैसा भी खर्च करना बिलकुल न सुहाता था। अब उनके दिल में अगर हसरत (कामना) थी तो यह थी कि छोटे नवाब लायक़ हों। कहीं उनकी शादी कर दी जाय। घर आबाद हो जाय। बड़े नवाब की जिंदगी में अकसर कई जगह शादी की बातचीत हुई मगर आज तक कोई बात तय न हुई थी। मामा की लड़की के साथ बचपन से कुछ बातचीत थी।

अफ़सोस छोटे नवाब की आवार्गियों ने मा की हसरतों को

खाक में मिला दिया। बेगम अब दुनियां से बिलकुल दस्तबर्दार (छोड़ चुकीं) थीं। अगरचे उम्र कुछ ऐसी न थी, मगर अपने आप को बुढ़ियों से भी गया बीता कर रक्खा था। किसी चीज़ का शौक़ ही नहीं था। दुनिया उनके लिये बेकार (व्यर्थ) थी और वह दुनिया के लिये।

छोटे नवाब की शादी का ज़िक अब भी कभी आ जाता था। बेगम साहिबा को इससे किसी क़दर दिलचस्पी थी। इसलिये कुछ मिनटों के लिये चेहरे पर बहाली आ जाती थी, मगर कुछ सोचकर अपने आप एक ठंडी आह निकल जाती थी। आँखों में आँसू भर आते थे। पहले से ज़्यादा उदास हो जाती थीं।

बेगम की इस हालत से चिट्ठी-नवीस और मुग़लानी सर हो गई थीं। अब उन्होंने चाहा इस जोश से कुछ काम लिया जाय। तरह तरह से बेगम के सामने यह ज़िक छेड़ा।

छोटे नवाब की ख़राबियों का चर्चा चल रहा था। उसमें बी मुग़लानी ने फ़ौरन यह जोड़ लगाया।

मुग़लानी—क़सूर माफ़ हो। एक बात में हुज़ूर भी कोताही करती हैं। शादी क्यों नहीं कर देतीं।

बेगम—बी मुग़लानी, कैसी बातें करती हो। छोटे नवाब इस लायक़ होते, तो रोना काहे का था। पराई बेटी को बेकार लाकर फसाऊँ।

चिट्ठी-नवीस—हुज़ूर यह सच है, मगर अकसर देखने में आया है जवानी में मर्द जात क्या नहीं करते। मगर इधर शादी कर दी, बीवी का मुँह देखा, मुरीद (भक्त) हो गये, सब को छोड़ बैठे, बाहर का आना जाना बंद हुआ। खुदा ने फ़ज़ल

किया, बच्चा वाला हो गया। उसमें दिल लग गया। इसीलिये अगले बुजुर्गों का यह क़ायदा था कि इधर लड़का जवान हुआ, उधर शादी कर दी। अब लड़कियाँ बीस बीस बरस की उम्र तक बैठी रहती हैं। लड़कों को कौन कहे, जैसे जैसे नये क़ायदे निकलते जाते हैं, वैसे वैसे खराबियाँ पड़ती जाती हैं। लड़का हो या लड़की, जल्दी शादी कर देने में हजारों आफ़तों से बचे रहते हैं।

बेगम—मगर मैंने सुना है कि फ़िरंगियों की शादियाँ तीस तीस बरस की उम्र में होती हैं।

चिट्ठी-नवीस—फ़िरंगियों की न कहिये। मुल्क मुल्क का रिवाज है। वह अपनी शादियाँ जो आप करते हैं, फिर उन्हें अखत्यार है, जब जी चाहे करें।

मुग़लानी—(बड़े ताज्जुब से) ऊ ही, बीवी तो क्या आप से खसम ढूँढ़ लेती हैं।

बेगम—और क्या आप से ढूँढ़ लेती हैं। और जिससे शादी करनी होती है उससे बरसों पयाम सलाम होता है, वायदे होते रहते हैं। जब अच्छी तरह कस लेती हैं तो शादी करती हैं।

मुग़लानी—और यह पयाम-सलाम आप ही करती हैं।

चिट्ठी-नवीस—ऊ ही खाला तुम भी क्या भोली बनती हो। खुद नहीं तो क्या तुम पयाम-सलाम करने जाती हो।

मुग़लानी—(ज़रा ख़फ़ा होकर) मेरे दुश्मन सलाम व पयाम करने जायँ। यह बात तो कुछ मेरी समझ में नहीं आती। बिन ब्याही लड़की ग़ैर मर्द से आप ही अपनी शादी की बातचीत करे। और मा बाप किस लिये होते हैं।

चिट्ठी-नवीस—उनके मुल्क का यही रस्म है। फिर उसमें किसी का क्या इजारा है।

मुग़लानी—ना साहब, हमारी समझ में नहीं आता। किसी मुल्क में ऐसा रस्म नहीं हो सकता और तुम क्या देख आई हो। यही सुनी सुनाई कहती हो। भला तुम्हें क्योंकर मालूम हुआ।

चिट्ठी-नवीस—हमने अपनी मिस साहिबा से सुना था, जो हमें पढ़ाने आती थीं और फिर किताबों में रोज़ देखते हैं। यह अंगरेज़ी क़िस्सों की किताबें जो आज कल बहुत निकल पड़ी हैं उनसे कुल हाल आइना हो जाता है। इसलिये कि जिस मुल्क की जो रस्में होंगी, वही तो क़िस्से कहानियों में बयान की जायँगी।

बेगम—हाँ, यह क़िस्सों की कीताबें मैंने भी दो चार देखी हैं। नवाब को बड़ा शौक़ था अलमारी की अलमारी भरी हुई है।

चिट्ठी-नवीस—ऐ हये, बेगम साहिबा मुझे बता दीजिये कौन सी आलमारी में हैं। मैं खुद पढ़ा करूँ और आपको सुनाया करूँ।

बेगम—*वह क्या मेरी किताबों की आलमारी के बराबर जो* दूसरी अलमारी है, उसमें इसी तरह की किताबें हैं। मगर मेरा तो उन किताबों में दिल ही नहीं लगता। एक झूठ का तूमार होता है। इससे क़ुरान पढ़े। मार्सिया हदीस देखे, जो सवाब (पुण्य) भी हो। लोगों की यारी आशनाई की बातें पढ़ने से क्या फ़ायदा।

चिट्ठी-नवीस—बेगम यह सब सच है मगर मेरा तो ऐसा

जी लगता है कि जहाँ दो वर्क़ पढ़े, फिर छोड़ने को जी नहीं चाहता।

बेगम—मुए शैतानी काम में तो दिल लगता ही है।

मुग़लानी—हुज़ूर सच कहती हैं।

चिट्ठी-नवीस—जो जी चाहे कहिये। किस्सा कहानियों की किताबों पर मेरा तो दम जाता है।

बेगम—तुम पर ही क्या मौक़ूफ़ है, ऐसी बातों में बहुत लोगों का दिल लगता है। ऐ लीजिये, 'लज़्ज़ते इश्क़' और 'फ़रेबे इश्क़' ऐसी बेहूदा किताबों में जिनका छपना सरकार ने बंद कर दिया। मगर इसको क्या कीजिये कि हज़ारों आदमियों को ज़बानी याद हैं। मैंने एक कारचोब बनवाने के लिये घर पर कारीगर बिठाये थे। उनमें एक कारीगर था। मुआ दिन भर 'ज़हर इश्क़' चिल्ला चिल्ला कर पढ़ा करता था। इंदर सभा को देखो, कैसी मशहूर है। सुबह से शाम तक सैकड़ों लौंडे गलियों में गाते हुए निकलते हैं और ख़ुदा की तारीफ़ का एक शेर भी किसी से कभी नहीं सुना।

मुग़लानी—मुई कोई बात में बात निकल आती है। सुनती हूँ कोई तमाशा निकला है, जिसे ठेटर (थिएटर) कहते हैं। मेरे महल्ले में एक बीवी रहती थीं। वह बहुत देखने जाती थीं। एक दिन वहाँ कोई तमाशा हुआ। यह वहीं ग़श खाकर गिर पड़ीं। मामा (नौकरानी) साथ थी। डोली में डालके घर में लाई। ऐ लीजिये, उस दिन से दीवानी (पागल) पागल हो गई। जंजीरों में जकड़ी हुई रहती हैं।

चिट्ठी-नवीस—मैं ख़ुद उस दिन उस तमाशे में मौजूद थी। लैला-मजनूँ का तमाशा था।

बेगम--तो क्या तुमने थियेटर देखा है। क्यों न हो। शौक़ीन जीवड़ा है।

थियेटर जाने का हाल सुनके बेगम के तेवर बदल गये थे। चिट्ठी-नवीस भी इस बात को ताड़ गई। चाहती थीं बात का पहलू बदल जाय, मगर अब हो ही क्या सकता था। शौक़ीन होने का भेद बेगम पर ख़ुद अपनी ज़बानी खुल गया। इस बात का अन्दाज़ा मुश्किल से हो सकता है कि और लोग हमारे काम को किस क़दर अच्छा या बुरा समझते हैं। बेगम की राय में थिएटर में जाकर तमाशा देखना ऐसा बड़ा पाप था जिसकी तोबा (प्रायश्चित्त) तक क़बूल नहीं। चिट्ठी-नवीस की राय में यह काम कुछ ऐसा बुरा न था।

छोटे नवाब की शादी का ज़िक्र छिड़ा मगर कोई बात तय न हुई। मगर बी मुग़लानी और चिट्ठी-नवीस को मालूम हुआ कि छोटे नवाब की शादी के ज़िक्र से बेगम नाखुश नहीं होतीं। इस मामले में किसी क़दर गुंजायश है। अगर बेगम के दिल में किसी तरह जगह हो सकती है तो इसी से हो सकती है। छोटे नवाब की हरकतों से बेगम बहुत ही नाखुश थीं। मगर फिर माँ थीं। कहाँ तक ख़याल न होगा। बेगम के पास से उठने के बाद ख़ाला भांजियों में यह सलाह हुई कि छोटे नवाब की जन्म-पत्री किसी तरह लेकर कहीं बात ठहराना चाहिये।

× × ×

रजब* की नोचंदी है। लाल कटोरे की करबला में अच्छी भीड़ है। अकसर साफ़ शहरवाले ज़ियारत के लिये आ रहे हैं।

---

* मुसलमानों का एक महीना।

शहर की ऊँची ऊँची रंडियाँ किस ठाठ से बैठी हैं। करबला के अहाते में जगह जगह दरख्तों के नीचे क़ब्रों पर दरियाँ, चाँदनियाँ बिछी हैं। दरवाज़े के सामने से नहर तक दोरस्ता बाज़ार लगा है। किसी हलवाई की दूकान पर पूरियाँ तली जाती हैं। कहीं ताज़ी ताज़ी जलेबियाँ बन रही हैं। मिठाई के खोंचे सजे हुए हैं। कहीं नानबाई खमीरी रोटियाँ गरम गरम तंदूर से निकाल रहा है। कबाबी कबाब भून रहे हैं। तंबोलियों की दूकानों पर शौक़ीनों की भीड़ है। खोंचेवाले चारों तरफ़ आवाज़ लगाते फिरते हैं। हाजी मसीता की करबला के फाटक से लेकर रेल की सड़क तक गाड़ियों और इक्कों का हुजूम है। इसी जगह पर सब गाड़ियों से अलग खेतों के किनारे कोई पचास साठ क़दम के फ़ासले पर दो गाड़ियाँ खड़ी हैं। एक गाड़ी पर हमारे जनाब हकीम साहब तशरीफ़ रखते हैं और दूसरी गाड़ी में दो तीन औरतें खड़खड़ियों झाँक रही हैं। कोच बक्स पर बी महरी धरी हुई हैं। ऐसी गाड़ी जिनकी खड़खड़ियों से औरतें झाँकती हों और खासकर जिसके कोच बक्स पर बी महरी इमामन महरी की सूरत नज़र आये, मुमकिन नहीं कि तमाशाइयों का उसके चारों तरफ़ जमघटा न हो जाय। मगर गाड़ी के क़रीब दो तीन गज़ के फ़ासले पर महरी के यार-ग़ार मियां अमजद एक ज़र्द फेंटा सर से आड़ा लिपटा हुआ, गुलाबी कुर्ता पहने, धोती बाँधे, एक जंगी लठ हाथ में लिये, पैंतरा बदले खड़े हैं और गाड़ी की तरफ़ देखनेवालों को बुरे तेवरों से देखते हैं। इस पर भी नज़र बचाकर देखनेवाले बाज़ नहीं आते।

उधर हकीम साहब की गाड़ी के बराबर मियां नबीबख्श लाल पगड़ी बाँधे हुए, चुस्त कमर कसे, मदारिया हुक्क़ा हाथ में लिये, खड़े चिलम फूँक रहे हैं। जो शख्स ठहर कर देखे,

उसको मालूम हो सकता है कि दोनों गाड़ियों में किसी न किसी क़िस्म का ख़ुफ़िया ताल्लुक़ ज़रूर है। किसी बिजली की ताक़त का तार, जो आँखों से दिखाई नहीं देता, लगा हुआ है और बराबर ख़बरें आती जाती हैं इसलिये कि इधर हकीम साहब ने जम्हाई ली उधर बी महरी कोच बक्स से उतरीं। किसी ने हाथ बढ़ाकर ख़ासदान महरी को दिया। यह हकीम साहब की तरफ़ लेकर रवाना हुईं।

हकीम साहब—(पान ख़ासदान से निकाल कर) क्या अच्छी गिलौरी बनी हुई है। बेगम के हाथ की बनी होगी।

महरी—(त्यौरी चढ़ाकर) बेगम के दुश्मन हाथ से पान लगाने लगे। गिलौरी वाली किस लिये नौकर है? यह भी क्या ग़रीबख़ाने की बीवियाँ हैं कि आप ही मामा (नौकर) आपही बीवी, आप ही लौंडी। चूल्हा फूँक रही हैं, पसीना बहता जाता है, एक तरफ़ लड़का दूध पी रहा है। इतने में मियां ने पान माँगा। रोटी जलती तवे पर छोड़कर उठीं, पिटारी से पान लगाया। फिर सुर-सुर करती चूल्हे के आगे आ बैठी। जब तक यह पान लगाएँ लगाएँ, रोटी जलकर कोयला हो गई। उधर लड़का चूल्हे में हाथ घुसड़े देता है। भई, सच कहूँ, मुझे तो इन बीवियों के हाथ से कोई चीज़ खाते घिन आती है। उसी हाथ से लड़के को दूध पिलाया, उसी से रोटी पका रही हैं, उसी से पान लगा रही हैं। क्यों हकीम साहब कुछ झूठ कहती हूँ। अमीरख़ाने की बेगमात का क्या कहना। कोई काम अपने हाथ से करती हैं।

हकीम साहब इस बात से ज़्यादा नहीं झेंपे क्योंकि इनकी बीवी अपने हाथ से तो रोटी पकाती न थीं। बेवा ख़ैर

(हकीम साहब की खिलाई) अभी तक जिंदा थी गो कि अब आँखों से सूझता कम था। मगर पाव भर की आठ चपातियाँ अब तक पका लेती थीं। अगले बुजुर्गों की कृपा का फल था। हकीम साहब की बीवी से आठ लड़के पैदा हुए। हमेशा अन्ना (धाय) की फ़रमाइश रही, मगर इत्तफ़ाक़ से मिली ही नहीं और मिली तो उसका दूध ठीक न था। इसलिये नौकर नहीं रक्खी गई। यहाँ तक कि इसी इन्तज़ार में लड़कों की दूध बढ़ाइयाँ हो गईं। अब दस बारह बरस से कोई बच्चा नहीं हुआ।

हकीम साहब—अच्छा यह पूछो, कुछ खाने को मँगवा दिया जाय।

महरी—हकीम साहब, कुछ होश दुरुस्त हैं। बेगम साहिबा बाज़ार की कोई चीज़ खायँ? यह जो खाना आपने पकवा कर भेजा, ज़बान पर तो रक्खा नहीं। सब हम लोगों के खाये खाया गया। वह कहीं का खाना खाती ही नहीं।

महरी ने यह कहकर एक क़हक़हा लगाया।

हकीम साहब—(ज़रा गुस्सा होकर) तो फिर क्या खाती हैं?

महरी—खाती क्या हैं। अपने सामने अंगीठियों पर छोटी छोटी चांदी की पतीलियों में खासेवाली पकाती है। वही खाती हैं। खुदा के फ़ज़ल से अपने हाथ से ऐसा पकाती हैं कि मुए बावर्ची क्या पकाएँगे।

हकीम साहब को बड़ा सदमा हुआ। इसलिये कि आपने उस दिन के खाने में बड़ा इंतज़ाम किया था। मियां अली बख़्श बावर्ची ने कच्ची बुरयानी खासगी पकाई थी। सिर्फ़ दूध की

रोटी में बीस पचीस रुपये खर्च हो गये थे। और खाना भी इसी क़िस्म का था। पूरे तौरे में पूरा पचासा खर्च हुआ था। अफसोस बेगम साहिबा ने ज़बान पर भी नहीं रक्खा। बी महरी और मियां अमजद ने दो दिन तक खाया। मगर हकीम साहब दिल में खुश हैं, इसलिये कि खैर खाना खाया या न खाया, मुझसे मिलने के शौक़ में तालकटोरे की करबला तक तो आई हैं।

× × ×

तबीयत में तलव्वुन है कभी खश हैं कभी नाखुश,
सितम का क्या गिला करते, वफ़ा पर नाज़ क्यों होता।
बनावट जिनकी ऐसी है लगावट उनकी क्या होगी,
वह आशिक़ भी हुए बिल फ़र्ज़ तो अपना ज़रा होगा।

गोमती उस पार नसीरुद्दीन हैदर की करबला के सामने एक छोटा सा मैदान है। चारों तरफ़ पतावर के झुंड हैं। इससे एक बड़ा अहाता सा बन गया है। मैदान में खेती नहीं होती। सिर्फ़ चराई के लिये छोड़ दिया गया है। इसके चारों तरफ़ दूर तक आबादी का निशान नहीं। कुछ फ़ासले से कंजरों की झोपड़ियाँ पड़ी हैं। इस मैदान के एक तरफ़ एक ऊँचे टीले पर एक कच्चा सा मकान है, जो करामत अली शाह साहब ने आरजी तौर पर (अस्थायी) बनवा लिया है। मकान के बाहर एक चबूतरा है। उसके आसपास कुछ फूलों के पेड़ लगे हैं। इस वक्त चबूतरे पर एक चटाई बिछी है। उसके एक तरफ़ मृगछाले पर शाह साहब बैठे हैं। शाह साहब का कलेवर काला है। उस पर सफ़ेद लंबी डाढ़ी किस क़दर फबती है कि गोया अंधेरी रात में चाँदनी ने खेत किया है। हाथ में जैतून की माला, हजार दाने की।

तकिया हाथ के नीचे धरा हुआ है। चेहरा डरावना, झुर्रियाँ पड़ी हुई, बड़ी सी नाक आगे से फूली हुई, मोटे मोटे होंठ, बड़े बड़े दाँत एक जरा आगे को निकला हुआ। पान बहुत खाते थे, इसलिये दाँत बिलकुल स्याह हो गये थे। उस पर तंबाकू की ख़ुशबू, जिसकी महक बात करते वक्त दूर तक जाती थी। अगरचे वह उन लोगों को नागवार हो जो तंबाकू को नहीं खाते मगर असल में कुछ ऐसी बुरी न थी। बार बार कलमे के नारे लगाते हैं। ध्यान में मग्न हैं।

दो दुनियादार ग़रज़मंदे सामने चटाई पर बड़े अदब के साथ बैठे हुए हैं। इनमें से एक हमारे नये बिगड़े आसेब के मारे छोटे नवाब साहब और दूसरे ख़लीफ़ा जी हैं। शाह साहब रोज़मर्रा के वज़ीफ़े पढ़ने से फ़ारिग़ होकर उनकी तरफ़ मुतवज्जह होते हैं।

शाह साहब—नवाब साहब, मुरशद के हुक्म से आपकी ख़ैरियत रोज़ ही मालूम होती रहती है। आख़िर आप तशरीफ़ ले आये। कहिये क्या हाल है। (यह आख़िरी फ़िक़रा ज़रा मुसकरा कर कहा था)।

नवाब बेचारे पहले ही से शाह साहब के रोब में दबे हुए बैठे थे। अभी इन्हें इसकी फ़िक्र ही थी कि क्या जवाब दिया जाय। इरादा किया मगर मुँह से बात न निकली। ख़लीफ़ा जी ने वकालत की।

ख़लीफ़ा जी—हुज़ूर सब जानते हैं। जब आपको रोज़ रोज़ का हाल मालूम है तो फिर इस वक्त की ज़रूरतों का बयान करना बेकार है। वक्त नष्ट करने से फ़ायदा क्या।

नवाब साहब दिल में बहुत ही खुश हुए कि अगर मैं जवाब देता तो इससे ज्यादा और क्या कहता।

शाह साहब—हाँ, मुझे मालूम है। शिकायतें सुनते सुनते नाक में दम हो गया। वह शख्स जिसकी तलाश में आप आये हैं, बरसों से आपकी तलाश में है। साहबजादे, तक़दीर के अच्छे हो। शाह जिन (भूतों के राजा) के वज़ीर की बेटी, सब्जक़बा आप पर आशिक़ हो और आप वह बेपर्वाही करें जिससे औरत-ज़ात को मामूली तौर से रंज पहुँचता है। इतनी बात आपको बताये देते हैं कि ताक़त रखने वाले लोगों की आशिक़ी में भी माशूक़ को आशिक़ बनना पड़ता है। आप अपने को सँभालिये। यह मामला ही और है। अगर सीधे रहियेगा तो इसका मज़ा उठाइयेगा वरना पछताइयेगा।

शाह साहब ने यह कुछ बातें इन तेवरों (ऐसी मुद्रा) से कहे थे कि नातजुर्बेकार नवाब बेचारा बिलकुल सहम गया, मगर दिल कड़ा करके, सच्ची हालत का इस तरह इज़हार किया।

नवाब—अनजान में जो हालत हो, वह तो ज़रूर माफ़ी के क़ाबिल है मगर आइन्दा आपके इशारे के माफ़िक़ अमल किया जायगा।

खलीफ़ा जी—हुज़ूर, हमारे नवाब साहब हैं तो अभी कम उम्र, मगर बहुत ही नेक और साफ़-दिल हैं। जो आप फ़र्माएँगे उससे रत्ती भर भी फ़र्क न होगा।

शाह साहब—(मुस्करा कर) अच्छा यह तो कहिये, आप आजकल आराम कहाँ करते हैं?

नवाब—(घबरा कर) वालिद के इंतक़ाल के बाद से घर में

दिल नहीं लगता। अकसर दीवानखाने में सोया करता हूँ।

शाह साहब--दुरुस्त। (यह इस लहजे में कहा कि गोया नवाब ने अपना हाल ग़लत कहा था)

ख़लीफ़ा--जी हाँ, सही कहते हैं। नौ दस बजे रात तक तो मैं ख़ुद हाजिर रहता हूँ। खाना खाने के बाद नवाब अपने पलँग पर सो जाते हैं। मैं घर चला जाता हूँ।

शाह साहब—हाँ तो आपको क्या मालूम कुछ लोग नवाब साहब के पलँग के पास भी रहते हैं। उनसे दरयाफ़्त कीजिये।

ख़लीफ़ा जी—यह पहेली तो मेरी समझ में नहीं आती। कुछ और साफ़ कहिये।

शाह साहब—नहीं अभी कुछ न कहूँगा। अभी नवाब साहब कम उम्र हैं। ऐसा न हो ख़ौफ़ खा जायँ।

ख़लीफ़ा—तो क्या कोई डर की बात है।

नवाब—(दिल को कड़ा करके) नहीं आप बेतकल्लुफ़ फ़र्माइये। मैं डरने का नहीं।

शाह साहब—हाँ इसकी तो मुझे उम्मेद है। आप हैं किस खानदान से। आप ही के बुज़ुर्गों ने हिन्दोस्तान को फ़तह किया था। क़ौमी असर कहाँ तक न होगा। अच्छा तो आप सुनिये। आप उस जगह से जहाँ ज़ाहिरा आराम करते हैं, कई हज़ार कोस के फ़ासले पर उठवा लिये जाते हैं। सब्ज़-क़बा के ख़ास कमरे में पाँच बजकर चालीस मिनट तक कल रात को आप सोये। उसके बाद फिर एक क्षण में अपनी जगह पहुँचा दिये गये। मगर वह आपकी सूरत पर आशिक़ है। किसी तरह की तकलीफ़ नहीं देती। परसों रात का ज़िक्र है कि आप वहीं जाग

पड़े थे। आपने अपने नौकर शैदी मक़सूद को आवाज़ दी। फ़ौरन एक जिन्न शैदी मक़सूद की शकल बनकर हाज़िर हुआ। आपने बरफ़ का पानी माँगा। उसने पिलाया। फिर आपके पहलू में जो माशूक़ा सो रही थी और जो इस वक्त आपसे कई हज़ार कोस के फ़ासले पर आपके कमरे में पड़ी खुर्राटे ले रही थी, उसको पूछा था। शैदी मक़सूद ने आप से कहा 'अभी बाहर गई है'। इसके बाद आपने थोड़ी देर इंतज़ार किया। बरफ़ के पानी में परियों के पहाड़ की निर्मल शराब मिली हुई थी। वह पेश की। आपको फ़ौरन बेहोश कर दिया। फिर आपका चाहनेवाला पहलू में आ गया। यह सवा तीन बजे रात की घटना है। उसके बाद एक घंटे अट्ठाईस मिनट आप परिस्तान में और रहे। फिर आपकी पलँगड़ी आपके कमरे में पहुँचा दी गई। रास्ते में आप ने बेहोशी की हालत में ग़ज़ब की करवट ली थी। अगर जिन्न आपकी पलँगड़ी के पास न होता तो पहाड़ से गिर पड़ते और दुश्मनों का पता भी न मिलता। यह सब बातें आपको ख़्वाब ओ ख़याल मालूम होती होंगी, मगर घटनाएँ बिलकुल सच्ची हैं। इसलिये कि मेरे पास एक एक मिनट के बाद ख़बर पहुँचती है।

नवाब इन घटनाओं को सुनकर अचंभे में डूब गये। इसलिये कि सिर्फ़ एक रात पहले की बात थी। बहुत सी बातें शाह साहब के बतलाने को सच्चा साबित करती थीं। सिवाय बजा और ठीक कहने के कोई जवाब न बन पड़ा। इसके बाद शाह साहब ने कहा—"अच्छा तो आप तशरीफ़ ले जाइये। मेरे वज़ीफ़ा पढ़ने का वक्त है। कल इसी वक्त, फिर आइयेगा।"

× × ×

नौ बजे के बाद नवाब साहब शाह जी से रुखसत होकर गाड़ी में सवार हुए। कुछ देर तक दोनों चुप रहे। नवाब आश्चर्य में डूबे हुए थे। बात क्या करते। आख़िर ख़लीफ़ा जी ने ख़ामोशी तोड़ी।

ख़लीफ़ा—हुज़ूर यह तो अजीब मामले हैं जो शाह जी ने बतलाये हैं। मेरी तो समझ में नहीं आते। इतना जानता हूँ कि पहुँचे हुए लोगों में हैं, मगर।

नवाब—परसों रात को पानी तो मैंने ज़रूर माँगा था। इतना याद है और अजब क्या है कि शैदी मक़सूद ने बरफ़ का पानी दिया हो। उसके बाद मैं सो रहा। जब मेरी आँख खुली है, मुझे ख़ूब याद है कि ख़ुरशैद पहलू में न थी। मगर नींद का ख़ुमार मेरी आँखों में था। फ़ौरन फिर ग़ाफ़िल होकर सो रहा। सुबह को सात बजे आँख खुली। ख़ुरशैद पहलू में सो रही थी। मदार बख़्श ने हुक्क़ा लगाया। यह सब घटनाएँ मुझको याद हैं।

ख़लीफ़ा—अच्छा तो अब घर पर चलके शैदी मक़सूद से दरयाफ़्त किया जाय। ख़ैर, यह मामले तो घर पर चलकर तय हो जायँगे, लेकिन, नवाब, अगर यह वाक़ा सच्चा है, तो बड़े लुत्फ़ आएँगे। परस्तान की सैरें होंगी। परियों का नाच देखेंगे। जो बातें क़िस्से कहानियों में सुनते हैं, आपकी बदौलत आँखों से देख लेंगे। मगर इसी वक़्त वायदा कर लीजिये कि हमें भी वहाँ ले चलियेगा या नहीं।

नवाब—अभी तक सोच विचार में मग्न हैं। अलफ्रेड कंपनी में गुल बकावली का तमाशा कई बार देखा था, उसी का समा आँखों में फिर रहा है। बाग़े अरम का जवाब बनवाने का मन-

सूबा बार-बार दिल में आता है। पन्ने का महल और उसकी सजावट का दिल में ख़ाका खिंचता है, मगर अभी तक यह नक़्शे अच्छी तरह नहीं जमते हैं। इसलिये कि कुछ शक है, कुछ यक़ीन। मगर उम्मेद यक़ीन ही का पहलू दबाये हुए है। नाकामयाबियों के ख़याल दिमाग़ से बाहर निकले जाते हैं। सब्ज़-क़बा को एक टूटे खंडरे में देखा था। इसी पर दिल लोट गया। अब उसकी तसवीर का ख़याल ज़मर्रुद (पन्ना) के महल में और ही जोबन दिखा रहा है। और यह ख़याल कि वह हम पर फ़रेफ़्ता (मर रही) है, एक अजीब आनंद देने वाला घमंड दिल में पैदा कर रहा है। इस वक़्त नवाब साहब अपने जोम में ताजुल मलूक से कुछ कम नहीं। मगर अभी तक यह बातें दिल ही दिल में हैं। कमबख़्त बदगुमानी मुँह से नहीं निकलने देती। फिर ख़लीफ़ा जी के टहोके और भी सितम कर रहे हैं। आख़िर इतना ज़बान से निकल ही गया, "वल्लाह, अगर ऐसा हो, तो मैं ज़रूर आपको ले चलूँगा। मगर अभी तो कुछ समझ में नहीं आता।"

ख़लीफ़ा—हाँ समझ में तो मेरे भी नहीं आता मगर करामत अली शाह साहब एक बेलालच, निर्लोभ आदमी हैं। एक से हज़ार तक नहीं लेते। फिर उनको व्यर्थ बातें बनाने से क्या मतलब।

नवाब—हाँ, आदमी तो बेपरवाह मालूम होते हैं।

ख़लीफ़ा—ऐ हुज़ूर, यह तो शहर भर जानता है कि बारह बरस इसी जगह पर बैठे हो गये। शहर के अमीर रईस और महाजन सभी तो जाते हैं। किसी दिन सुबह को आकर देखिये। अच्छा ख़ासा दरबार होता है, मगर आज तक किसी

से एक पैसे का भी सवाल नहीं किया। लोगों से यह भी सुनने में आया है कि कीमिया (रसायन) बनाते हैं। इसका हाल इस तरह खुला कि पहले हर जुमेरात को यह दस्तूर था कि मोहताजों को चाँदी सोने की डेलियाँ बाँटा करते थे। और इस भेद के छुपाने की बहुत ताकीद थी। जब से लोगों ने मशहूर कर दिया, खैरात बन्द हो गई। मगर अब भी जरूर देते होंगे। कोई और तरीक़ा निकाला होगा। इतना सुना है कि नौ बजे के बाद रात को निकल जाया करते हैं। बारह बजे तक शहर की गश्त करते हैं और ठीक बारह बजे दरिया में नहाते हैं। उस वक्त से सुबह तक खुदा की इबादत (पूजा) में लगे रहते हैं।

नवाब—और सोते कब हैं ?

खलीफ़ा—चालीस बरस हो गये, रात को नहीं सोते। सुबह को सूर्य के निकलने के बाद नमाज़ पढ़ के ज़रा के ज़रा सो जाते हैं।

नवाब—चालीस बरस हुए नहीं सोये ?

खलीफा—सोते तो यह कमाल क्यों कर हासिल होता। जिन या भूत-प्रेत को क़ाबू में करना तो उनके लिए खेल है। पशु पक्षी सब सिद्ध हैं।

नवाब आपके शहर में यह एक शख्स हैं। एक ही कामिल हैं। बल्कि दूर दूर इनके मुक़ाबले नहीं है।

नवाब—भला कोई कुछ हासिल किया चाहे तो बताएँगे भी।

खलीफा—बताएँगे, मगर उसी को जिसकी क़िस्मत में होगा।

नवाब—भला यह क्योंकर मालूम हो कि क़िस्मत में है या नहीं। क़िस्मत का हाल सिवाय खुदा के कौन जानता है।

ख़लीफ़ा—यह सच है। मगर इन लोगों को अपने इल्म के ज़रिये से मालूम हो जाता है। जिसकी तक़दीर में न होगा, वह अगर सर भी पटख़ मारे तो कभी न बताएँगे और जिसकी तक़दीर में होगा, उसे ख़ुद ढूँढ़ते फिरेंगे। मिन्नतें करके बताएँगे।

नवाब—वल्लाह मेरा जी चाहता है इनसे कुछ हासिल करूँ।

ख़लीफ़ा—हम दुनियादारों से यह काम नहीं हो सकते। आप से गोश्त खाना छोड़ना मुमकिन नहीं। इसके अलावा और परहेज़ इस क़दर सख़्त हैं कि हम से आप से निभ नहीं सकते।

नवाब—अगर वह बताने को कहें तो, तो मैं सब छोड़ सकता हूँ। बात ही आदमी दिल पर रख ले तो सब कुछ कर सकता है।

ख़लीफ़ा—बजा है। अच्छा तो अगर आपकी तक़दीर में है तो शाह साहब ख़ुद ही आप से कहेंगे। आप अभी अपने मुँह से कुछ न कहियेगा। अगर आपकी तक़दीर में होगा तो वह आप ही छेड़ेंगे।

नवाब—हाँ, यह आपने ख़ूब बताया। अगर तक़दीर में होगा तो आप ही ख़ुद बताएँगे।

ख़लीफ़ा—हुक्म पहुँचेगा।

नवाब—यह मैं नहीं समझा।

ख़लीफ़ा—अक्सीर, (रसायन) तस्ख़ीर (जादू टोना) ईश्वर के रहस्य हैं। अगले वक़्तों से सीने बसीने चले आते हैं। जिसकी तक़दीर में होता है, कामिल उस्ताद उसे तलाश करके बता देता है।

नवाब—उस्ताद कामिल उसे क्योंकर पहचान लेता है।

खलीफ़ा—उसकी सूरत देखकर। रमल फेंककर या ज्योतिष से। आपने अलाउद्दीन का तमाशा थियेटर में देखा है। मुल्क अफ़रीका को ख्याल कीजिये और चीन को। हजारों कोस का फ़ासला है। वहाँ से उसने जन्म पत्र देख के दरयाफ़्त किया कि वह चिराग़ (मुस्तफा) दर्ज़ी के हाथों दफ़ीने से निकल सकता है। दफ़ीना जादूगर को खुद ही मालूम था। अगर उसके निकाले निकलता तो खुद ही क्यों न निकाल लेता।

नवाब—दुरुस्त है और फिर देखिये कि वह चिराग़ अला-उद्दीन के पास रहा। जादूगर को न मिला।

ख़लीफ़ा—और उसके साथ छल्ला भी अलाउद्दीन को मिला।

नवाब—छल्ला और चिराग़ दोनों मियां अलाउद्दीन के हाथ आए। चीन के बादशाह की लड़की से शादी हुई। ज़िंदगी भर चैन किया। जादूगर को क्या मिला। मुफ़्त जान भी खोई। इतना बखेड़ा नाहक़ उठाया। पहले ही जन्म-पत्र में देख लेना था कि वह चिराग़ और छल्ला किसकी तक़दीर में है। उसी की तावेदारी करना थी।

खलीफा—इसमें क्या शक है और इसमें एक और भेद भी है। पहुँचे हुए लोगों की यह शान है कि बेपरवाह हों। जादूगर के लोभ ने उसकी जान ली। अक्सीर (रसायन) और तस्ख़ीर (जादू) से ज़ाती फ़ायदा उठाना अभीष्ट नहीं है। ऐसा करने से इन चीज़ों की तासीर (गुण) जाती रहती है।

नवाब—यह भी सही है। तो फिर इन चीज़ों से नफ़ा ही क्या?

ख़लीफ़ा—दिल बड़ा उदार हो जाता है। किसी चीज़ की ज़रूरत ख़ुद ही नहीं रहती। सात जहान की बादशाहत हो तो ख़ाक है।

नवाब—अच्छा ख़ुद न सही। दूसरों को तो नफ़ा पहुँचा सकते हैं। ख़ुदा की राह में सर्फ़ करें। आप खाया न खाया। हज़ारों आदमी को खिलाया। अगर मुझे मालूम हो जाय तो मैं हज़ारों रुपये रोज़ का पकवान पकवा कर मोहताजों को बाँटा करूँ। सैकड़ों आदमियों को हज और तीर्थ-यात्रा के लिये रवाना करूँ। मोहताज बेवा औरतों की माहवारियाँ (माहवार तनख़्वाह) मुक़र्रर करूँ; बिन ब्याही लड़कियों की शादियाँ करा दूँ। एक आलीशान मसजिद बनवाऊँ—जामा मसजिद से बड़ी। और उसी के पास एक इमामबाड़ा—हुसेनाबाद से बहतर।

ख़लीफ़ा—नवाब अगर आपकी नीयत ऐसी है तो आप ज़रूर रसायन जान जायँगे।

इन बातों में गाड़ी मकान के पास पहुँच गई। नवाब और ख़लीफ़ा जी उतरे। रात के दस बजे थे। मामूली शग़लों के बाद दस्तरख़्वान बिछा। खाते ही आराम किया। ख़लीफ़ा जी अपने घर चले आये।

× × ×

दूसरे दिन सुबह को उस रात की घटनाओं की तहक़ीक़ात शुरू हुई। नौकरों के इज़हार होने लगे।

शैदी मक़सूद—नवाब आपके नमक की क़सम, उस दिन रात को तो मैं सात बजे से आप से छुट्टी लेकर घर चला गया था। रात भर छुट्टन (मेरा एक दोस्त) के यहाँ रहा। उसकी एक

बरात थी। जिस वक्त मैंने हुजूर से छुट्टी ली है, ख़लीफ़ा जी भी तो बैठे थे।

मदार बख्श—हुजूर ने उस दिन रात को पानी तलब ही नहीं किया। (ख़लीफ़ा जी की तरफ़ इशारा करके) आप जानते हैं रात भर जागता हूँ। जिस वक्त जी चाहे पुकारिये। एक आवाज़ में मेरी आँख खुल जाती है।

ख़ुरशैद (माशूक़ा, नवाब की नौकर) ख़लीफ़ा जी, होश की दवा करो। बात का बतंगड़ न बनाओ। नवाब ने रात भर यहीं आराम किया। उस रात मेरे सर में दर्द था। मैं ख़ुद रात भर जागा की। न जिन्न आए न पलँगड़ी परस्तान गई। यह सब क़िस्से कहानियों की बातें हैं। किन भुलाओं में पड़े हो।

ख़लीफ़ा—वाह तुम क्या जानो। हाँ तुमको ऐसा ही मालूम हुआ होगा। शाह साहब कभी ग़लत न कहेंगे।

ख़ुरशैद—यह कौन शाह साहब उल्लू के पट्ठे हैं?

ख़लीफ़ा—ले बस बस। ज़बान सँभाल के बातें करो। और जो जी चाहे मज़ाक़ करो, शाह साहब के लिये कुछ न कहना।

नवाब—(नाराज़ होकर) यह क्या बेहूदगी है। एक पहुँचे हुए आदमी को बेक़ायदा गालियाँ देना। ख़ुरशैद, यह बातें तुम्हारी हमको पसंद नहीं।

ख़ुरशैद—बहुत से ऐसे मुल्ला सयाने देखे हैं। सिवाय फ़रेब के और कोई बात नहीं।

ख़लीफ़ा—सच है। जैसा आदमी होता है, उसको सब वैसे ही मालूम होते हैं।

नवाब—वल्लाह सच कहा।

खुरशैद—(खिसियानी होकर) तो हम फ़रेबी हैं ?

खलीफ़ा—इसमें शक क्या है।

खुरशैद—और तुम।

खलीफ़ा—तुम ऐसों को भी बाज़ार में बेच लें।

खुरशैद—इसमें शक क्या है। ज़बान से सच ही निकला।

खलीफ़ा—फ़रेब न देते तो तुम यहाँ क्योंकर बैठी होतीं।

खुरशैद—यह मैं अपने मुँह से नहीं कह सकती क्योंकि आप शरीफ़ आदमी हैं। मैं समझती थी दिल में शुक्रिया अदा करना काफ़ी है। अब आपने खुद ही इज़हार कर दिया। बेशक मैं आपकी अहसान-मंद हूँ।

खलीफ़ा—अब आप यों आईं। अच्छा मज़ाक़ हो चुका। मेहरबानी करके किसी को बुरा भला न कहा कीजिये। उसके फ़रिश्ते सुनते हैं। इसमें सरकार का नुक़सान है।

खुरशैद—नुक़सान हो सरकार के दुश्मनों का। बुरा भला कहने से मुझे क्या फ़ायदा है। मैंने तो दुनिया की एक बात कही। अकसर नजूमी (ज्योतिषी) रम्माल, कीमियागर (रसायन बनाने वाले) फ़क़ीर, जोगी, जोसी रंगे हुए सियार होते हैं। बी नज़ीर को कीमिया का बड़ा शौक़ था। एक कामिल महीने भर तक मकान पर ठहरे रहे। पराठे, क़ोरमे, मलाइयां खाते रहे। नौचियों से, लौंडियों की तरह खिदमतें लीं। आखिर एक कड़े की जोड़ी लेकर चलते हुए। अब शायद परियों के पहाड़ की सैर कर रहे होंगे। वहाँ अक्सीर की बूटी ढूँढकर लायेंगे और बी नज़ीर का मकान सोने का बना देंगे।

खलीफ़ा—बी नज़ीर हमेशा को उल्लन हैं। उनका माल योंही लोग खाते हैं। हराम के माल का मामला है। हम तो खुद दुनिया भर के सयाने हैं। ऐसे फ़क़ीरों को खूब पहचान लेते हैं। हम को क्या कोई जुल देगा।

खुरशैद—नज़ीर को तुम बेवकूफ़ कहो। मेरी समझ में तो वह ऐसी नहीं। अपनी भलाई बुराई खूब समझती हैं। मगर शाह साहब ने कुछ तो ऐसा करिश्मा (चमत्कार) दिखाया था कि जाल में आ गईं।

खलीफ़ा—चकमा क्या खाया था। मैं बताऊँ। फ़क़ीर ने सोना उनके हाथ से बनवा दिया था। चकमा खा गईं।

नवाब—(ज़रा चौंक कर) हाथ से बनवा दिया।

खलीफ़ा—जी हाँ। यह तो इन मक्कारों के बायें हाथ का खेल है। घरिया में पैसा रख के नाल में रक्खा। चक्कर देते वक़्त, आँख बचाकर निकाल लिया। तोला भर सोना घरिया में रख दिया। चक्कर देकर निकाल लिया। देखने वाला जानता है सोना बन गया।

नवाब—मगर किसी ने देखा नहीं।

खलीफ़ा—ए हुज़ूर, यह तो एक तरह की नज़र-बंदी है। यह मदारी जो तमाशा करते फिरते हैं, रुपये जेब में रख देते हैं। खबर नहीं होती।

नवाब—हाँ, यह तमाशा मैंने खुद देखा। मामूजान के मकान पर खुद मेरी जेब से अशर्फ़ी निकली।

खलीफ़ा—बस यही समझ लीजिये। मगर यह तमाशे वह लोग करते हैं जिनको कुछ लेना होता है।

नवाब—क्या बात कही है। सच्चे फ़क़ीर की पहचान यही है कि किसी से लोभ न रक्खे।

खुरशैद—मगर ऐसे कामिल (पहुँचे हुए) किसी से मिलते कब हैं।

खलीफ़ा—मिलते क्यों नहीं। जिसको कुछ उनसे मिलना होता है, उससे मिलते हैं।

खुरशैद—जी हाँ, तो आपको कोई मुरशद मिल गये होंगे।

नवाब—उनको तो नहीं, हमें मिले हैं।

खुरशैद—(ग़ौर से नवाब की सूरत देखकर, और एक ज़रा मुसकरा कर) दुरुस्त।

नवाब—(नाराज़ होकर) अब मुझ से भी तुम मज़ाक़ करने लगीं।

खुरशैद—मेरी क्या मजाल। मगर नवाब, चाहे मार डालो, मुझे यक़ीन नहीं। मैं फ़क़ीरों की क़ायल नहीं। देख लीजियेगा, इसमें कुछ न कुछ फ़रेब ज़रूर है।

खलीफ़ा—लाहौल वलाकुव्वत! शाह साहब ऐसे नहीं हैं।

नवाब—अस्त ग़फ़िर उल्लाह (खुदा माफ़ करे) करामत अली शाह साहब की तरफ़ से तो मैं खुद क़सम खाता हूँ कि वह फ़रेबी नहीं हैं।

खुरशैद करामत अली शाह का नाम सुन के सन्नाटे में आ गई। खलीफ़ा ने नवाब की तरफ़ एक ज़रा नाराज़ होकर देखा। मतलब यह था कि नाम क्यों बता दिया। नवाब खुद शरमिंदा होकर इधर उधर देखने लगे। बातचीत का सिलसिला खतम हो गया।

आज के दिन और कोई वाक़ा ऐसा न हुआ जो लिखने के लायक़ हो। सिर्फ एक बात याद रखने लायक़ है कि खलीफाजी दिन भर नवाब साहब के घर पर रहे। एक दम के लिये भी जुदा न हुए।

× × ×

आज शाम को वायदे के मुताबिक़ करामत अली शाह साहब से मुलाक़ात हुई। शाह साहब बहुत ही नाराज़ दिखलाई पड़े। नवाब साहब को देखते ही—

शाह साहब—आखिर आप के मिज़ाज से बचपन अभी तक नहीं गया। यह जादू की बातें हैं। इनको मज़ाक़ न समझियेगा। अभी सवेरा है। कहिये तो किसी न किसी तरह रोक दूँ। बेदर्द आमिलों (अमल करने वाले, स्याना) की तरह मुझे पसंद नहीं। किसी को बेगुनाह (निर्दोष) जला देना या क़ैद करना मैं हरगिज़ गवारा नहीं करता। आखिर जिन्न भी तो खुदा के बनाये हुए हैं। अगरचे इस शौक़ के शुरू से आजतक मैंने जिन्न क़ौम में से किसी को तकलीफ नहीं दी क्योंकि आशिक़ी का मामला बुरा होता है। माशूक़ को आशिक़ से छुडाना मेरी राय में बड़ा गुनाह है। लेकिन आपके बुजुर्गों से साहब सलामत थी। सब्ज़-क़बा को किसी तरह रोक ही दूँगा या उसके मा बाप से खबर कर दूँगा, वह मना करेंगे। आपको बाज़ारी औरत का इश्क़ काफ़ी है। वाह नवाब साहब, मैं आपको ऐसा न समझता था। खैर अभी सवेरा है, मुझे इस बुढ़ापे में झंझट में न डालिये।

नवाब साहब को नाराज़ी की वजह थोड़े ही लफ्ज़ों के बाद

मालूम हो गई। भेद खोलना एक ऐसा जुर्म है जिसकी माफ़ी मुश्किल से हो सकती है। सब्ज़-क़बा को रोक देना शाह साहब ने तो मुँह से कह दिया, यहाँ दिल पर ख़ुदा जाने क्या गुज़र गई। बाग़ अरम और पन्ने के महल का ख़याली नक़्शा और उसकी सुनहरी सजावट में सब्ज़-क़बा का जलवा आँखों के सामने नाच रहा था (दिल ही में कह रहे हैं) भला यह क्योंकर हो सकता है कि सब्ज़-क़बा रोक दी जाय या उसके मा बाप को ख़बर की जाय। हाय ! सब्ज़-क़बा पर ख़फ़गी (क्रोध) पड़ेगी। मेरी चाहने वाली को सदमा पहुँचे, यह मुझे क्योंकर गवारा हो सकता है।

मगर हाल यह है कि मुँह से बात नहीं निकल सकती। बड़े नाज़ नख़रों में परवरिश पाई। हमेशा आस पास ख़ुशा-मदियों का जमाव रहा। जो बात की बुरी या भली, सिवाय तारीफ़ के किसी ने फटे से मुँह तक नहीं कहा। मौलवी साहब, जिनसे कभी पढ़ते थे, मियां मियां कहते उनका मुँह खुश्क होता था। कानों ने कभी इस तरह की बातें न सुनी थीं जो आज शाह साहब की ज़बान से सुनी। दूसरे इस मामले में इश्क़ की पुट लगी हुई थी। सब्ज़-क़बा की झलक देख भी चुके थे। बख़ुदा चाहने के क़ाबिल है। दिल पहले ही से गुदाज़ (कोमल) था। दूसरे भेद का खुल जाना, बावजूद ख़लीफ़ा जी के समझाने के, ख़ुमार की हालत में हो गया था। उसकी वजह से अपना दिल ख़ुद ही धिक्कार रहा था। एक दम आँसू जारी हो गये, शाह साहब का दिल पत्थर का न था, जो एक कम-उम्र साहब-ज़ादे को रोते देख कर न पसीजता। ख़लीफ़ा जी सा हमदर्द मुसाहब पास था। उनके इशारे और निगाहें शाह साहब से भोले नवाब की सिफ़ारिश कर रही थीं। ख़ुलासा बात यह कि—

शाह साहब—बाबा जान, हा, रोते हो।

इस बात से आँसू और भी बहने लगे। गरम आँसुओं की बूँदे सांवले गालों पर बह बह कर दामन पर टपकने लगे।

खलीफ़ा—(नवाब) हुज़ूर रोइये नहीं। शाह साहब ने सिर्फ़ नसीहत की राह से कहा था। (शाह साहब से) शाह साहब, खुदा के लिये हमारे नवाब को न रुलवाइये।

शाह साहब—(रूमाल हाथ में लेकर) ना बेटा, तुम्हारा रंज मुझे नागवार है। तुम्हें मेरे सर की क़सम न रोओ। अच्छा मैं तो किसी न किसी तरह बात बना लूँगा।

इसी बीच में अचानक शाह शाहब के झोपड़े के पिछवाड़े से एक धमाके की आवाज़ आई, इस तरह कि सब चौंक पड़े।

शाह साहब—(नवाब साहब से) बस अब रोइये धोइये नहीं। (खलीफ़ा जी से) आप नवाब को सँभालिये। सब्ज़-क़बा ने किसी को भेजा है। मैं जाता हूँ। देखूँ क्या पैग़ाम (संदेश) आया है।

यह कह कर शाह साहब उठ गये।

नवाब साहब ने जल्द जल्द आँसू पोंछे। सँभलकर बैठ गये।

खलीफ़ा जी—देखा आपने, उस दिन की बातें सब शाह साहब को मालूम हो गई। सारा क़सूर उस कमबख़्त बाज़ारी रंडी का है। मुफ़्त में ख़फ़गी दिलवाई। नवाब, इस वक्त का आपका रोना, मेरे दिल से पूछिये। वल्लाह! आपकी आँखों से जितने आँसू गिरे उतनी ही लहू की बूँदें मेरे कलेजे से टपकी होंगी। अच्छा वो खुरशैद जाती कहाँ हो। इसका बदला तुससे न ले लिया हो तो कोई बात नहीं। लो साहब, हमने तो कहा था

और सरकार की बदौलत पचास रुपये माहवार इनको मिलते हैं मिलें। हमारा क्या नुक़सान है। मगर वह तो सर पर चढ़ने लगीं। बहतर है। अब उनका रहना ठीक नहीं। एक तो शाह साहब दूसरे सब्ज़-क़बा के ख़िलाफ़ होगा। इसके अलावा और भी एक बात है जो हमने आँख से देखी है, मगर मुँह से नहीं निकाली। ख्याल यह था कि हमारी सरकार को उसकी तरफ़ किसी क़दर तवज्जह थी। काहे को ऐसी बात कहें जिससे दुश्मनों को किसी तरह का मलाल पहुँचे।

नवाब अभी तक बिलकुल चुप बैठे थे। ख़लीफ़ाजी की बातें लाजवाब थीं। पहले तो कई बातें जो सिर्फ़ रंज और खैरख्वाही की वजह से जोश में ज़बान से निकल गई थीं, उनका तो कुछ जवाब हो ही नहीं सकता। आख़िर का फ़िक़रा ज़रा चुभता हुआ था। अगरचे नवाब का पूरा ध्यान उस वक्त, सब्ज़-क़बा और उसके दूत की तरफ़ था जिसकी आमद की ख़बर उस धमाके की आवाज़ ने दी थी, लेकिन रश्क (ईर्षा) बुरी बला है। ख़लीफ़ा जी का आख़िरी फ़िक़रा उसी की तरफ़ इशारा करता था। लिहाज़ा इसी ध्यान-मग्न दशा में नवाब के दिल में एक चुभन सी पैदा हो गई।

नवाब—वह क्या बात ?

ख़लीफ़ा—जी कुछ नहीं। वह आप से कहने की बात नहीं है। अब इन ख्यालों को जाने दीजिये। बाज़ारी औरतों का यक़ीन ही क्या ? मगर यहाँ इन बातों का मौक़ा नहीं है।

नवाब चुप तो हो रहे इसलिये कि यहाँ सचमुच इन बातों का मौक़ा न था। मगर दिल में रश्क (ईर्षा) ने एक गहरा नश्तर चुभो दिया था, जिससे गोया धल धल खून बह रहा था।

अगरचे ज़ाहिर में यहाँ इन बातों का मौक़ा न था, मगर ख़लीफ़ा जी ने जिस मंशा से इस बात को छेड़ा था उस पर नज़र करने से मालूम होगा कि यही वक़्त और यही जगह इन बातों के लिये ज़रूरी थे। इसकी तो पहले ही क़समा-क़समी हो गई थी कि जो बातें शाह साहब के मकान पर हों, चाहे वह किसी क़िस्म की क्यों न हों, उनको दूसरी जगह मुँह से न निकाला जाय। इसलिये इस मौके पर यह दो तीन फ़िक़रे कान में डाल दिये गये। ताकि कानों में होकर दिल में आएँ और अपना ज़हर खून में फैलाते रहें जिससे आइन्दा कभी उसका ख़राब असर ज़ाहिर हो। इसके बाद ख़लीफ़ाजी कुछ देर चुप रहे गोया नवाब साहब के साथ सब्ज-क़बा के पैग़ाम का इन्तज़ार कर रहे हैं। शाह साहब को गये हुए क़रीब आधे घण्टे के हुआ। आख़िर कोई कहाँ तक चुपका बैठा रहे।

नवाब—(चुपके से) शाह साहब को बड़ी देर लगी।

ख़लीफ़ा—जी हाँ, समस्या भी तो बड़ी कठिन है।

नवाब—क्या ?

ख़लीफ़ा—आपको नहीं मालूम। जिन्नों को भेद खुल जाने से बड़ी चिढ़ हो जाती है और यह सौतापे का मामला (सौतिया डाह) बुरा होता है। कहीं आपने कुछ और हाल तो खुरशैद से नहीं कह दिया। शायद नशे में कुछ ज़बान से निकल गया हो।

नवाब—(चौंक कर) मैंने उस दिन की बातों के सिवा और कुछ खुरशैद से नहीं कहा।

ख़लीफ़ा—बस मुझे इसी का डर है। देखिये अच्छी तरह याद तो कीजिये।

नवाब—तो फिर फ़िक्र करने लगे।

ख़लीफ़ा—एक बात तो मुझे याद है। शायद कल ही का वाक़ा है। आपने ख़ुरशैद के सामने रुपया निकालने को संदूक़चा खोला था। उसमें सब्ज़-क़बा के हाथ की गिलौरियाँ रक्खी हुई थीं।

नवाब—हाँ, खोला था।

ख़लीफ़ा—बस वही बात होगी। हम तो कहते थे। और यह ज़ोर से जो धमाके की आवाज़ आई यह ख़ास गुस्से की निशानी है।

नवाब—(सहम कर) तो क़ुसूर क्या हुआ।

ख़लीफ़ा—यह कहिये आपको आमिल (सिद्ध) अच्छा मिल गया नहीं तो ख़ुदा जाने क्या से क्या हो जाता।

नवाब—आख़िर क्यों ? हुआ ही क्या था ?

ख़लीफ़ा—जी, मुझे याद पड़ता है कि ख़ुरशैद ने गिलौरी हाथ में उठाई और सूँघा। आपसे पूछा किसके हाथ की लगाई हुई है। लगाने वाली को गालियाँ दीं। मैं बैठा काँप रहा था। आपको इस जिन्न की क़ौम के हाल मालूम नहीं। बड़े नाज़ुक-मिज़ाज (सुकुमार स्वभाव वाले) होते हैं। हमारी ख़ाला के बाग़ में एक चंपा का पेड़ था। उस पर एक जिन्न रहता था। क्या मजाल थी कोई उसका सूँघ तो ले। साल के साल जहाँ वह पेड़ फूला और उसके चारों तरफ़ कांटे लगा दिये गये। मेरा छोटा भाई मेहदी (ख़लीफ़ा जी के ख़ाला-ज़ाद भाई का नाम) आप तो जानते हैं कैसा शरीर है। एक दिन कांटों में घुस घुसा कर थोड़े फूल चुन लाया। ऐ लीजिये, ग़ज़ब हो गया। उसी दिन से जो बुख़ार चढ़ा छै महीने कामिल (पूरे) चारपाई

पर पड़ा रहा। जान के लाले पड़ गये। कोई इलाज असर ही नहीं करता था। हकीम डाक्टर सब इकट्ठा हुए, मगर कुछ न हुआ। आख़िर जब फ़ाल खुलवाई (रमल आदि से शुभ अशुभ दिखलाना) तो यह हाल खुला। अम्मा ने उसका उतारा किया। जब खुदा खुदा करके वह अच्छा हुआ। देखिये नवाब, मैं आपसे हाथ जोड़ता हूँ, खुदा के वास्ते इस मामले में बहुत होशयार रहियेगा वरना दुश्मनों को पछताना पड़ेगा। आप उस गिलौरी के उठा लेने को कम समझते होंगे। वल्लाह, मैं ईमान की क़सम खाकर कहता हूँ, नवाब, मेरा दिल काँप रहा था। खुदा जाने उस वक्त क्या ग़ज़ब हो जाता। वह तो कहिये आपको आमिल अच्छा मिल गया है। बग़ैर शाह साहब की मर्ज़ी के सब्ज़ क़बा कुछ कर नहीं सकतीं।

नवाब—क़सम खाकर कहता हूँ, मुझे इसका ख़याल भी न था। मगर आपने खूब जता दिया। अब खुदा चाहेगा तो हरगिज़ ऐसा न होगा।

ख़लीफ़ा—जी हाँ। अब आप परियों की नज़र पड़ गये। आपको बहुत ही एहतियात करना होगा। ख़ासकर औरत के तो परछावँ से बचिये।

"आज हमने ग़ैर का शिकवा किया दिल खोलके।
हमतो समझे थे वह बिगड़ेंगे मगर चुप हो रहे॥"

नवाब—अच्छा तो अब पिछली बातों को जाने दीजिये, हुआ सो हुआ आइन्दा होशियार रहना है। जैसा आप कहते हैं वही होगा।

ख़लीफ़ा—मैं क्या कहता हूँ। शाह साहब देखिये क्या कहते हैं।

नवाब—मुझे यक़ीन है शाह साहब भी यहीं कहेंगे। मैं देखता हूँ कि आपको इन बातों में बहुत दख़ल है।

ख़लीफ़ा—जी हाँ, अकसर आमिलों की सोहबत रही है। ख़ासकर शाह साहब की ख़िदमत में आते हुए भी एक ज़माना हो गया।

नवाब—मैं यह ख्याल करता हूँ आप भी कुछ न कुछ करते हैं।

ख़लीफ़ा—(मुस्कराकर एक ज़रा ज़ोर से) जी नहीं, मैं क्या जानूँ।

नवाब—हाँ वह आप कुछ करते भी होंगे तो कहेंगे क्यों।

ख़लीफ़ा—(फिर मुसकराके) जादू-टोना का कुछ दिनों मुझे भी शौक़ रहा है।

नवाब—फिर कुछ हुआ भी ?

ख़लीफ़ा—लोना चमारी क़ब्ज़े में आ ही गई थी।

नवाब—फिर छोड़ क्यों दिया।

ख़लीफ़ा—वाक़ा यह हुआ कि एक दिन मरघट से मैंने एक खोपड़ी लाकर कोठे पर अपने कमरे में रक्खी थी। वह कहीं अम्मा ने देख ली। वह चीख मार के धम से गिर पड़ीं। वालिद (पिता) उनकी आवाज़ सुनके दौड़े गये। खोपड़ी तो वहाँ रक्खी हुई थी। उन्होंने देखी। आदमी से उठवा कर फिकवा दी। मुझपर बहुत ख़फ़ा हुए। वह घर ही से निकाले देते थे। आख़िर जब मुझसे अपने सर की क़सम ले ली, मजबूर होकर छोड़ना पड़ा। सारी मेहनत बरबाद हो गई।

नवाब—तो यह कहिये। आप भी छुपे रुस्तम हैं।

खलीफ़ा—जी कुछ भी नहीं। तीन बरस मुफ़्त ख़ाक छानी। महीनों तो आधी रात को मरघट पर गया हूँ।

नवाब—और आपको डर नहीं लगता था? आधी रात के वक्त मरघट जाना। वल्लाह कमाल किया। मुझसे तो हो न सकता।

खलीफ़ा—आप ही का क़ौल (वचन) है कि आदमी दिल पर रख ले तो सब कुछ कर सकता है।

नवाब—यह सच है, मगर वल्लाह रोंगटे खड़े हो जाते हैं। वहाँ भूत-प्रेत सब मिलते होंगे।

खलीफ़ा—मिलते क्यों नहीं। वहाँ अच्छी ख़ासी भूतों की पंचायत सी होती है। कोई बैठा चिलम उड़ा रहा है, कोई नकी में गा रहा है, कोई मुँह से शोले निकाल रहा है। मज़ा तो उस वक्त आता है जब आपस में लड़ाई होती है। पहले गाली-गलौज हुई, फिर हाथा-पाई होने लगी। उनमें से एक झप से भैंसा बन गया, दूसरा भी फ़ौरन ही भैंसा बन गया। खटाखट सींग चल रहे हैं। थोड़ी देर के बाद कुत्तों की सी लड़ने की आवाज़ आने लगी। ए लीजिये, दम भर में हाथी हो गये। टक्करें चलने लगीं। नवाब, देखने लायक़ सैर होती है।

नवाब—और यह मरघट है कहाँ?

खलीफ़ा—एक मरघट? शहर में दस बारह मरघट हैं। एक तो यहीं से थोड़ी दूर है। चलिये एक दिन।

नवाब—मुझे माफ़ कीजिये।

खलीफ़ा—सिद्धियों में क्या कम ख़ौफ़ होता है, जिसका आपको शौक़ है।

नवाब--तो क्या मैं कुछ डरता हूँ।

खलीफ़ा—जी नहीं, खुदा न करे। मगर अभी आप क्या कह रहे थे।

नवाब—जी में रख लूँ तो अकेला चला जाऊँ।

खलीफ़ा—जब जी पर रखिये भी।

यहाँ यह बात इस हद तक पहुँची थी कि दूर से शाह साहब को आते देखकर दोनों चुप हो गये।

शाह साहब—(मुस्कराते हुए) देखिये आपकी वकालत अब खतम हुई। ख़फ़ा हो गई थीं। दो बार पैग़ाम गया और आया। वह औरत जो आपके पास है, निहायत गुस्ताख़ मालूम होती है। शायद सब्ज़-क़बा के हाथ के पान लगे हुए उसने सूँघ लिये। उससे बहुत दुःखी हैं। वह पान आपके संदूक़चे से उड़ गये। अब नज़र भेट नहीं हुआ करेगी जब तक आप एहतियात न कीजियेगा। हुकुम हुआ है कि कोठे वाले कमरे की सफ़ाई की जाय और जो रंग उनको पसंद है, वही रंग फिरवा दिया जाय। फिर एक हफ़्तेके लिये यह कमरा बिल्कुल बंद रहे ताकि उसमें परस्तान के गंध धूप सुलगायी जाय। पलंग, फ़र्श फ़रोश, शीशे आलात यह सब सामान वह खुद मुहैय्या कर देंगी। आप से कुछ मतलब नहीं। एक हफ़्ते के बाद आपको कमरा सजा सजाया मिलेगा। दूसरे यह हुकुम हुआ है कि उस कमरे की कुंजी आपके पास रहे। कोई शख़्स सिवाय आपके कमरे में जाना कैसा कोठे तक पर न चढ़े और आप खुद जब जाइये, नहा धोकर जाइये। जिन चीज़ों की आपको ज़रूरत, होगी वक्त, वक्त, पर मिलती रहेंगी। सब बात गुप्त रखने की बार बार ताकीद हुई है। उनकी दी हुई किसी

चीज़ पर किसी का परछावाँ न पड़े। आइन्दा आपको अख़्तयार है। आपके मामले में मेरी इबादत (पूजा) का वक़्त इक्कीस मिनट टल गया। आप भी जाकर आराम कीजिये और ख़बरदार, जैसा कह दिया है वही कीजियेगा।

नवाब के दिल में हज़ारों बातें साफ़ करके समझने के क़ाबिल थीं मगर शाह साहब का रौब इस क़दर छाया हुआ था कि लाख लाख इरादा किया, एक लफ़्ज़ ज़बान से न निकला। फ़ौरन उठ खड़े हुए। ख़लीफ़ा भी साथ ही उठे और घर को रवाना हुए।

दूसरे दिन कमरे में चूनाकारी (सफ़ेदी) हुई। सब्ज़ (हरा) रंग फिरवाया गया। फिर कमरा शाह साहब के कहने के मुताबिक़ बन्द कर दिया गया।

× × ×

हल्क़ा बगोश यार हैं बात किसी की क्यों सुनें।
दस्त ब दस्त इश्क़ है राहनुमां से क्या ग़रज़॥
सुना है आज वह बेपर्वा रोबरू होंगे,
निगाह शौक़ को हैरानियां मुबारक हों॥

आठ दिन ख़ुदा ख़ुदा करके कटे। ख़ुरशैद से मिलना छोड़ दिया गया। और कोई बात इस हफ़्ते की लिखने लायक़ नहीं है।

आठवें दिन जुमे को शाम के वक़्त ख़लीफ़ाजी और नवाब साहब मामूली तौर से शाह साहब के मकान पर जाते थे। गोमती उस पार गाड़ी जहाँ खड़ी हुआ करती थी, वहाँ खड़ी की गई। दोनों रवाना हुए। इस वक़्त रात हो गई थी। चाँदनी छिटकी हुई थी। सड़क से शाह साहब के मकान को जाते हुए कोई आधे रास्ते पर दाहिनी तरफ़ दूर से कोई चीज़ चमकती चमकती नज़र

आई। नवाब और ख़लीफ़ा दोनों का ध्यान उस तरफ़ गया।

ख़लीफ़ा—देखिये तो यह क्या पड़ा है ?

नवाब—कुछ होगा, चलिये भी।

इन्हीं दो बातों में दोनों पास पहुँच गये। अब साफ़ साफ़ नज़र आया। एक छोटी सी डिबिया पड़ी हुई थी।

ख़लीफ़ा—यह डिबिया उठाइये।

नवाब—नहीं साहब रास्ते की कोई चीज़ न उठाना चाहिये।

ख़लीफ़ा—उठाइये तो, देखकर फिर फेंक दीजियेगा।

नवाब—(कुछ समझ के) डिबिया उठा ली। खोल के जो देखा तो एक पन्ने का लटकन (तावीज़) उसमें रक्खा हुआ था।

ख़लीफ़ा—लीजिये मुबारक हो। यह आप ही के वास्ते है। परी ने अपना ग़ुलाम कर लिया।

अब क्या है, नवाब की बाछें खुल गईं। लटकन को कई बार देखा। जी चाहता था चूमें, आँखों से लगाएँ मगर ख़लीफ़ा के सामने ज़रा शर्म आई। डिबिया जल्दी से जेब में रख ली।

ख़लीफ़ा—मगर अब कान छिदवाना पड़ा। अच्छा तो इस मामले में शाह साहब से सलाह लेना ज़रूरी है।

नवाब—कान तो मेरा छिदा हुआ है।

ख़लीफ़ा—जब ही तो लटकन आया वरना कोई और अदद बाज़ूबन्द वग़ैरह आया होता। नवाब, वल्लाह तुम्हारे मुँह पर लटकन क्या ही भला मालूम होगा।

नवाब इसका क्या जवाब देते, मगर दिल में बहुत ख़ुश हुए।

खुश खुश शाह साहब के पास पहुँचे। जाते ही डिबिया खोलकर लटकन दिखाया।

शाह साहब– जी हाँ, अब नजर भेट का सिलसिला जारी हुआ। आज रात को यहाँ से जाके हम्माम कीजिये (नहाइये)। हम्माम में बहुत एहतियात कीजियेगा। एक मर्तबा पानी से और एक मर्तबा केवड़े गुलाब से नहाइयेगा। तहबंद बाँधे हुए कोठे पर चले जाइये। हम्माम के वक्त से कोठे पर जाने तक किसी से बात न कीजियेगा। किसी औरत का परछावाँ न पड़ने पावे। आज रात को परी का दीदार (दर्शन) आपको नसीब होगा मगर पूरे ज़ब्त (संयम) से एक क़दम आगे न बढ़ाइयेगा। वरना सब क़ारखाना उसी वक्त तितर बितर हो जायगा। न बात करने का इरादा कीजियेगा। जब सामना रहे उस वक्त छींके, अंगड़ाई और जम्हाई लेने से एहतिहात कीजियेगा क्योंकि यह काम परियों की तबीयत के खिलाफ़ हैं। परियों की शराब की शीशी तिलस्मी संदूक़चे में मिलेगी उसे पी लीजियेगा। हुक्का सिगरेट इन चीजों की बू उस कमरे में कभी न हो। इत्र अंबर के सिवाय और कोई इत्र इस्तेमाल न कीजियेगा। गुलाब, मोतिया, जुही इन फूलों के साथ रखने की इजाज़त है। दो एक गुलदस्ते (हो सके तो) साथ साथ कोठे पर लेते जाइयेगा। कल सुबह को गाय के खालिस दूध में पकी हुई चावल की खीर दरिया पर भेज दीजियेगा। और हाँ, खूब याद आया, इस लटकन के बारे में बातचीत हो चुकी है। जिस वक्त से कान में डालियेगा फिर, जहाँ तक बन पड़े, उतरे नहीं। क्योंकि कई गण उसकी रक्षा करते हैं। वह आपके साथ साथ रहेंगे। अगर किसी वक्त उतार के ग़फ़लत कीजियेगा, फ़ौरन ग़ायब हो जायगा। इसका गायब होना दुश्मनों की खराबी का निशान है। सब बातें

आपको पूरी तरह समझा दी हैं। इसमें ज़रा भी फ़र्क़ न पड़े। दुबारा फिर बतलाये देता हूँ कि परियों की दोस्ती कोई दिल्लगी नहीं है। जिस तरह इसका होना मुश्किल है उससे ज़्यादा निबाह मुश्किल है। जाइये अब देर न कीजिये। ख़ुदा मुबारक करे। फ़क़ीर को दुआ दिया कीजिये और कोई लाभ लालच नहीं है। मुरशद के हुक्म से सब कुछ मौजूद है।

× × ×

दस बजे दिन को हकीम साहब के दवाख़ाने में एकांत है। हकीम साहब हैं, बी महरी हैं, नबीबख़्श हैं और मियाँ अमजद हैं। ज़रूरी मामलों पर बातचीत हो रही है।

महरी—देखिये हकीम साहब, यह मौक़ा हाथ से न जाने दीजिये। मकान किराये पर हो जायगा।

अमजद—किराया कैसा? मैं तो जानता हूँ गिरवी रख लीजिये।

महरी—वह गिरवी काहे को रखने लगीं।

अमजद—इससे तुम्हें क्या मतलब। मैं तो गिरवी करा दूँगा।

महरी—ऐ हटो, तुम क्या जानो।

अमजद—लो हम जानते ही नहीं। हमारी ख़ाला का तो मकान है।

महरी—हाँ ए लो सच तो है। उम्दा ख़ानम तुम्हारी ख़ाला हैं। अहा! यह तो मुझे याद ही न था। अच्छा तो अब सब बात बन जायगी।

नबीबख़्श—यह कौन उम्दा ख़ानम।

अमजद—हमारी ख़ाला। मिर्ज़ा क़ुर्बान अली साहब की जोरू।

नबीबख्श—हाँ तो यह कहो। क़ुर्बान अली तुम्हारे ख़ालू थे।

हकीम साहब—(नबीबख्श से) यह कौन क़ुर्बान अली।

नबीबख्श—ए हुज़ूर जिनका ज़रदोज़ी का कारख़ाना था।

हकीम साहब—तोप दरवाज़े में।

नबीबख्श—जी वही।

हकीम साहब—उनका एक लड़का भी तो कलकत्ते में है।

अमजद—वह मुद्दत हुई मर गया।

हकीम साहब—तो जायदाद साफ़ है। किसी तरह का कोई झगड़ा तो नहीं।

अमजद—जी कोई झगड़ा नहीं। भला ऐसी बात है। वह तो मेरे सामने का मामला है।

हकीम साहब—अच्छा उम्दा ख़ानम राज़ी हो जायँगी।

अमजद—मैं राज़ी कर दूँगा।

हकीम—मगर वह बिचारी अदा क्योंकर करेगी?

अमजद—ज़ाहिर में तो कोई शक्ल अदा करने की मालूम नहीं होती।

हकीम साहब—और मुनाफ़ा क्या देंगी?

अमजद—हुज़ूर मुनाफ़ा वुनाफ़ा नहीं। न आपका सूद न उनका किराया।

हकीम साहब—लाहौल वलाक़ुव्वत। सूद कैसा?

अमजद—जी हाँ भूल गया। वही मुनाफ़ा।

हकीम साहब—नहीं भई दो रुपया सैकड़ा पर राज़ी करो।

अमजद—देखिये मैं कहूँगा मगर वह जितना मैंने कहा है उसी पर राजी होगी।

नबीबख्श—हुज़ूर मामला अच्छा है। देख लीजिये मकान बुरा नहीं है।

हकीम—कितने तक यह रहन हो जायगा।

अमजद—तीन सौ रुपये पर।

हकीम—इतने की तो मालियत नहीं है।

अमजद—हुज़ूर के कहने की बात है? तीन सौ से ज़्यादा का तो पानी उसमें ख़र्च हुआ होगा। ईंट मसाले की गिनती नहीं।

नबीबख्श—कोई डेढ़ हज़ार का मकान है।

अमजद—दो सौ रुपये पर।

हकीम—मकान की हैसियत तो इतने की नहीं मगर इस मामले की ग़रज़ से कुछ बात भी नहीं।

नबीबख्श—इस वक़्त अपना काम निकालना है। मकान से आपको क्या ग़रज़। मगर वह मौक़ा ऐसा है कि जो बात आप चाहते हैं वह हो जायगी।

हकीम—(कुछ सोचके) हूँ।

महरी—हूँ नहीं, ऐसा मौक़ा मुश्किल से मिलता है। यह आपकी क़िसमत है।

नबीबख्श—वल्लाह, सच कहती हो। फिर मियां तो हमारे हैं नसीबेवर।

अमजद—मियां नबीबख़्श, इस मकान की वजह से इस वक़्त सोलह आने का काम बनेगा।

जब तक इन लोगों में यह व्यर्थ की नीरस बातें होती रहीं, हकीम साहब को असली मामले के बारे में फ़िक्र करने का वक़्त मिल गया। आख़िर सर उठाया।

हकीम साहब—मगर हाँ, यह तो कहो मकान पर किसका क़ब्ज़ा रहेगा।

अमजद—आपका क़ब्ज़ा रहेगा और किसका क़ब्ज़ा रहेगा।

नबीबख़्श—(पीनक से सर उठाके) हाँ यही मैं भी ग़ौर कर रहा था।

महरी—तुम तो कुछ वाही (मूर्ख) हो। कब्ज़ा किसका रहता। जो रहन रक्खेगा उसी का क़ब्ज़ा रहेगा। यह तो सारी दुनिया का दस्तूर है।

हकीम साहब—(बात के पहलू को समझके) क़ब्ज़ा तो रहेगा और मुनाफ़ा?

महरी—न आपका मुनाफ़ा न उनका किराया।

हकीम साहब—सुनो बी महरी, बात यह है कि उस मकान की हैसियत इतने किराये की नहीं है। मुनाफ़ा कम से कम दो रुपया सैकड़ा तो हो। इस हिसाब से चार रुपये माहवार पड़ा।

महरी—मैं कहती हूँ, हकीम साहब, तुम कैसी कैसी बातें कर रहे हो। हमने तो आपके फ़ायदे के लिये एक बात ठहराई। आप मुनाफ़े को देखते हैं।

हकीम साहब—यह सब सच है मगर मामला मामले की तरह होगा। मेरी राय में उन्हें सौ रुपये पर राजी करो।

सौ रुपये का नाम सुनकर बी महरी का मुँह फूल गया। त्यौरी चढ़ गई। मियां अमजद की अबरूओं (भवों) पर दोहरे दोहरे बल आ गये। मियां नबीबख्श को अगरचे ज़ाहिर में इन मामलों से कोई ताल्लुक़ न था, मगर फिर भी नथने फुलाकर गर्दन फेर ली और ढाक के पत्ते से जल्दी जल्दी चिलम को धोंकने लगे।

वाक़ई हमारे हकीम साहब मामले के बारे में बड़े सख्त थे। तमाम उम्मेदें उस मकान के रहन रखने पर निर्भर थीं मगर जी यही चाहता था कि जिस तरह बन पड़े रुपया कम ख़र्च हो और मुनाफ़ा पूरा मिले। मगर जब कमेटी के सब लोगों का रंग देखा तो कुछ और दबे।

हकीम साहब—अच्छा यह तो देखो उस मकान का किराया क्या है?

महरी—तीन रुपये महीना।

हकीम साहब—अच्छा तो बस। डेढ़ सौ ले लें।

महरी—यह मामला न होगा। जाने दीजिये।

अमजद—जाने क्यों दीजिये। देखो हम फ़ैसला किये देते हैं। दो सौ आप दीजिये, हम चार रुपये महीने का सरख़त कराये देते हैं।

हकीम साहब—हाँ, ठीक है।

नबीबख्श—भई क्या बात निकाली है। देखिये हमारे फ़रिश्तों के दिमाग़ में भी यह बात न आई थी। भई, क्या बात को सुलझाया है।

महरी—अच्छा फिर सरखत लिख देंगी तो रहेंगी भी उसी में।

अमजद—और रहने कहाँ जायँगी ?

महरी—तो वह बात तो न हुई।

हकीम साहब—एक मुश्किल से निकल कर दूसरी मुश्किल में पड़े। क्योंकि उस मकान के लिये असली मतलब तो यही था कि बेगम साहिबा को सोने की जगह कोई सुरंग लगाई जाय।

मगर मियां अमजद ने आज हकीम साहब की मददगारी का बीड़ा उठाया। फ़ौरन इस मुश्किल को हल कर दिया।

अमजद—अच्छा क्या खासी बात है। इसका बंदोबस्त भी हम कर देंगे। वह तो हमारे घर की बात है। जब आपका जी चाहे तशरीफ़ लाइयेगा। हम मकान पर पर्दा करा दिया करेंगे।

हकीम साहब—(यह सुनकर चेहरे पर खुशी के आसार जाहिर हुए) हाँ वह बुढ़िया तो हैं, एक कोने में पड़ी रहेंगी।

नबीबख्श—यह भी खूब है, इसलिये कि किरायेदार रक्खा जाता तो वह अपने घर में काहे को आने देता। खाली मकान पड़ा रहता तो रात को सोने के लिये आदमी नौकर रखना पड़ता। (दिल में—हकीम साहब और आदमी तो क़यामत तक नौकर न रखते। मुझी को नाहक़ नाहक़ तकलीफ़ देते)

हकीम साहब—और यह तो कहो किराया कहाँ से अदा करेंगी।

अमजद—उनका भतीजा कलकत्ते से खर्च भेजता है, उसमें से अदा करेंगी।

हकीम साहब—क्या महीना आता है।

अमजद--पाँच रुपया।

हकीम साहब--पाँच रुपये में से चार रुपया तो किराया देंगी और खाएँगी कहाँ।

अमजद--खुदा सब को देने वाला है।

हकीम साहब--यह सही है मगर देखने में...

अमजद--(जरा तेवर बदलकर) आप तो बात पूछते हैं, बात की जड़ पूछते हैं। आपको इन झगड़ों से क्या। किराया अपना छटे महीने चार रुपये महीने के हिसाब से सब ले लीजियेगा।

हकीम साहब--छटे महीने?

अमजद--छटे महीने तो कलकत्ते से खर्च आता है। वह छटे महीने आपको देंगी।

हकीम--अच्छा यों भी सही।

हकीम साहब को कुछ देर के लिये इस मामले में जरा अंदेशा हुआ था मगर इस खयाल से कि मकान में कम से कम चार सौ रुपये की लकड़ी है, ईंट भी कम से कम सवा सौ रुपये की निकल ही आएगी। अगर किराया न वसूल होगा, नालिश करके मकान को कुर्क कराके नीलाम पर चढ़ा दूँगा। फिर अपने ही नाम छुड़ा लूगा। बुढ़िया का मकान अब उसे नहीं मिलता।

इसके बाद थोड़ी देर तक मुद्दत के बारे में बातचीत हुई कि कितने दिन के लिये रहन हो। आखिर दो बरस पर तय हुआ। मामले का क़तई पूरा होना मालिक की रजामंदी पर रहा। चलते वक्त मियाँ अमजद ने पाँच रुपये बतौर पेशगी वसूल किये।

हकीम साहब मकान में तशरीफ ले गये। दफ्तर जालसाजी बंद हुआ। पाँच रुपये का उसी वक्त, हिस्सा बाँट हो गया। तीन रुपये मियाँ अमजद के हिस्से में आए। एक बी महरी ने अपने बटुए में डाला। एक मियां नबीबख्श ने अपनी अंटी में लगाया।

× × ×

रजिस्ट्रार के दफ्तर में एक डोली रक्खी हुई है। एक लँगड़ी नौकरानी डोली के पास बैठी है। चुन्नूलाल अर्जी-नवीस (लिखनेवाला) ने रहन-नामा लिखकर तैयार किया है। हकीम साहब गाड़ी में तशरीफ रखते हैं। मियां अमजद ने रहननामे पर निशानी बनाई है। कागज रजिस्ट्रार साहब के हाथ में पहुँचा है। चंद ही मिनट के बाद पुकार हुई। उम्दा खानम की डोली रजिस्ट्रार साहब के सामने गई।

रजिस्ट्रार—उम्दा खानम, रुपया पाया।

उम्दा खानम—(डोली में से) हुजूर अभी बीस रुपये पाये हैं। यह उसकी रसीद है। बाक़ी एक सौ अस्सी रुपया इस वक्त हुजूर के सामने दिया जायगा।

हकीम साहब—एक सौ अस्सी रुपये गिनकर उम्दा खानम को देते हैं।

उम्दा खानम—(डोली के अंदर रुपयों को गिनकर) हुजूर पाया।

रजिस्ट्रार—कितना रुपया है।

उम्दा खानम—ऐसा कि चार पचीस पचीस और चार बीसी।

अमजद—तो वही एक सौ अस्सी हुए ना?

रजिस्ट्रार—(अमजद से) वेल, तुम कौन ?

अमजद—हुजूर यह मेरी खाला हैं।

रजिस्ट्रार—तुम शानख्त (पहचान) करता है।

अमजद—हुजूर।

रजिस्ट्रार—तुमको कौन पहचानता है।

चुन्नूलाल—(अर्जी-नवीस आगे बढ़के) हुजूर मेरी शनाख्त है।

रजिस्ट्रार—उम्दा खानम की कोई और शनाख्त भी है।

चुन्नूलाल—हुजूर सीधे हाथ की कलाई के पास एक स्याह तिल है।

रजिस्ट्रार—दिखा सकता है।

चुन्नूलाल—(डाली की तरफ़ मुँह करके) उम्दा खानम, हाथ दिखाओ।

डोली से हाथ बाहर निकाला। रजिस्ट्रार साहब ने चश्मा लगाकर स्याह तिल को देखा।

रजिस्ट्रार—(काग़ज़ की पुश्तकी इबारत लिखकर) और यह दूसरा काग़ज़ कैसा है।

मुहर्रिर पेशी—यह सरख़त है।

रजिस्ट्रार—कातिब (लिखने वाली) का नाम।

मुहर्रिर पेशी—उम्दा खानम।

रजिट्रार साहब ने रहननामा और सरख़त दोनों काग़ज़ों की तसदीक़ की। इबारत अंगरेजी में दस्तावेज़ की पुश्त पर लिखी। दोनों काग़ज़ दफ़्तर में गये। दहानीद (देने की रसीद)

हकीम साहब के नाम लिखवाई गई। रहननामे की गवाही, रहन करने वाली की शनाख्त यह सब बातें बाजाब्ता तय हो गई। मकान में दूसरे ही दिन से मदद लगा दी गई। टूट फूट की मरम्मत होने लगी। मरम्मत के साथ ही साथ और कुछ जरूरी फेरफार मकान में किये गये।

× × ×

एक दिन रक़ीब से भी बिगड़ना जरूर है।
मेरी तुम्हारी शर्त इसी बात पर सही॥

अभी तो हमसे बिगड़ी है मगर यह याद ही रखना, हमीं काम आएँगे, उस वक्त जब ग़ैरों से बिगड़ेगी। ख़ुरशैद थी तो रंडी, मगर हद की वज़ादार थी। सूरत और सीरत (स्वभाव) दोनों बहुत कम एक जगह जमा हुए हैं, खासकर बाजारी औरतों में। जिस दिन खलीफ़ाजी से नवाब के सामने कहा-सुनी हुई उसी दिन उसको मालूम हो गया था कि अब मेरा रहना इस सरकार में मुश्किल है। खलीफ़ा की जाल-बंदियों से वह खूब वाक़िफ़ थी। उसको मालूम था कि नवाब अब फ़रेब के जाल से निकल नहीं सकते। नवाब से उसको किसी क़दर मुहब्बत भी थी, मगर वही मुहब्बत जो इस क़िस्म की औरतों को हो सकती है। न ऐसी कि जैसी नेक-बख्त बीबियों को अपने शौहर से होती है। इन दोनों मुहब्बतों में बहुत ज्यादा, बहुत कम और बीच के दर्जे का संबंध होता है। यानी या तो ऐसी औरतें हद से ज्यादा चाहने लगती हैं या बहुत ही कम या बिलकुल नहीं। और बीबी की एक-सी हालत रहती है।

ख़ुरशैद को छोटे नवाब से मुहब्बत थी मगर इस क़दर कि

जैसी उस नौकर को अपने मालिक से होती है जो अपने कर्तव्य को समझता है। ऐसा तो न था कि जब खुरशैद की तनख़ाह बन्द कर दी गई तो वह उसी तरह नवाब के पास आया जाया करती। यह उसके जलील पेशे के ख़िलाफ़ था। हाँ बेशक ताल्लुक़ टूट जाने पर भी वह नवाब की दुश्मन न हुई। न उसने कभी गालियाँ दीं। न कोसा न उनका पीछा किया। बल्कि ख़लीफ़ाजी के व्यवहार के ढंग से आगाह होकर उसने खुद ही किनारा-कशी की—वह भी इस ख़ूबसूरती से कि नवाब को नाग वार भी न हो। उसने कुछ हीला-हवाला करके नवाब से रुख़-सत ली और कुछ दिन के लिये इलाहाबाद चली गई। थोड़े दिन वहाँ रहकर लखनऊ चली आई और घरमें बैठ रही। इसी बीचमें उसने एक महाजन के लड़के से दोस्ती बढ़ाली और उसी तनख्वाह पर जो नवाब देते थे नौकर हो गई।

ताल्लुक़ टूट जाने के बाद अब उसको जिस क़दर नवाब का ख्याल और उनके मिटने का अफ़सोस रह गया था, वह भी ऐसी औरतों को कम होता है। उसने कभी अपनी जबान से नवाब की बुराई नहीं की न जूती की नोक पर मारा न अपनी एड़ी चोटी पर से निछावर किया। असली हालत तो सिर्फ़ इतनी ही थी जो हमने मोतबिर जरियों से मालूम करके लिखी है। मगर ख़लीफ़ा जी ने उस बिचारी के विरोध को नवाब के दिल में मज़-बूत करके उसकी तरफ़ से दिल फेर दिया बल्कि दुश्मन बना दिया। कुछ अपराध भी उस पर लगाये, जिनकी कुछ असल न थी। जैसे, मीर काज़म अली एक जवान छैला, जो नवाब के साथ के खेले हुए थे, और उनसे और भी कुछ पुराने ताल्लुक़ात थे, नवाब के वफ़ादार दोस्तों में थे। ख़ानदानी शराफ़त की वजह से ख़लीफ़ा से दबते थे। नवाब की सरकार से उनको दस्तू

रुपया माहवार बड़े नवाब के वक्त. से मिलते थे। दोस्तों में गिने जाते थे। उनके बाप मीर बाक़र अली साहब बड़े नवाब के खास के दोस्तों में थे और दोस्तों की फ़हरिस्त में तनख्वाह भी पाते थे। बड़े नवाब के मरने से कोई सात आठ बरस पहले वह मर गये। उस जमाने में मीर काजम अली की उम्र दस ग्यारह बरस की थी। चूंकि कोई जीविका का साधन न था, उनकी मा बहुत ही परेशान थीं। मगर बड़े नवाब ने बाप की तनख्वाह बेटे के नाम कर दी। तालीम तरबियत (शिक्षा दीक्षा) के लिये बहुत ताकीद की। छोटे नवाब के साथ ही इन्होंने पढ़ा लिखा। मतलब यह कि बड़े नवाब ने इन्हें बच्चों की तरह पाला था और अपने बेटे की तरह समझते थे। जिस जमाने में खलीफ़ाजी सब कामों में दखल देने लगे, मीर काजम अली करबला गये हुए थे। जब यह करबला से होकर आये हैं, खलीफ़ाजी का जहर काम कर चुका था। छोटे नवाब की सरकार को मीर काजम अली अपना घर समझते थे। उनको यह क्या मालूम था कि यहाँ का रंग ही बदल गया है। मीर काजम अली के मिजाज में बचपन से एक तरह की भलाई थी। पाँचों वक्त. की नमाज पढ़ते थे और यात्रा से आने के बाद कुछ पुण्य कमाने का लिहाज भी हो गया था। उनकी जेब में खाक-शफ़ा की माला रहती थी। नशे की चीजों से बिल्कुल दूर रहते थे। गंजफ़ा, चौसर वग़ैरह तक से परहेज करते थे। गाने से उनकी तबीयत को बहुत कुछ लगाव था। लय, सुर से अच्छी तरह वाक़िफ़ थे। आवाज भी ग़जब की थी। करबला से वापिस आने के बाद उन्होंने गाना भी छोड़ दिया। सिर्फ़ सोज़ (मर्सिया) पढ़ते थे। यह सब कुछ था मगर आख़िर जवान आदमी थे। सोहबत नवाबज़ादों की पाई थी। यह आख़िरी तोबा न चली। दोस्तों की सोहबत में सोज़

पढ़ने का मौक़ा हर वक्त, नहीं होता। आख़िर यारों ने मजबूर करके इस तोबा को तुड़वा दिया, गाने लगे। खुरशैद ने भी तालीम अच्छी पाई थी। इसलिये वह इस फ़न में ज्यादा तरक्क़ी न कर सके। मीर काज़म अली के नियम तोड़ने का पाप ज्यादा तर खुरशैद की गर्दन पर था। उसको मीर साहब का गाना बहुत ही पसंद था। एक तो यह सबब मेल-जोल का था। दूसरे सब्ज़-क़बा के मामले में भी मीर काज़म अली खुरशैद की हाँ में हाँ मिलाते थे। उनकी राय में भी वह बिलकुल कहानी की सी बात थी। छोटे नवाब ने शराब पीना भी मीर काज़म अली की ग़ैरहाज़िरी में शुरू किया था और उनको यह अच्छी तरह मालूम था कि मीर साहब हरगिज़ इसमें शरीक न होंगे। इस सबब से नवाब इनके सामने इस शग़ल को नहीं करते थे। इस वजह से वह अब सोहबत में कांटे से मालूम होते थे। यह विरोध के स्वाभाविक कारण मौजूद थे। खलीफ़ा जी ने एक और जोड़ मारा। किसी मौके पर नवाब के कान फूंक दिया कि खुरशैद और मीर साहब में गुप्त सम्बन्ध है। वह इन पर मरती हैं, यह उस पर जान देते हैं। उन कारणों की वजह से, जो हमने ऊपर बतलाये हैं, यह फ़िक़रा ऐसा चलता हुआ था कि छोटे नवाब को यक़ीन ही तो हो गया।

मीर काज़म अली मिज़ाज के झल्ले थे। जब उनको इशारों से यह मालूम पड़ गया वह भी ख़फ़ा होके घर में बैठ रहे। तनख्वाह की तरफ़ से इत्मीनान था, इसलिये कि उनको तनख्वाह कोई बन्द नहीं कर सकता था। बेगम साहिबा की सरकार से मिलती थी। मीर काज़म अली का घर में बैठ रहना छोटे नवाब के लिये और भी ज़हर हो गया। छोटे नवाब की सोहबत में कोई हमदर्द उनका बाक़ी नहीं रहा था। मगर वह मजबूर थे,

इसलिये खलीफा जी के विरोध का वह जवाब क्या देते। दुनिया के जाल फ़रेब से बिलकुल अनजान थे। उस पर मिज़ाज का झल्लापन और भी क़यामत था। बल्कि उन्होंने अक़्लमन्दी की कि इस सोहबत से किनारा किया वरना मुमकिन था कि किसी क़िस्म की ज़िल्लत उठानी पड़ती।

× × ×

वह मकान जिसके रहन सहन के मामले का ज़िक्र किया गया है, मीर काज़म अली की फूफी का था। अगरचे खलीफा जी और मीर काज़म अली में मेल न था मगर दोनों एक ही सरकार के आश्रय में रहते थे। इसलिये उस मकान का खाली करना कितनी बड़ी बात थी। और असल में तो खाली कराने की ज़रूरत ही न थी। इसलिये कि मुद्दतों से खाली पड़ा था। सिर्फ़ आठ आने के स्टांप पर मामूली इबारत सरखत का लिख देना और एक महिने का किराया पेशगी भिजवा देना काफ़ी था। मकान खलीफा जी के क़ब्ज़े में आ गया। अब उस मकान पर इमामन महरी और खलीफा जी दोनों का क़ब्ज़ा शामिल शरीक था। बाहर के ताले की दो कुंजियां थीं—एक बी महरी के बटुए में और दूसरी खलीफा जी की जेब में रहती थी। हैसियत मकान की यह थी। नीचे दुतरफ़ा दालान दर दालान, दोनों तरफ़ इकहरे दालान थे। दो जीने कोठे पर जाने के थे। दुहरे दालानों पर दोनों तरफ़ कोठे पर एक एक कमरा बना हुआ था। न उसके आगे सायबान था। हर एक के सामने छोटा सा सहन था और मकान के सहन की तरफ़ क़नाती दीवार पर्दे की थी। रास्ता दोनों कमरों का दो अलेहदा अलेहदा जीनों से था। दोनों कोठों पर दो गृहस्थी अलग अलग रह सकती थीं। नीचे

का मकान बिलकुल खाली छोड़ दिया गया था। एक तरफ का कमरा उस महल के कोठे से लगा हुआ था जिसमें बेगम साहिबा रहती थीं। और दूसरी तरफ का कोठा दीवानखाने से मिला हुआ था, जिसमें बिलफैल छोटे नवाब तशरीफ रखते थे। शाह साहब ने इसी दीवानखाने के बालाखाने (ऊपर का कमरा) की सजावट का हुक्म दिया था। यह एक छोटा सा कमरा था। उसके सामने नवाब साहब के कहने से काठ का सायबान हरे रंग का लगा दिया गया। अंदर कमरे में सब्ज रंग भरवा दिया गया। इसके बाद सुगंध की चीजें सुलगाकर कमरा बंद कर दिया गया। तीन दिन परस्तानी आरायश (सजावट) के लिये दिये गये। चौथे दिन जुमेरात (वृहस्पतिवार) को शाम के वक्त कमरा खोला गया। अब जो देखा तो कमरा दुलिहन की तरह सजा हुआ है। हरी छत, सब्ज क़ुमक़ुमे (काँच के गोले) हरे पर्दे, सब्ज झाड़ कँवल—गरज की एक आलम हरा था। ताकों और ब्रेकिटों पर तरह तरह के गुलदस्ते चुने हुए थे। सायबान में चीनी की नाँदों में सुनहरी और रुपहली पत्तों के पेड़ लगाये हुए थे। एक तरफ पन्ने के पायों की पलंगड़ी लगी हुई थी। पलंगड़ी के सामने तिलस्मी दरवाजा जड़ा गया था। इस तिलस्मी दरवाजे की बनावट अजीबो ग़रीब थी। एक महराबदार दरवाजे की बनावट थी। महराब के सरपर निहायत ही खूबसूरत गोल क्लाक लगी हुई थी। दरवाजे के दोनों पट जमर्रुद (पन्ना) के शीशे के थे। सुनहरी खँटके लगे हुए थे। महराबदार हिस्सा अलेहदा पटों से खुलता बंद होता था। उसकी बनावट एक संदूक़चे के मानिंद थी। उसमें एक तिलस्मी ताला लगा था, (जिसे मामूली बोलचाल में हरफों का ताला कहते हैं) इस ताले के हर्फ़ शाह साहब ने नवाब साहब को बतलाये थे।

घड़ी के एलारम का भेद भी नवाब साहब को मालूम था। कभी कभी यह एलारम अपने आप बजता था। उसके साथ ही बहुत ही सुहावनी गत बजती थी। यह परस्तान से किसी के आने का संकेत था। नवाब साहब महराब वाले संदूकचे को खोलते थे। उसमें से या चिट्ठी मिलती थी या कोई और चीज़। जैसे अंगूठी या इत्रदान या गिलौरियां या परियों की शराब की शीशी या और कुछ।

कमरे के बाहर के कोठे के सहन में एक बंगला डाला गया था। इस बंगले में एक संदली तख्त बिछा हुआ था। उसके बीच में एक हौज़ कोई सवागज़ लंबा और सवागज़ चौड़ा था जिसमें केवड़ा गुलाब भरा रहता था। यहाँ नवाब साहब को दो बार नहाना होता था। बँगले में खड़ाऊँ, तौलिया, तहबंद, आइना, कंघी, इत्र, तेल, साबुन वग़ैरह सब समान नहाकर पोशाक पहनने का मौजूद था। खास पोशाक भी यहीं रहती थी।

नवाब साहब यहाँ नहाने के बाद कपड़े बदल कर ठीक बारह बजे कमरे में दाखिल होते थे। तिलस्मी दरवाज़े की तरफ़ मुँह करके पलंगड़ी पर बैठते थे। कुछ मिनट बाद अलारम बजता था। नवाब साहब तिलस्मी संदूकचे का ताला खोलते थे। उस वक्त मामूली तौर से एक शीशा शराब का मिलता था। उसको एक पन्ने की प्याली में घूंट घूंट करके पीते थे और फिर नशे की हालत में अपनी जगह पर बैठ कर झूमा करते थे।

तिलस्मी दरवाजे की तरफ़ से हारमोनियम और पियानो के बजने की आवाज़ आती थी। कभी ऐसा मालूम होता था जैसे कोई नाच रहा है। गतें और तोड़े साफ़ सुनाई देते हैं। कभी कभी परी का दर्शन भी हो जाता है। परी का लिबास

धानी या हरा सितारे टके हुए। हरी रोशनी में सितारों का चमकना अजब बहार देता था। कभी कुछ सुबह सा होता था जैसे वही चन्द्र-मुखी जिसको टूटे खंडहर में देखा था, बहुत बढ़िया पोशाक से सजी हुई, पन्ने के किवाड़ों की आड़ में खड़ी मुस्करा रही है। दो तीन मिनट से ज्यादा दर्शन न होता था। इसके बाद वह बला की सूरत फिर नजरों से ग़ायब हो जाती थी। कभी दो मर्तबा, कभी तीन मर्तबा, कभी सिर्फ़ एक ही बार सामना होता था। ऐसा भी इत्तफ़ाक़ हुआ है कि नवाब साहब रात भर टकटकी बाँधे बैठे रहे और एक झलक देखना नसीब न हुआ। जब कभी ऐसा होता था, नवाब साहब शाहजी से शिकायत करते थे। शाह साहब ग़ायब होने की वजह बतला-कर दिल की तसल्ली कर देते थे।

शाह साहब—साहब, वह तो आप पर जान देती है। उसका जी तो यह चाहता है कि दिन रात आपकी सूरत देखा करे। मगर क्या करे, पराये बस में है। मा बाप की सख्त क़ैद, उस पर तुर्रा यह कि घनश्याम जोगी की शरारत से और भी नाक में दम है। कमबख्त धौलागिरि की चोटी पर रास्ते में उसके बैठने की जगह है। रास्ता रोके बैठा रहता है। उसी तरफ़ से आना जाना ठहरा।

नवाब—यह घनश्याम जोगी कौन है?

शाह साहब—ज़ालिम बुरी बला है। जादूगरी में अपना सानी नहीं रखता। हिमालय पहाड़ की एक चोटी बहुत ही ऊँची है। वहाँ उसका स्थान है। जो परी उधर से निकलती है उसको रोकता टोकता रहता है।

नवाब—फिर आप उस मरदूद का कोई बन्दोबस्त नहीं करते।

शाह साहब—जी हाँ, आपसे पहले मुझे उसका ख्याल है मगर उसकी तदबीर आप ही के हाथ में है।

नवाब—फिर जो हुक्म हो, किया जाय।

शाह साहब—कुछ दिनों देश विदेश की सैर है।

नवाब—मैं हर तरह मौजूद हूं, जब आप कहें।

शाह साहब—हाँ, अभी इसका वक्त नहीं आया। मैं आपसे खुद ही कह दूँगा मगर ऐसा न हो कि वक्त पर आप निकल जायँ।

नवाब—लाहौल वला कुव्वत, आपके कहने की बात है!

खलीफ़ा—(शाह साहब से) इससे आप इत्मीनान रक्खें। जिस वक्त कहियेगा, आपके साथ हो जायँगे।

शाह साहब—और, हाँ, खूब याद आया। आपकी मा, मैंने सुना है, मुर्शिदाबाद जाने वाली हैं।

नवाब—जी हाँ, दस बारह दिन में जायँगी।

शाह साहब—वहाँ कहीं आपकी शादी ठहरी है।

नवाब—मुझे मालूम नहीं।

खलीफ़ा—जी हाँ, ऐसा ही कुछ सुना गया है।

शाह साहब—और यह शादी कहाँ ठहरी है?

खलीफ़ा—नवाब साहब के मामा की लड़की है। आपके मामा बड़े भारी अमीर हैं। करोड़ों की जायदाद है। और उनकी एक इकलौती लड़की है। बचपन से आपके साथ मंगनी हुई है। बेगम साहिबा से कुछ बिगाड़ था मगर आपके वालिद के परलोक-वास के बाद वह खुद यहाँ मातमपुर्सी के लिये आये थे। जब से सफ़ाई हो गई। अब उन्होंने खुद शादी का तक़ाज़ा किया है।

इस बात को सुनकर शाह साहब बहुत ही नाराज़ हुए।

शाह साहब—तो फिर मुझे माफ़ कीजिये। आपने सब्ज़-क़बा से मुफ़्त मुझे शरमिन्दा किया।

नवाब—वालिदा (मा) कहा करें। मैं तो शादी न करूँगा।

शाह साहब—देखिये इस बात से न फिर जाइयेगा वरना ग़ज़ब हो जायगा।

नवाब—मैंने तो आपसे कह दिया। दुनिया फिर जाय, मैं न फिरूँगा।

ख़लीफ़ा—नवाब की तरफ़ से खातिर जमा रखिये। इस उम्र में ही बड़े स्थिर चित्त हैं। जो वायदा करेंगे वही होगा।

शाह साहब—और अगर न हो तो किसका नुक़सान होगा।

ख़लीफ़ा—यह भी सही है।

शाह साहब—सब्ज़ क़बा से बिगाड़ने में सरासर नुक़सान है। पहले तो अटूट धन जो आपको मिलने वाला है न मिलेगा। दूसरी मुश्किल यह है कि दुश्मनों की जान पर, ख़ुदा जाने क्या बन जाए।

ख़लीफ़ा जी—ठीक फ़र्माते हैं मगर हुज़ूर अभी तक तो इंतजार ही इंतजार है। सिर्फ़ ज़मर्रुदी पर्दे की आड़ से देखा-भाली हो जाती है। कोई सूरत ऐसी निकलती कि सदा के लिये मिलाप का ढंग बैठ जाता।

शाह साहब—इस क़दर जल्दी! इतनी जल्दी, जल्दी,—मौत, मौत—

चंद कलमे इस ढंग से शाह साहब ने कहे कि नवाब साहब और ख़लीफ़ाजी दोनों घबरा गये। ख़ुद शाह साहब के चहरे पर

फ़िक्र के निशान पाये जाते थे। बड़ी देर तक ज़ोर ज़ोर से कुछ पढ़ा किये। थोड़ी देर के बाद मुस्कराके—हा मरदूद हा!

नवाब साहब—ख़ैर तो है?

शाह साहब—जी ख़ैरियत है। वही कमबख़्त घनश्याम जादूगर। मगर कमबख़्त कमीने की हक़ीक़त क्या। आख़िर मान गया वह भी।

ख़लीफ़ा—मुनासिब हो तो कुछ ज्यादा हाल बतलाइये।

शाह साहब—इस वक्त सब्ज़-क़बा के बाग़ से ताज़े अंगूर और सेब टूट कर आये थे। मुहब्बत बुरी बला है। हुक्म दिया—पहले डाली नवाब के लिये ले जाओ। वह लिये जाता था। रास्ते में घनश्याम ने रोक लिया। दोनों में देर से झगड़ा हो रहा था। वह कहता था—मैं ले लूंगा। जिन्न कहता था—मैं न दूँगा। मैं आप से बातों में लगा था। वह देर से चीख़ रहा था। इत्तफ़ाक़ से मेरे कानों में आवाज़ पड़ गई। मैंने उसे डाँटा। आख़िर मर्दूद दब गया।

ख़लीफ़ा जी—मगर हुज़ूर यह रोज़ रोज़ का झगड़ा बुरा। इसका नतीजा क्या होगा?

शाह साहब—नतीजा अच्छा होगा। कुछ दिन के लिये मुझे पहाड़ पर जाना होगा। मगर मुझे एक फ़िक्र है कि मौक़ा पाके मर्दूद कहीं नवाब को कुछ नुक़सान न पहुँचावे।

ख़लीफ़ा जी—हुज़ूर यह क्या कम है। लोग तो गज़ दो गज़ का हिस्सार (क़िला, परकोटा) खींचते हैं।

शाह साहब—मुरशद की कृपा से जहाँ मैं हूँ वहाँ से बारह सौ कोस के आस पास कोई जादू-टोना, शैतान और कोई भूत

पलीत, मतलब यह कि किसी का कोई वस नहीं चल सकता। मगर डर इस बात का है कि अगर किसी दिन मैं दूर चला गया और नवाब इस परकोटे से बाहर हो गये तो कमबख्त अपनी कर गुजरेगा।

खलीफ़ा जी—हाँ, मैं यह न समझता था।

नवाब—फिर मैं आपके साथ ही साथ रहूँगा।

शाह साहब—इससे बहतर और क्या हो सकता है। मगर अभी इसका मौक़ा नहीं आया है। जब मुनासिब होगा, मैं आप से कहूँगा। और एक मसल (कहावत) मशहूर है—"अपनी कमियों को पूरा करने के लिए बहुत सफ़र की जरूरत है।" नवाब साहब, माफ़ कीजियेगा। फ़क़ीर के साथ एक सफ़र कीजिये। उम्मेद है कि नफ़े से ख़ाली न होगा।

खलीफ़ाजी—बेशक जमाने भर का तजुर्बा हो जायगा। मगर हुजूर से एक विनती मेरी भी है कि इस सफ़र (यात्रा) में मैं भी साथ रहना चाहता हूँ।

शाह साहब—क्या हर्ज है। मगर एक बात है, बुरा न मानियेगा। ख़ास ख़ास मौक़ों पर आपको न ले जाऊँगा।

खलीफ़ा—मैं हर सूरत से आपकी आज्ञा के अधीन हूँ। जो हुक्म होगा उससे बाल भर भी इधर उधर न होगा।

शाह साहब--आपकी सआदतमंदी से यही उम्मेद है। अच्छा अब जाइये। परस्तान का मेवा आपको कमरे में मिलेगा। खलीफ़ाजी को इजाजत है। आपके और इनके सिवा और कोई न खाए।

नवाब—अगर हुकुम हो तो हुजूर के लिये थोड़ा सा भेज दिया जावे।

शाह साहब—फ़क़ीर सिवाय जौ की रोटी और नमक के कुछ नहीं खाता। बाल-बच्चे रखता नहीं, फिर मुझे भेजके क्या कीजियेगा।

× × ×

आज महल में खूब घमाघमी है। बेगम बहुत खुश हैं। मामूली नौकरों-चाकरों के अलावा कुछ लोग बाहर से आये हुए हैं। तीन औरतें महल में हैं और दो मर्द बाहर मियां करीम खां के पास। यह पाँच आदमी मेहमानों के तरीक़े पर हैं।

औरतों में से एक बहुत बुड्ढी है। दूसरी अधेड़ और तीसरी जवान है। बुड्ढी औरत से बेगम बहुत ही खिला-मिलाके साथ बातें कर रही हैं।

बेगम—खुदा की मेहरबानी से अब मेरे छुट्टन की उम्र कोई सत्रह बरस से कुछ ऊपर है।

वह औरत—साहबजादी की भी चौदहवीं साल की गिरह अब की माह रजब (मुसल्मानों का एक महीना) में लगाई गई है।

बेगम—हाँ वही तीन बरस का छुटाया बड़ाया है। छुट्टन तीसरा भरके चौथे में था जब यह पैदा हुई है।

मुग़लानी—मेरी आँखों में ख़ाक। पूरा जोड़ है।

चिट्ठी-नवीस—इसमें क्या शक है।

बेगम—(बुड्ढी औरत से) अच्छा तो भाई की जो मर्जी हो। नवाब की बरसी तो हो जाय।

चिट्ठी-नवीस—जी हाँ। इधर तो कुछ हो भी नहीं सकता। यही तो मजबूरी है।

बी मुग़लानी—दूसरी मुश्किल यह है कि छोटे नवाब का अठारहवाँ साल शुरू हो जायगा।

बेगम—हाँ इसे लो, ठीक तो कहा इसका मुझे खयाल ही न था।

बड़ी अन्ना—(वह बुड्ढी औरत बेगम की भांजी की अन्ना, धाय है) बेगम, इसमें बहुत देर होगी।

बेगम—तो फिर क्या करूँ?

बड़ी अन्ना—निकाह कर दीजिये। ब्याह जब जी चाहे कीजियेगा। छोटे नवाब को पायेबंद तो कर दीजिये। आपके भाई साहब को यहाँ का सब हाल मालूम है। नहीं मालूम कौन है जो सब हाल ख़त में लिख भेजता है। इसलिये तो उन्होंने जल्दी करके मुझे भेजा है।

बेगम—हाँ, भैया जो समझे हुए हैं वह बात बिलकुल ठीक है। मगर क्या करूँ। यह भी तो मुश्किल है कि बाप की बरसी नहीं हुई और बेटे की शादी रचाई जाय। दुनियाँ क्या कहेगी।

बड़ी अन्ना—दुनिया कुछ भी न कहेगी और कहे भी तो नाहक़ नाहक़ दुनिया के कहे से कुछ न होगा। देर करने से बात बिगड़ी जाती है। लड़का हाथ से निकल जायगा। लखनऊ की सोहबत ख़राब है। कोरट खुलने भी न पाएगा कि सब रुपया ऊपर से ऊपर उड़ जायगा। आपको ख़बर तक न होगी।

बेगम—सच कहती हो। इसमें कोई शक नहीं। मैं ऐसे ही आसार देखती हूँ। मगर मुझसे कुछ नहीं बन पड़ता। अच्छा ठहरो कल तक जवाब दूंगी।

यह बातें करके महलदार को हुक्म दिया गया कि दारोगा

साहब और दीवान जी आज तीसरे पहर को ड्योढ़ी पर हाजिर हों। मुझे कुछ बातें करना है।

थोड़ी देर के बाद यह जल्सा बरख़ास्त हुआ। वह तीनों मेहमान औरतें अपने अपने ठिकाने पर, जो उनके लिये तजबीज़ किया गया था, चली गईं।

अब बेगम साहिबा का ख़ास जल्सा है। ख़ुद बेगम हैं। चिट्ठी-नवीस हैं और एक और पुरानी नौकरानी है, छोटे नवाब की अन्ना हैं।

बेगम—सुनती हो अन्ना जी, अब देखो उधर से तक़ाज़े पर तक़ाज़े हो रहे हैं। यहाँ कोई सामान ही नहीं। छुट्टन की हरकतों की ख़बर बड़े भैया तक पहुँच गई।

बी मुग़लानी—ख़बर करने वाले भी ख़ूब हैं कि मुर्शिदाबाद ख़त लिख भेजते हैं। आख़िर इन मुओं को क्या फ़ायदा है।

अन्नाजी—अब ख़ुदा जाने क्या क्या लिख भेजा है जब तो उन्होंने घबरा कर इन लोगों को रवाना किया है। जो राहरवैया (रंग-ढंग) यहाँ का है, अब यह सब आँखों से देख जायँगे। देखिये क्या होता है। बड़ा ग़ज़ब हुआ।

चिट्ठी-नवीस—आख़िर हुआ ही क्या था जिसकी ख़बरें पहुँचाई जाती हैं। यहाँ तो बात का बतंगड़ बन जाता है। वह कौन रईसज़ादा ऐसा है जो अपने ज़माने में शौक़ीनी नहीं करता।

बेगम—और रईसजादे करते होंगे। हमारे घराने में अभी तक किसी ने कुछ नहीं किया था। रंडियां नौकर रहीं

मगर यह शोहदपन कभी नहीं होते। नशे-पानी का ज़िक्र हमारे यहाँ कभी न था। बड़े भैया ख़ुदा रक्खे, मौलवी हैं।

अन्नाजी—ऊही, न कभी हमने बड़े नवाब की ज़बानी इन बातों का ज़िक्र तक सुना। ख़ुदा जाने इन साहबज़ादे को क्या हुआ है। यह मुए नये नये आदमी जो घुस पड़े हैं उन्हीं की सारी हरकतें हैं।

चिट्ठी-नवीस—मैं तो सुनती हूँ छोटे नवाब ने सब बातें छोड़ दीं। कोई शाह साहब हैं। उनके शागिर्द हुए हैं। कोई नाम पढ़ते हैं। ख़ुरशैद को भी तो अलग कर दिया।

बेगम—मैं भी सुनती हूँ, ख़ुरशैद को निकाल दिया।

चिट्ठी नवीस—हाँ, उन दिनों में सोहबत का रंग बदला हुआ था। जब से छोटे मीर साहब आने लगे हैं उन्होंने ऐसे वैसे लोगों को निकाल दिया। ख़ुरशैद को भी उन्होंने निकलवाया।

मुग़लानी—मुई रंडियों का भी कुछ ठीक नहीं। सुना है मीर काज़म अली से लका-सका कर लिया।

बेगम—यह ग़लत है। यह सब लोगों की बनाई हुई बात है। काज़म अली को मैं ख़ूब जानती हूँ। वह इस तरह का लड़का नहीं है।

चिट्ठी-नवीस—हुज़ूर जो फ़र्माती हैं वह सही है। मगर मैं तो सुनती हूँ लोगों ने आँख से देख लिया।

मुग़लानी—मैंने भी सुना है।

बेगम—सब ग़लत। मुझे हरगिज़ यक़ीन ही नहीं।

अन्नाजी—बेशक ग़लत है।

चिट्ठी-नवीस—हुजूर से तो मेरी मजाल नहीं जो कुछ कहूँ मगर अन्नाजी साहब आपको क्योंकर यक़ीन हो गया।

अन्नाजी—हम उसको बचपन से जानते हैं। हमारे महल्ले का लड़का है। मेरे घर से दीवार बीच मकान है। अबकी मैं घर गई थी। जो बात असली थी सब अपने कानों से सुन आई हूँ।

मुग़लानी—तुमने तो कानों से सुना, लोगों ने आँख से देखा।

बेगम—बी मुग़लानी, इस बात में तकरार न करो। यह लोग हमारे जचे हुए हैं। इनसे ऐसी ख़ता नहीं हो सकती। खुदा को देखा नहीं, अक़्ल से पहचाना। काज़म अली की चाल-चलन मैं खूब जानती हूँ। यह सब लोगों की बनाई हुई बातें हैं। मुझे सब मालूम है।

चिट्ठी-नवीस—(*मुग़लानी से*) ऊही, ख़ाला, तुम्हें क्या हो गया है। बस जो हुजूर कहती हैं वही दुरुस्त है। हम लोग दो दिन के आए हुए। हमको क्या मालूम। अच्छा हुआ इसी बहाने से मुई रंडी तो निकल गई। छोटे नवाब उसके बहुत ही गिरवीदा (आसक्त) थे। अजब क्या है भैया ने इसी बहाने से उसको नवाब की नज़रों से गिराकर निकलवा दिया।

बेगम—एक रंडी छूट गई तो क्या हुआ। छोटे नवाब के पीछे और सैकड़ों बलाएँ लगी हुई हैं। उसका क्या इलाज ?

अन्नाजी—बच्चे की जान व माल का खुदा ही हाफ़िज़ (रक्षक) है। अब तो जालियों के फंदे में पड़े हैं।

बेगम—आप ख़राब होंगे। हमें क्या। मगर यह ममता

कमबख्त नहीं मानती। दिल जलता है। अब तो उन्होंने घर का आना-जाना भी बंद कर दिया।

अन्नाजी—आज आठवाँ दिन है। मा के सलाम तक को नहीं आए।

बेगम—वह न आएँ, जीते रहें। सलामत रहें। मुझे इसकी परवा नहीं। अब यह सलाह करो कि जो लोग मुर्शिदाबाद से आये हैं उनको क्या जवाब दिया जाय।

अन्नाजी—जवाब क्या दिया जाय। मैं तो जानती हूँ निकाह कर देना चाहिये।

बेगम—मेरी समझ में भी ठीक यही है।

चिट्ठी-नवीस—हुजूर कहीं ऐसा हो सकता है कि बाप की बरसी नहीं हुई और बेटे का निकाह हो।

मुग़लानी—ना साहब, बरसी के अन्दर यह कुछ नहीं हो सकता।

अन्नाजी—ऐ बी बैठो! लड़का हाथ से निकल जायगा। कोई खुशी से निकाह किया जाता है। यह भी एक मजबूरी की बात है।

बेगम—हाँ हाँ, यही मैं भी सोचती हूँ। अच्छा आज दारोग़ा साहब और दीवान जी साहब को बुलाया है। देखिये उनकी क्या सलाह है।

मुग़लानी—छोटे नवाब का इन्दिया तो लिया जाता। देखिये वह क्या कहते हैं।

चिट्ठी-नवीस—वह क्या कहेंगे। हमारी हुजूर को अख़्त्यार है जो चाहें करें। यह मालिक हैं।

अन्नाजी—मैंने एक दिन पूछा था। वह तो इन्कार करते हैं।

बेगम—मुझे भी यही खुटका है। अगर लड़के ने कहीं इन्कार कर दिया तो सब बात बनी-बनाई बिगड़ जायगी।

मुग़लानी—मैं तो जानती हूँ, इन्कार न करेंगे।

बेगम—मैं कहती हूँ जरूर इन्कार करेंगे।

अन्नाजी—मेरा भी यह ख्याल है।

बेगम—अच्छा। तो फिर ख़राबी के लच्छन हैं। यह आख़िरी तदबीर है।

× × ×

शाम को दारोग़ा साहब और दीवानजी पर्दे के पास तलब हुए। एकांत करा दिया गया मगर जिन लोगों को पराये भेद सुनने का शौक़ होता है या जिनका उन भेदों के मालूम होने में कुछ फ़ायदा होता है, वह किसी न किसी तरह सुन ही लेते हैं। जैसे इसी वाक़े से चिट्ठी-नवीस और मुग़लानी को ताल्लुक़ था। इस वजह से जब बेगम साहिबा अपने दो पुराने नौकरों से बात-चीत कर रही थीं, एक पास के कमरे के दरवाजे से लगी हुई वह दोनों औरतें हर्फ़ ब हर्फ़ (एक एक अक्षर) सुन रही थीं और उसकी तार-बर्क़ी बाहर लगी हुई थी।

बेगम साहिबा—कहिये, इस मामले में आपकी राय क्या है?

दारोग़ा साहब—हम लोग आपकी आज्ञा में हैं, जो हुक्म हो।

दीवान जी—जो ख़ुदा की मर्ज़ी वह सब से अच्छी।

बेगम—हाँ, मेरी यह राय है कि छोटे नवाब को किसी तरह फँसा देना चाहिये।

दारोग़ा जी—ठीक है।

दीवान जी—इससे बहतर क्या है।

बेगम—देखिये दारोग़ा साहब और दीवान जी साहब आप भी सुनिये। छोटे नवाब के आसार अच्छे नहीं हैं। मैं कहती हूँ अगर शादी हो गई तो कुछ न कुछ बोझ ज़रूर पड़ेगा।

दारोग़ा साहब—जी हाँ, मगर देखिये।

दीवान जी—क्यों।

बेगम—दारोग़ा साहब यह आपने निराशा का फ़िक़रा क्यों कहा?

दारोग़ा—हुजूर हमारी मालिक हैं और छोटे नवाब भी मालिक हैं। हम लोग पुराने नमक-ख्वार हैं। मगर अब हम देखते हैं कि इस सरकार के रंग ढंग बिलकुल बदले हुए हैं। खुदा आपको सौ-अस्सी साल सलामत रक्खे। हम लोगों को आपही के दम का सहारा है वरना...

दीवान जी—बस बस, आगे कहने की बात नहीं।

बेगम—मैं ख़ूब समझती हूं। जो आप लोगों की ज़बान पर नहीं आता वह मेरे दिल में है। वाक़ई यह सरकार स्वर्गीय नवाब के दम तक थी। साहबजादे से यह उम्मेद नहीं कि वह बाप के गद्दी-नशीन होकर बैठेंगे, लियाक़त पैदा करेंगे, चार अमीर रईसों से मिलेंगे। यह घर अब मुझे खुद मिटता नज़र आता है।

दारोग़ा—खुदा न करे।

दीवान जी—खुदा न करे।

बेगम—यह तो मैं खुद कहती हूँ जो आप लोग कहते हैं—(खुदा न करे) मगर खुदा को देखा नहीं अक्ल से पहचाना। आसार बुरे ही बुरे नज़र आते हैं।

दारोग़ा—साफ़-साफ़ यह है कि ज़ाहिर में तो कोई सूरत बहतरी की नज़र नहीं आती।

बेगम—अच्छा, अब इस शादी के बारे में लोग यह कहते हैं कि छोटे नवाब की मर्ज़ी लेना चाहिये।

दीवान—उनकी मर्ज़ी, क्या मानी। इसमें ख़ासकर हुज़ूर को खुदा के फ़ज़ल से अख़्तयार पूरा पूरा हासिल है। हुज़ूर उनके गोश्त व पोस्त की मालिक हैं।

दारोग़ा—हाँ, मर्ज़ी तो ले लेना चाहिये।

दीवान जी—क्या कहते हैं! उनकी मर्ज़ी क्या, हमारी हुज़ूर को अख़्तयार है।

दारोगा—आप नहीं समझते दीवान जी हम लोगों की शादी ब्याह की रस्में आप लोगों से अलेहदा हैं।

दीवान जी—इतना मैं भी खूब जानता हूँ। क्या मानी कि मुसलमानों में कौन सी रस्में ऐसी हैं कि बंदा जिनसे पूरी तरह से वाक़िफ़ नहीं है। मर्ज़ी लेना तो मामूली बहाना है। शादी ब्याह, या बेटी वाले या बेटे वाले मा बाप की मर्ज़ी पर निर्भर है।

दारोग़ा—मगर वह मामूली बहाना भी तो ग़जब का है। अगर कहीं लड़के ने इन्कार कर दिया तो कुछ नहीं हो सकता।

दीवान जी—अव्वल तो इन्कार न होगा इसलिये कि शादी ख़ाना आबादी। इससे बच्चे से बूढ़े तक सब खुश होते हैं। और

अगर वाक़ई ऐसा हुआ भी तो हम लोग उन्हें समझाएँगे।

बेगम—मैंने माना कि इन्कार न करेंगे मगर एक दूसरी बात और भी है, वह भी तो सुन लो और मुझे सलाह बताओ कि क्या करना चाहिये।

दारोग़ा—वह बतलाइये।

दीवान जी—हुजूर बतलायें, मेरे कान सुनने के लिए लगे हैं।

बेगम—बड़े भैया कहते हैं कि कुल जायदाद लड़की के मेहर (दहेज़) में लिख देना चाहिये।

दारोग़ा—हाँ, यह मामला मुश्किल है। अव्वल तो छोटे नवाब राज़ी न होंगे और अगर हों भी तो हम लोग इसको जायज़ (ठीक) नहीं रखते कि शौहर को बिलकुल जोरू के अख़्त्यार में दे दें।

दीवान जी—बेशक सरासर ख़िलाफ़ अक्लमन्दी है मगर हुजूर की मर्ज़ी क्या है।

दारोग़ा—जब मुझसे हुजूर ने खुद ही राय पूछी है तो जो कुछ मेरी राय थी वह मैंने कह दी। आइन्दा अख़्त्यार मालिक को है।

बेगम—दारोग़ा साहब, यह तो आपने ठीक कहा कि मर्द को बिलकुल औरत के अख़्त्यार में दे देना ठीक नहीं, मगर कुल जायदाद महाजनों के क़र्ज़ों में चली जाय उससे तो अच्छा है कि बीवी के क़ब्ज़े में रहे।

दीवान जी—इस नज़र से तो बिलकुल ठीक यही है कि कुल जायदाद बीबी के नाम कर दी जावे अगरचे वह इस जायदाद की मोहताज नहीं। इसलिये कि हुजूर के भाई साहब खुद बड़े

अमीर हैं। लाख दो लाख उनके लिये कोई बड़ी चीज नहीं।

बेगम—खुदा रक्खे, मेरा भाई करोड़पती है।

दीवान जी—खुदा ज्यादा करे, यही बात है।

दारोगा—यह सब कुछ सही मगर मैं अपनी राय पर क़ायम हूं। आइन्दा जो बेगम साहिबा की मर्जी हो।

बेगम—मैं कहती हूं, दारोगा साहब, आप इस मामले पर ग़ौर तो कीजिये।

दारोगा—अच्छा फिर मेरी राय क्या और मैं क्या। फ़ाल (शकुन) पर भरोसा कीजिये।

दीवान जी—और अगर फ़ाल में मना आया तो यह सब जायदाद मुफ्तख़ोरे महाजन लेंगे। लिहाजा मेरी यह राय है कि फ़ाल (इस्तखारा) बिलकुल न हो। मामला यों ही लटकने दिया जाय।

दारोगा—मैं दीवान जी की राय से इतफ़ाक़ करता हूँ। अव्वल तो मैं क्या और मेरी राय क्या।

बेगम—नहीं, आपकी राय क्यों नहीं। यह भी कोई बात है। छोटे नवाब का अब है कौन। पुराने नौकर बड़े बूढ़ों की जगह होते हैं।

इस बात पर दारोगा साहब और दीवान जी दोनों की आँखों में आँसू आ गये और दोनों ने मिलकर कहा—

दीवान और दारोगा—हुजूर खुद ही होशयार हैं। हम लोगों को छोटे नवाब का किस क़दर ख्याल है मगर शैतानों से बस नहीं चल सकता। ख़ुदा छोटे नवाब के जान माल आबरू की (रक्षा) करे। जातियों ने चारों तरफ़ से घेर लिया है।

दीवान जी—सुना है कोई शाह साहब हैं, उनके मुरीद (चेले) हुए हैं। उन्होंने कोई मंत्र बताया है, वह पढ़ते हैं।

दारोग़ा—ख़ैर मुरीद तो नहीं हुए हैं (पीरी मुरीदी हम लोगों में नहीं होती) मगर उसके जुल में फँस गये हैं। और वह शाह साहब कौन हैं, उनको भी जानते हो।

दीवान—कौन हैं, मैं नहीं जानता मगर सुना है कि बड़े करामाती हैं।

दारोग़ा—नाम है—करामत अली शाह। वह तुम्हारे महल्ले में फ़िदा हुसेन, फ़िदा हुसेन नामी एक साहब रहते थे, उनको जानते हो।

दीवान जी—हाँ हाँ कहिये। मैं ख़ूब जानता हूँ बल्कि उनकी सात पुश्त का हाल मालूम है। वही न जिनकी कनकौवे की दूकान थी चौपटिया पर?

दारोग़ा—हाँ हाँ, वही ख़ैर। उनका लड़का है। वह जो कंगले-महल की लौंडी से था।

दीवान जी—करामत।

दारोग़ा—जी हाँ। वही यह करामत अली शाह साहब हैं।

दीवान जी—अहा, तो यह करामत अली शाह साहब वही हैं। बौचित-लगन के लड़के मियां करामत।

दारोग़ा—जी हाँ ख़ुदा की क़ुदरत है। अभी चार दिन का ज़िक्र है मेरे पास चार आने महीना और खाने पर नौकर था।

बेगम—दारोग़ा साहब, क्यों यह मुआ करामत वही है ना जो उन दिनों आपके घर से ताँबे के बर्तन ले के भाग गया था।

दारोग़ा—हुजूर वही। हुजूर को खूब याद रहा।

बेगम—अजी हाँ याद को क्या हुआ। अभी दो दिन की बात है जब नवाब शिकार पर गये, आप भी साथ गये थे।

दारोग़ा—हुजूर हाँ, उसी ज़माने का ज़िक्र है।

बेगम—फिर आपने मुए को क़ैद न करवा दिया।

दारोग़ा—हुज़ूर क्या कहूँ। मियाँ फ़िदा हुसेन हाथ जोड़ने लगे; बिना लगन, उसकी मा क़दमों पर गिर पड़ी। महल्ले का वास्ता था, मैंने दावा नहीं किया।

दीवान जी—मगर वह तो सज़ायाफ़्ता है।

दारोग़ा—एक दफ़ा? तीन मर्तबा सज़ा पाई। आख़िर मर्तबा बारह बरस के बाद काले पानी से छूट के आया है। वहाँ से आते ही उसने यह फ़ितूर फैलाए। शाह साहब बन बैठा। शैतान कहीं का। हमेशाँ का बदमाश। फ़क़ीरी जामे में यह ऐसे ऐसे बेहूदा काम करता है। देखिये परलोक में मुँह काला होगा, बल्कि दुनिया में भी भला न होगा। मगर यह तो, जाहिल, बे-पढ़े, बोड़म बहुत से मोतक़िद (क़ायल) हो गये।

दारोग़ा—मोतक़िदों की कुछ न पूछिये। सुबह को दरबार लगता है। खलक़त भेड़ियाधसान है।

बेगम—यह उन लोगों से कोई नहीं कह देता कि यह मुआ चोर उठाईगीरा है। उसको आता ही क्या होगा। यह लोग क्यों मुरीद होते हैं?

दारोग़ा—हुज़ूर ठीक फ़र्माती हैं। मगर वह अपने फ़न में एक ही है।

बेगम—किस फ़न में।

दारोग़ा—जालसाज़ी।

दीवान—छै इल्म छत्तीस फ़न सुने थे। यह सैंतीसवां फ़न जालसाज़ी आज दारोग़ा साहब से मालूम हुआ।

दारोग़ा—दीवान जी साहब, आप अगले वक्तों के आदमी हैं। आपको क्या मालूम। जालसाज़ी बहुत बड़ा फ़न है। फ़न कैसा, अब तो इल्म के रुतबे पर पहुँच गया है।

बेगम—अच्छा, अब मेरी नमाज़ का वक्त हो गया, मैं तो जाती हूँ। आप लोगों का इंदिया मुझको मालूम हो गया। इन लोगों को जो मुर्शिदाबाद से आए हैं, अपने आप जवाब दूँगी। बल्कि मेरी राय तो यह है कि मैं खुद कुछ दिन के लिये मुर्शिदाबाद चली जाऊँ। वहाँ जाकर भैया से सलाह मशवरा करके जो कुछ बन पड़ेगा करूँगी।

दीवान और दारोग़ा—हुज़ूर यह बहुत ही मुनासिब है। हुज़ूर खुद ही तशरीफ़ ले जाएँ।

बेगम—हाँ, फिर क्या किया जाय। बग़ैर इसके कुछ बन नहीं पड़ती। अच्छा तो कल मास्टर से एक तार लिखवाके दे दो। मैं परसों शाम की रेल में रवाना हो जाऊँगी।

दारोग़ा—बहुत खूब।

बेगम साहिबा के उठ जाने के बाद दारोग़ा और दीवान में देर तक बातें हुआ कीं।

× × ×

दिले नाशाद बहुत शाद हुआ,
लो मुबारक हो घर आबाद हुआ।

ज़ुल्म की बानिया मुबारक हो,
ज़ोजे सानिया मुबारक हो।
यह सब यारों की दिल्लगी थी,
खांसी भी गई हकीम जी भी।

महरी—हकीम साहब मुबारक हो। यह काग़ज़ लीजिये। स्टांप पर लिखवा कर रजिस्ट्री करा दीजिये। निकाह कर लीजिये।

हकीम साहब—मगर निकाह की शर्तों को तो देखो। हर तरह से बेगम साहिबा ने मुझी को पाबंद किया है।

महरी—कैसी बेवक़ूफ़ी की बातें करते हो, हमको हर तरह से पाबंद किया है। और वह तुम्हारी पाबंद होती हैं। देखो तो क्या खास बात है।

हकीम साहब—मगर यह क्या लिखा है कि मेरे पहले शौहर की कोई औलाद और वारिस नहीं हैं। और यह छोटे नवाब कौन हैं।

महरी—यही तो कहती हूँ। तुम्हें आम खाने से मतलब है या पेड़ गिनने से। कुछ तो उन्होंने इसकी राह रक्खी होगी। इतना तो मुझे मालूम है कि जब से छोटे नवाब शराब पीने लगे, बेगम को उनसे नफ़रत हो गई। अब वह अपना अलग घर करती हैं। छोटे नवाब को एक कौड़ी तो देंगी नहीं। और क्यों दें? जायदाद कुल उनकी है, छोटे नवाब के बाप की नहीं है।

हकीम साहब—हाँ तो अब समझ में आया।

महरी—अच्छा तो बस काग़ज़ पर दस्तखत करो जल्दी करो।

महरी हकीम साहब के साथ आज इस बेतकल्लुफ़ी से बातें कर रही है कि बड़े की इज्जत का भी कुछ ध्यान नहीं है। मगर हकीम साहब खुश हैं। आज तमाम मनसूबे पूरे हो गये। अब क्या है, निकाह हुआ जाता है। दम भर के लिये इज्जत का लिहाज न सही। महरी इस वक्त अगर गालियां भी दे तो जेबा है। इतना बड़ा काम किया। सोने की चिड़िया फँसा दी। बेगम साहिबा को निकाह पर राजी कर दिया। अभी परसों तक की बात चीत में यह मामला तय न हुआ था। आज तय हो गया। बेगम साहिबा के मेहर का काग़ज़ हाथ में है। इससे बढ़कर और क्या सबूत होगा।

हकीम साहब—यह तो सच है मगर शर्तें बहुत ही कड़ी हैं।

महरी—कड़ी हैं तो जाने दो।

यह 'जाने दो' इस बेरुखी से कहा कि ख्याल ही ख्याल की दुनिया में हकीम साहब के सब मनसूबे ख़ाक में मिल गये।

हकीम साहब—नहीं जाने क्यों दो। बेगम साहिबा को समझाओ।

महरी—अब मेरे समझाए नहीं समझाई जातीं। किसी वक्त आप खुद समझाइयेगा।

हकीम साहब—(मुस्कराकर) अच्छा ख़ैर। ख़ातिर है।

एलो खुदा की क़ुदरत। कहाँ हकीम साहब और कहाँ बेगम साहिबा और कहाँ यह लफ्ज़ 'जुरुआ'। बेगम साहिबा, जिनकी सरकार में आज खी हकीम के ऐसे कई आदमी पड़े हैं, हकीम साहब की जुरुआ बनी जाती हैं। फिर हकीम साहब क्यों खुश न हों।

हकीम साहब—और यह पचीस हज़ार का मेहर और जब तक अदा न हो, मेरी कुल जायदाद रहन रहे। यह मसौदा किसने लिखा है। बड़ा क़ानूनी मालूम होता है।

महरी—लिखा किसने है। क्या लिखना नहीं पहचानते हो। उन्हीं के हाथ का लिखा हुआ है।

हकीम साहब—और यह क्या शर्त लिखी है कि निकाह के वक्त दो हज़ार रुपया नक़द बतौर मेहर मुअज्जल दिया जाय। यह तो मुश्किल है।

महरी—मैं क्या जानूँ, लिखा होगा। और जो लिखा है करना पड़ेगा। मुश्किल हो चाहे सहज हो।

हकीम साहब—क्या ज़बरदस्तियाँ हैं। करना पड़ेगा।

महरी—नहीं तो सोने की चिड़िया को फँसाना क्या सहज है।

हकीम साहब—और यह निकाह होगा कब। जब मुर्शिदाबाद से होकर आयँगी।

महरी—मुर्शिदाबाद कौन जाता है।

हकीम साहब—बेगम।

महरी—फिर तुम से निकाह कौन करेगा। जुमे (शुक्र) को तो निकाह होगा।

हकीम साहब महरी से तो यह घुल मिलके बातें हो रही थीं और नबीबख्श पीनक की हालत में बैठे थे। महरी के इस फ़िक़रे ने उन्हें चौंका दिया, 'जुमे को तो आपके साथ निकाह होगा'।

नबीबख्श—(हकीम साहब से) कहीं जुम्मे को निकाह न कीजियेगा, कह देता हूँ।

हकीम साहब—क्यों ?

नबीबख्श—बस कह दिया। एक आध बात मेरी मान लिया कीजिये। बूढ़ा आदमी हूँ। यह बाल कुछ धूप में सफ़ेद किये नहीं हैं।

हकीम साहब—आखिर कुछ वजह भी।

नबीबख्श—(महरी से) ले देखती हो। जरा सी बात कही। मियां नहीं मानते। जुमे को निकाह न कीजियेगा।

महरी—आखिर कोई सबब भी ?

नबीबख्श—और जो सबब न कहने का हो।

महरी—कुछ तो कहो।

नबीबख्श—अच्छा जाने दो। मैने तो एक बात कह दी। अब चाहे कोई माने या न माने।

हकीम साहब—यही तो पूछते हैं कि क्यों।

नबीबख्श—अर्ज़ तो किया कि जुमे को न कीजियेगा। और दिन नही हैं क्या।

हकीम साहब—आखिर कोई वजह भी बताओगे।

नबीबख्श—और जो वजह बताने की न हो।

महरी—वजह तो बतानी पड़ेगी।

नबीबख्श—नहीं बताते। कोई ज़बरदस्ती है।

हकीम साहब—(किसी क़दर नाराज़ होकर) बताते क्यों नहीं ? क्या वजह।

नबीबख्श—बस यही वजह है। न कीजियेगा।

हकीम साहब—लाहौलवला कुव्वत।

महरी—बुड्ढा कुछ सठिया गया है। बताता क्यों नहीं। कहाँ तो हकीम साहब और महरी में वह मज़े मज़े की बातें हो रही थीं कहाँ मियां नबीबख्श ने ऐन हत्थे पर टोक दिया। यह बात दोनों को बुरी लगी। दोनों बिगड़ बिगड़ कर पूछते थे और मियां नबीबख्श अपनी कहे जाते थे और खुद भी बिगड़ते थे। आखिर बड़ी हुज्जत और तकरार के बाद यह भेद खुला कि मसल मशहूर है, "जुमे को निकाह, हफ्ते को तलाक़" जब यह भेद खुला तो हकीम साहब और महरी दोनों खूब क़हक़हा मार कर हँसे।

नबीबख्श—(ज़रा खिसियाने होके) मैं सच कहता हूँ। हँसी की बात नहीं। अगले आदमी जो कह गये हैं उसको पत्थर की लकीर समझना चाहिये।

हकीम साहब—ले बस बस अपनी नसीहतगी रहने दीजिये।

नबीबख्श—मेरी मजाल है कि आपको नसीहत करूँ। एक बात सुनी थी, कहदी। अपने जाने तो अच्छी बात कही। अब आप उसे मानते नहीं। यहाँ हज़ारों दफ़े की आज़माई हुई है।

हकीम साहब—तो कोई हज़ार निकाह आपने जुमे को होते देखे होंगे और सब में तलाक़ हो गया।

नबीबख्श—अब आपसे हुज्जत कौन करे। इसके बाद फिर मियां नबीबख्श अपनी धेले की अफ़ीम के मज़े लेने लगे।

हकीम साहब और महरी में बात चीत शुरू हुई।

हकीम साहब—(महरी से) यह तो कहो बेगम मुर्शिदाबाद न जाएँगी।

महरी—कैसी नादानों की बातें करते हो।

हकीम साहब—तो साफ़ कहो।

महरी—रेल के स्टेशन तक सब के दिखाने को जायँगी। रेल में सवार होंगी। बाराबंकी से उतर पड़ेंगी। तुम्हारे साथ सवार होकर चली आएँगी।

हकीम साहब—आहा! यह तदबीरें हैं। तो कहती क्यों नहीं?

महरी—कहें किससे, तुमतो एक़रारनामे में हील हुज्जत निकालते हो।

हकीम साहब—तो बाराबंकी तक मुझे भी जाना होगा।

महरी—आप ही जाओगे अपनी ग़रज़ को।

हकीम साहब—और बाराबंकी से आने के बाद निकाह हो जायगा।

महरी—हाँ हाँ क्योंकर कहूँ।

हकीम साहब—और यह काग़ज़ कब होगा?

महरी—यह काग़ज़ आज होगा और कहा है कि इस काग़ज़ को फेरती लाना। जब तुम रजिस्ट्री कराके भेजोगे तो इससे मिलान होगा। देखो कोई बोल न रह जाय, न इधर का उधर होने पाए नहीं तो मैं नहीं जानती। वह बेगम हैं अपनी ज़िद की। ज़रा सी बात पर तो उन्होंने औलाद सी चीज़ को छोड़ दिया।

हकीम साहब—हाँ तो कहो, यह बेटे से बेज़ार (नाराज़) क्यों हो गईं?

महरी—ले बस इसी बात पर तो मुझे गुस्सा आता है। यह सब तुम्हारे ही बिस बोये हुए हैं।

हकीम साहब—मेरे क्या बिस बोये हुए हैं?

महरी—तुमने जादू किया और ऐसा जादू किया कि बीबी तुम्हारा ही पाठ पढ़ने लगीं। अरे तुम ग़जब के आदमी हो।

हकीम साहब—(हँस के जैसे उन्होंने जरूर जादू किया और उसी का यह असर था) भला मैं क्या जानूँ जादू टोना।

महरी—तो कुछ खिला दिया होगा।

हकीम साहब—उन्होंने खाया क्या मेरे हाथ से।

महरी—अभी उसी दिन जब तुमने मोखे में से इलायचियाँ दी हैं, वर्क़ लगी हुईं। बेगम ने एक इलायची मेरे सामने तोड़ के खाई। इत्र तुम्हारा दिया हुआ, भला हमसे क्या कहते हो। इलायचियां, इत्र, हार, फूल सब चीजें पढ़ी हुई थीं। जब तो दीवानी हो गईं।

हकीम साहब—महरी भई ख़ूब पहचाना। इलायचियां तो बेशक पढ़ी हुई थीं।

महरी—मैं तो ख़ुद कहती हूँ। तुम एक बिस की गाँठ हो। है है अरे इन मर्दों को भी क्या क्या फंद फ़रेब आते हैं। न भई मैं तो आज से किसी के हाथ की कोई चीज़ न खाऊँगी।

बी महरी उम्र से उतरी हुई थीं मगर अब तक यह गुमान था कि ऐसा न हो कोई कुछ पढ़कर खिलादे।

औरत की फ़ितरत (प्रकृति) में फ़रेब है यह हर वक्त और हर हालत में यही चाहती हैं कि कोई हम पर फ़रेफ़ता हो (मरे) औरत मार खाती है तो दाँव पर कि कोई उस पर मरने लगे।

यह हविस (कामना) मरते दम तक साथ जाती है कि कोई हम पर आशीक़ हो। हम उसको चोट पहुँचाएँ। जब औरत यह चाहती है कि हमें कोई चाहे, क्या-क्या ख़ुशामद करती है—

"किस खुशामद से वह दिल लेते हैं देख कोई,
हुस्न के हिफ्ज़े-मरातिब का भी कुछ पास नहीं।"

औरत की हालत को तजुर्बेकार लोग समझ के क्या क्या मजे उड़ाते हैं। औरत पर यह साबित कर देना, चाहे फ़रेब से ही क्यों न हो, कि हम तुम पर आशिक़ हैं—अजीब चलता हुआ फ़िक़रा है। एक बार आशिक़ी साबित करके उम्र भर के लिये माशूक़ बन जाना चाहे तो हमारी बताई हुई तरकीब को काम में लावे। पर इतना याद रहे कि बाज़ारी औरतों पर यह फ़िक़रा बहुत कम चलता है। इसलिये कि वह खुद खिलाड़िन होती हैं और यही फ़िक़रा उनका मँजा हुआ होता है। फिर दूसरे का फ़िक़रा उस पर क्या चले।

दस बजे हकीम साहब गाड़ी पर सवार होकर कचहरी गये। स्टांप ख़रीदा। इक़रारनामे की नक़ल लेते गये थे। उसे स्टाम्प पर साफ़ कराया और रजिस्ट्री करा दिया।

कुलसुम बेगम बाराबंकी से वापिस आई। हकीम साहब साथ ही साथ थे। अमीनाबाद में एक मकान पहले ही से ले रक्खा था। वहीं उतरे। बी महरी और दो औरतें और उनके साथ रहीं।

दूसरे दिन जुमा (शुक्रवार) था। नबीबख़्श का कहना एक न चला। निकाह की तैयारी हुई। हकीम साहब भारी जोड़ा तुलवाँ, कोई डेढ़ हज़ार की मालियत का और एक नथ बड़े-बड़े मोतियों की लाये। शाम से हकीम साहब के कई ख़ास दोस्त

जमा होने लगे। नो बजे जनाब तशरीफ़ लाये। वह कुलसुम बेगम साहब की तरफ़ से वकील हुए। हकीम साहिबा के एक दोस्त मौलवी साहब उनकी तरफ़ से वकील हुए। निकाह के मौक़े पर दो हजार रुपये और इक़रारनामा रजिस्ट्रीशुदा कुलसुम बेगम को दिया गया। सीशा पढ़ा गया। मुबारक सलामत होने लगी। जनाब को किश्ती दी गई। दोस्तों में पान इलायची इत्र वगैरह बाँटा गया। इसके बाद दावत हुई। सब ने खाना खाया और अपने अपने घर को रुखसत हुए। चलिये हकीम साहब का दूसरा घर आबाद हो गया।

"जिगर ओ दिल हदफ़े नाव के बेदाद रहें,
दोनों पहलू मेरे आबाद रहें शाद रहें।"

मजहबी क़ानून के मुताबिक़ सात दिन रात हकीम साहब वहीं रहे। इसी बीच में अपने मकान के पास एक मकान किराये पर लेके कुलसुम बेगम को वहाँ उठा ले गये। होते होते हकीम साहब की ब्याहता बीवी को भी खबर हो ही गई कि हकीम साहब ने दूसरा निकाह किया है। बड़े मजे की लड़ाई हुई। तमाम महल्ले में धूम मच गई। जिन भेदों को छिपाना चाहते थे वह सब खुल गये।

× × ×

छोटे नवाब साहब बहुत ही फ़िक्र में हैं। तहवील में सिर्फ दो रुपये और हैं। बेगम साहिबा मुर्शिदाबाद चली गई। तनख्वाह बगैर उनकी मुहर और दस्तखत के वसूल नहीं हो सकती।

बंक में जो रुपया छोटे नवाब का जमा है, उसमें से एक हब्बा भी तब तक मिल नहीं सकता जब तक बालिग़ न हो जायँ। कुल

खर्च बेगम साहिबा देती थीं। उन्होंने हाथ रोक लिया और चलते वक्त एक पैसा छोटे नवाब को नहीं दिया। मामूली खर्चों के लिये दीवान और दारोग़ा से कहती गईं। खाने पीने की तरफ़ से तो इत्मीनान है मगर सिर्फ़ नवाब के लिये। एक थाल खासे का महल से आ जाया करेगा। यहाँ साठ सत्तर आदमी जान निछावर करने वाले नौकर हैं। यह क्या खाएँगे और कैसे खिलाएँगे। मगर खाने पीने के सिवा और जरूरतें जो जवान अमीरज़ादों को पेश हुआ करती हैं जैसे शराब, नाच-रंग, फ़र्मायशें, इनाम-इकराम, नज़र-भेंट, बेज़रूरत खरीद-फ़रोख्त—यह सब फ़िज़ूल मदें अकसर वैसे ही हो जाया करती हैं। उसके लिये रुपया कहाँ से आवे। क़र्ज़ मिल नहीं सकता क्योंकि छोटे नवाब अभी नाबालिग़ हैं। उनकी क़ानूनी वलिया (अभिभावक) यानी बेगम साहिबा तशरीफ़ नहीं रखतीं। और अगर मौजूद भी होतीं तो क्यों देतीं। नवाब साहब इन फ़िक्रों में कि इतने में ख़लीफ़ा जी आये। नवाब साहब को फ़िक्र में देख कर चिंता के कारण का पता लगाया।

ख़लीफ़ा—क्यों यह हुज़ूर आज फ़िक्र में क्यों हैं ?

नवाब—जी कुछ नहीं।

ख़लीफ़ा—नहीं कुछ कैसा ? मालूम होता है कि खर्च के लिये कुछ फ़िक्र है। क्या बेगम साहिबा कुछ न दे गईं।

नवाब—एक हब्बा नहीं दे गईं।

ख़लीफ़ा—वल्लाह ग़ज़ब किया। आपकी ज़रूरतों का कुछ ख्याल न किया। दीखता है कि कुछ नाराज होकर गईं हैं।

नवाब—बहुत दिनों से नाख़ुश हैं। इस बीच में मैं कई बार

सलाम को गया, मुँह फेर लिया। जब मैंने देखा कि वह सलाम नहीं लेती, मैंने भी महल में जाना छोड़ दिया। अब गई तो मिलके भी न गई।

खलीफ़ा—फिर और क्या किया जाता। यह दीवान जी और दारोगा साहब की कारस्तानियाँ हैं। यह लोग तो ऐसा चाहते हैं कि मा बेटों में दुश्मनी हो जाय तो कुछ अपना मतलब निकले। उन्हीं लोगों ने भड़काया होगा।

नवाब—किसी ने भड़काया हो, मैं परवा नहीं करता।

खलीफ़ा—हुजूर हमेशा से निश्चिन्त हैं। मगर बेगम साहिबा को यह न चाहिये था। अच्छा अब फ़िक्र न कीजिये। आखिर मैं किस लिये हूँ। कोई न कोई बन्दोबस्त हो ही जायगा।

नवाब—बंदोबस्त ख़ुदा जाने कब होगा। यहाँ तहवील में सिर्फ दो रुपये और बाक़ी हैं। इस वक्त का खर्च क्योंकर चलेगा।

खलीफ़ा--इस वक्त कहिये क्या चाहिये।

नवाब—कम से कम तीस तैंतीस रुपये की जरूरत है। यह सब लोग खाएँगे क्या। फिर जिन लोगों को रोजीना दिया जाता है उसकी क्या सबील हो।

हमारे नवाब साहब की सरकार में नौकरों की तन्ख़ाहें रोज़ाना तक़सीम हुआ करती थीं। वजह यह थी कि नौकरों में वह लोग शामिल थे जिनके साथ एक न एक इल्लत जरूर लगी हुई था। कोई चंडू पीता था, किसी को मदक से शौक़ था। शराब तो मामूली तौर से सब के सब पीते थे। मगर इसका खर्च नवाब साहब की फ़ैयाज़ी (उदारता) के जिम्मे था। बल्कि

नौकरी की शर्तों में एक शर्त ही यह थी। कोई नौकर जरूरत या बेजरूरत जितनी शराब माँगे, उसको दी जावे। और नौकरी की शर्त यह थी कि नौकर हरवक्त बदहोश रहे ताकि किसी को नवाब के सामने अँगड़ाई या जम्हाई लेने का इत्तफ़ाक़ न हो, जिससे नवाब का नशा किरकिरा हो जाय क्योंकि सरकार को उसमें ख़ुद मज़ा आता था। रोज़ाना शराब का ख़र्च, शराब देसी, पचीस बोतलें, फ़ी बोतल नौ आना; शराब बरांडी वलायती ग्यारह बोतलें, फ़ी बोतल साढ़े चार रुपये। ज़रूरत के मुताबिक़ दो तीन बोतलें शाम-पेन की भी आ जाती थीं।

ख़लीफ़ा—रोज़ीना वग़ैरह दे दिया जायगा। ए लीजिये मेरे पास यह पचास रुपये का नोट है। इस वक़्त ख़र्च किया जाय, फिर देखा जायगा।

इधर ख़लीफ़ा ने जेब से नोट निकाला, उधर शैदी मक़सूद ने लपक के हाथ से नोट लिया और बाज़ार को चलता हुआ। नोट भुनाया और ज़रूरी चीज़ों को ख़रीदने में लग गया। छोटे नवाब की सरकार का फ़ाक़ा आज ख़लीफ़ा ने तुड़वाया। वरना यह दिन सूखा ही गया होता।

× × ×

आज शाम को करामत अली शाह साहब से लंबी मुलाक़ात हुई। बेगम साहिबा के मुर्शिदाबाद जाने और कुल हालत और बातों की ख़बर गुर्गों की मारफ़त पहले ही शाह साहब के पास पहुँच चुकी थी।

शाह साहब—यह सब घनश्याम जोगी की कारस्तानी है, भासा दोस्त दुश्मन हो जाय। ख़ैर। दुश्मन अगर ताक़तवर है

तो निगहबान उससे ज़्यादा ताक़तवर है। आप घबराइये नहीं। खर्च का बंदोबस्त हो जायगा। सब्ज़-क़बा सच्ची आशिक़ है। उसको आपका कुल हाल मालूम है। आपको खबर नहीं और वहाँ तिलस्मी बक्स में रुपया पहुँच गया है। यहाँ से जाके ले लीजियेगा। आपको किसी तरह की तकलीफ़ न होने पाएगी। ख़ातिर जमा रखिये। और आपके वास्ते शराब सीधी परिस्तान से आया करेगी। वही पिया कीजिये और जुमे-रात को सिवाय वहाँ की शराब के और कोई शराब न पिया कीजिये।

नवाब—बेहतर है। वाक़ई वालिदा साहिबा की बेरुख़ी इस वक्त मेरे खिलाफ़ हुई। मुझसे हुक्म होता है कि कुल जायदाद छोटे मामूं साहब की लड़की को यानी जिससे मेरी सगाई होने को है, मेहर में लिख दूँ। अगरचे मैंने साफ़ इन्कार नहीं किया मगर फिर भी मेरा जी नहीं चाहता कि ऐसा किया जाय। पुरखों की जायदाद औरत के नाम लिख देना कोई अक़्ल की बात है?

शाह साहब—वाक़ई आपकी राय ठीक है। अगरचे इस जायदाद की कोई हक़ीक़त नहीं, खुदा ने आपको अटूट दौलत दी है, लेकिन यह बात न सिर्फ़ समझ के खिलाफ़ है बल्कि सब्ज़-क़बा के भी खिलाफ़ होगी। एक बात, नवाब साहब, मैं आपसे साफ़ साफ़ कहे देता हूँ। सब्ज़-क़बा को यह हरगिज़ गवारा न होगा कि आप किसी औरत से निकाह करें।

नवाब—मुझे खुद कब गवारा है। सब्ज़-क़बा इस वक्त में मेरे काम आईं तो मैं भी उनके साथ किसी क़िस्म की बेमुरव्वती न करूँगा।

ख़लीफ़ा—आपसे इसकी उम्मेद भी हरगिज़ नहीं है।

शाह साहब—हाँ, यह तो इत्मीनान है मगर अफसोस है बेगम साहिबा पर विरोधियों ने अपना पूरा क़ब्ज़ा कर लिया। अच्छा मुर्शिदाबाद से आने दीजिये, इसकी भी कुछ फ़िक्र की जायगी।

नवाब—मैंने तो तमाम बातें आपके सुपुर्द कर दी हैं। जैसा मुनासिब हो वह कीजिये।

शाह साहब—जैसी खुदा की मर्ज़ी।

खलीफ़ा—बेगम साहिबा एक तरफ़। दारोगा साहब और दीवान जी यह पुराने नौकर सब आपके ख़िलाफ़ हो गये हैं। अंदर से बाहर तक आपका दोस्त नज़र नहीं आता।

शाह साहब—भाई, यह सब उसी मर्दूद जोगी का बिस बोया हुआ है। अच्छा ज़रा एक काम तो करना। बेगम साहिबा जहाँ सोती हैं, पलंग के सिरहाने पश्चिम की तरफ़ जो पाया है, उससे पौने दो बालिश्त नापकर एक बालिश्त भर ज़मीन खोदियेगा। वहाँ से जो कुछ निकले, मेरे पास ले आइये। फिर जैसा मैं कहूँगा वह कीजियेगा।

नवाब साहब—बहुत अच्छा।

शाह साहब—खूब याद आया। आपके महल में कोई औरत है—चेचक-रू, ज़रा लम्बी सी सांवली सी। कोई चालीस के क़रीब उम्र होगी। उसके दाहिने गाल पर एक बड़ा सा मस्सा है।

नवाब—और तो कोई नहीं। यह हुलिया तो मेरी अन्ना का है।

शाह साहब—आह! वह आपकी अन्ना है! जभी मैं देखता था कि आपके उसके बीच में एक दूध का दरिया बाधक है। मगर

वह तो बचपन से खास तौर से घनश्याम जोगी की नज़र में (कृपा-पात्र) है। खुदा की क़ुदरत देखिये कि दुश्मन की गोद में दोस्त की परवरिश करता है।

नवाब—वह तो मुझको बहुत चाहती थी।

शाह साहब—चाहती थी और चाहती है मगर जब वह बिचारी अपने बस में भी हो। अब खुदा के वास्ते उससे होशयार रहियेगा। उसके हाथ की कोई चीज़ न खाइयेगा बल्कि मेरी राय तो यह है कि अब आप कोई चीज़ किसी के हाथ की न खाइयेगा। खासकर जो चीजें महल से आएँ।

नवाब—इंशा अल्लाह, एहतियात की जायगी।

शाह साहब—मुझे ऐसा मालूम होता है कि अब कुछ ही दिन तक आप लखनऊ में और हैं। आपको साल दो साल के लिये बाहर चलना होगा। आप फ़क़ीर के शागिर्द हुए हैं। कुछ दिनों फ़क़ीर के साथ भी फिर लें ताकि दुनिया की ऊँच नीच से आपको इत्तला हो जाय।

नवाब—बहुत मुनासिब। जब हुक्म हो।

शाह साहब—इंशा अल्लाह, जब उसका वक़्त आएगा, आपसे कहा जायगा।

नवाब—मगर इतना तो पहले से कह दीजिये कि सफ़र के लिये किस क़िस्म की तैयारियाँ की जाएँ।

शाह साहब—सफ़र की तैयारियाँ दुनियादार लोग करते हैं। दरवेशों को उसकी ज़रूरत नहीं। आप खुदा की क़ुदरत का तमाशा देखिये। खुदा चाहे तो जंगल में मंगल हो जायगा। सिर्फ़ मेरे साथ हो लीजियेगा।

खलीफ़ा—मगर इतनी अर्ज़ ज़रूरी है कि मुझको भी इस सफ़र में साथ ले चलियेगा।

शाह साहब—वाह कहीं ऐसा हो सकता है। आपको ज़रूर ले चलेंगे। बल्कि पंद्रह बीस आदमी और भी साथ होंगे। मगर वही जिनको मैं कह दूँगा।

नवाब—बे आपकी मर्ज़ी के कोई नहीं जा सकता। मगर खलीफ़ा के लिये तो मैं खुद आपसे अर्ज़ करता।

शाह साहब—कुछ आपके कहने की ज़रूरत नहीं। यह तो ज़रूर ही जायँगे। अच्छा यह मामला तय हो चुका। एक बात और ध्यान देने के क़ाबिल है। वह यह कि अगरचे सब्ज़-क़बा ख़र्च की ज़िम्मेदार हुई हैं, लेकिन यह हमें अच्छा नहीं मालूम होता। यों सब्ज़-क़बा आपको लाखों दे दें मगर रोज़ के ख़र्च के लिये उनसे मांगना या लेना शर्म की बात है।

खलीफ़ा—शर्म और आबरू का तकाज़ा तो यही है।

शाह साहब—अच्छा फिर क्या हो।

खलीफ़ा—हुक्म हो तो कोई महाजन ठहराया जाए।

शाह साहब—कमबख्त सूदख़ोर महाजनों का मेरे सामने नाम न लीजियेगा। सूद लेना और देना मेरी राय में दोनों बातें बराबर हैं। कोई न कोई बंदोबस्त हो जायगा। खुदा रोज़ी देने वाला है। जो जिसका ख़र्च है, खुदा उसे ज़रूर पहुँचाएगा।

नवाब साहब—ज़ाहिर में तो कोई सबील नहीं है।

शाह साहब—अच्छा आपका रोज़ का ख़र्च क्या है। कुछ अंदाज़ा बतलाइये।

नवाब साहब ने खलीफ़ा जी की तरफ़ इशारा किया।

खलीफ़ा—ए हुजूर, यहीं कोई पच्चीस रुपये रोज़ का ख़र्च है।

शाह साहब—अच्छा पच्चीस वह और पच्चीस हमारी तरफ़ से ख़ैरात वग़ैरह के लिये। इस तरह पचास रुपये रोज़ फ़क़ीर देगा। मगर इससे एक हब्बा भी ज्यादा न हो। इसलिये कि ख़ुदा ज्यादा ख़र्च को पसंद नहीं करता और न इस रक़म में से एक हब्बा दूसरे दिन के लिये रखियेगा क्योंकि यह ख़ुदा पर भरोसा रखने के ख़िलाफ़ है। बाबा जान पचास रुपया रोज़ाना थोड़े नहीं हुए। ख़ुदा का शुक्र कीजिये।

नवाब—इस क़दर भार आपके ऊपर डालना मेरी हिम्मत गवारा नहीं करती।

शाह शाहब—मरहबा (फिर क़हक़हा लगाके) बाबा जान फ़क़ीर क्या अपने पास से देगा। देनेवाला और ही कोई है। परलोक के ख़ज़ाने से आपके लिये पचास रुपये रोज़ मन्ज़ूर हुए हैं। लीजिये खाइये, उड़ाइये। ख़ुदा की राह पर दीजिये।

नवाब—मैं इस क़ाबिल कहाँ था कि मुझको पचास रुपये बेमाँगे मिलें। वल्लाह ज़िंदगी भर में किसी का अहसान न उठाऊँगा। मैंने पुरखों की जायदाद को भी छोड़ा। मुझे ज्यादा की ज़रूरत नहीं है।

शाह साहब—(हिम्मत की तारीफ़ करके) अच्छा तो अब-की जुमेरात—आज कौन दिन है—(सोमवार, मंगल, बुध) सिर्फ़ दो दिन बीच में हैं। मैं आपको पचास रुपये रोज़ का नुस्ख़ा बताऊँगा। मगर आज ही रात से जो नाम (मंत्र) बताऊँ उसे पचास बार सोते वक्त पढ़ लीजियेगा। इस तीन दिन के अरसे में जो कुछ अध्यात्म-जगत में आप देखें उसे जैसा का तैसा मुझसे कह दीजियेगा।

नवाब—बहुत अच्छा।

शाह साहब—अच्छा। अब रात ज्यादा आ गई है। जाइये, आराम कीजिये।

× × ×

नवाब साहब और ख़लीफ़ा जी गाड़ी में बैठ गये। घर की तरफ़ रवाना होते हैं।

ख़लीफ़ा—लीजिये नवाब साहब, ख़ुदा ने आपको तो रसायन का मालिक बना दिया।

नवाब—हाँ, शाह साहब की बातों से तो ऐसा ही मालूम होता है।

ख़लीफ़ा—हम न कहते थे कि आपकी क़िस्मत में होगा तो वह ख़ुद ही आपको बनाएँगे।

नवाब—मगर मुझे तो तस्ख़ीर (जादू) का शौक़ है, ख़ाली अकसीर से क्या होगा।

ख़लीफ़ा—नवाब साहब ज़रा ठहरिये। एक दम सब लेना चाहना ठीक नहीं। आप अपनी ज़बान से कुछ न कहियेगा। दूसरे ख्याल कीजिये तो तस्ख़ीर के मालिक तो आप इस वक़्त हैं क्योंकि सब्ज़-क़बा सी परी आपके क़ब्ज़े में है। आज तक उसका मामला आपके साथ बिलकुल पाक रहा है।

नवाब—सब्ज़-क़बा के अहसान से मैं सर नहीं उठा सकता। इस वक़्त में मेरे काम आई जब कहीं से सहारा न था। मा तो अपने जाने मुझको छोड़ ही चुकीं। चलते वक़्त यह भी न ख्याल रक्खा कि आख़िर यह गुज़र किस तरह करेगा। हाँ यह बात

क्या थी कि रोज़ के ख़र्च के लिये तिलस्मी संदूक को देखिये।

ख़लीफ़ा—मुझे यक़ीन है कि कुछ न कुछ नक़द ख़र्च के लिये सब्ज़-क़बा ने तिलस्मी संदूक में रखवा दिया होगा।

नवाब—संदूक की कुंजी तो मेरे पास है।

ख़लीफ़ा—ताले का बंद होना हम इनसानों (मनुष्यों) के लिये है। जिन्नों को बग़ैर कुंजी ताले के खोलने और बंद करने में कोई दिक़्क़त नहीं होती।

नवाब—अजीब बात है।

ख़लीफ़ा—इसमें अचंभे की क्या बात है। तिलस्मी कुंजी से हर ताला खुल सकता है।

नवाब—मगर यह जो मशहूर है कि लोग जिन्नों और परियों को शीशे में उतार के बंद कर देते हैं, यह लोग उसे क्यों नहीं खोल सकते।

ख़लीफ़ा—ऐसे शीशों पर जिनमें जिन्न व परी क़ैद किये जाते हैं, सुलेमानी मोहर लगाई जाती है। उसे यह लोग नहीं खोल सकते।

नवाब—सुलेमानी मोहर क्या चीज़ है ?

ख़लीफ़ा—शीशा या लाख या मोम की मोहर कोई ख़ास नोम (मंत्र), जिसमें हज़रत सुलेमान का नाम आता है, पढ़कर लगाई जाती है। उसे कोई नहीं खोल सकता। देव हो, या जिन्न हो या परी।

नवाब—मगर हज़रते इन्सान खोल सकते हैं।

ख़लीफ़ा—जी हाँ।

नवाब—आहा ! ख़ूब याद आया। यह अलिफ़ लैला में जो मछली वाले का क़िस्सा है कि उसने दरिया में जाल डाला। उसके जाल में एक ताँबे का गोला निकला। उस ताँबे के गोले को जो खोलता है तो उसमें से एक धुवाँ सा निकला और वह आसमान तक ऊँचा हुआ। इससे एक देव उनके सामने खड़ा हुआ। मैं समझता हूँ कि उस गोले पर भी सुलेमानी मुहर लगी होगी।

ख़लीफ़ा—जी और क्या। हाँ, ख़ूब याद आया। यह तो कहिये बेगम साहिबा तोशा-ख़ाना वग़ैरह की कुंजियाँ अपने साथ लेती गई हैं।

नवाब—मालूम नहीं। मगर मेरा यह ख़याल है कि लेती गई होंगी। क्यों ?

ख़लीफ़ा—अगरचे ख़ुदा ने आपको सब कुछ दिया है मगर फिर भी अपने बुज़ुर्गों की निशानियाँ सबको प्यारी होती हैं। जायदाद मौरूसी के काग़ज़-पत्र, अपने वालिद की अँगूठियाँ, कपड़े यह सब चीज़ें आपकी हैं। उनको अपने क़ब्ज़े में कीजिये। और सब से बढ़कर मुझको एक चीज़ का ख़याल है। स्वर्गीय नवाब साहब के पास एक किताब यंत्र-तंत्र की थी। उसे ढूँढ़ लीजिये। नवाब साहब हमेशा कामिल उस्ताद की तलाश में रहे और उनको न मिला। आपको ईश्वर की कृपा से ऐसा कामिल उस्ताद (सिद्ध) मिल गया है। उस किताब की सब कठिनाइयाँ हल हो जायँगी।

नवाब—हाँ, यह ख़ूब बात है। अच्छा मैं पूछूँगा।

ख़लीफ़ा—पूछना कैसा, तमाम कोठरियों पर क़ब्ज़ा कीजिये। यह मौक़ा अच्छा मिल गया है। बेगम ऐसे में मुर्शिदाबाद गई हैं।

जो जो चीजें आपकी जरूरत की हैं, निकाल लीजिये। बेगम साहिबा आपकी मा जरूर हैं मगर फिर भी औरत जात हैं-अक्ल की कम। और अब तो वह आपसे फ़िरंट हो ही गईं। और भी कई बातें हैं, जिससे उनका इरादा बिल्कुल अलहेदा हो जाने का मालूम होता है।

नवाब—अम्मी से मुझको यह उम्मेद नहीं।

खलीफ़ा—नवाब, आपको किस तरह समझाऊँ। कुछ बातें कहने लायक़ नहीं हैं। अक़्लमन्द को इशारा काफ़ी है।

नवाब—यह पहेली मेरी समझ में नहीं आती। साफ़ कहिये तो समझूँ।

खलीफ़ा—साफ़ साफ़ न कहवाइये। आपको रंज होगा। बस जितना मैंने कहा है उस पर अमल कीजिये। बेगम साहिबा अपना पूरा इन्तजाम कर चुकी हैं। आपके फ़रिश्तों को भी खबर नहीं।

नवाब—पूरा इन्तज़ाम क्या? शादी मैं करने का नहीं। फिर इन्तजाम करेंगी तो क्या करेंगी।

खलीफ़ा—कैसी आपकी शादी। वहाँ कुछ और गुल खिला है। अफ़सोस, बेगम साहिबा से यह उम्मेद न थी।

नवाब—हायँ, हायँ, यह कहते क्या हो। आखिर अम्माजान से किस बात की उम्मेद न थी और उन्होंने क्या किया। लिल्लाह, जल्द कहो।

खलीफ़ा—अब क्या साफ़ ही साफ़ कहवाइयेगा। मैं तो हरगिज न कहता। मगर आप क़सम देते हैं तो कहे देता हूँ। आपकी वालिदा साहिबा ने भी वही किया जो अकसर रईसों

की बीवियों ने अपने शौहरों के मरने के बाद किया था।

नवाब—(किसी कदर नाराज़ होके) यह क्या आपने कहा, मैं नहीं समझा। और साफ़ कहिये।

खलीफ़ा—लीजिये और साफ़ सुनिये। आपकी वालिदा साहिबा निकाह की फ़िक्र में हैं। सब बात ठीक ठाक हो गई है। भाई साहब की मंजूरी के लिये मुर्शिदाबाद गई हैं। वहाँ से आकर निकाह हो जायगा।

नवाब—लाहोलवलो कुव्वत। बस बस। खुदा जाने आपसे किसी ने क्या झूठ कह दिया है। तोबा, तोबा।

खलीफ़ा—बस इसी से मैं न कहता था। आपको यह खयाल नहीं आता कि इतनी बड़ी बात वाहियात, जिसको कोई अस्लियत नहीं, मैं आपके सामने कहता।

नवाब—कोई अस्लियत नहीं। बिल्कुल ग़लत।

खलीफ़ा—बात सच्ची है। बिलकुल सही।

नवाब—जिसने कहा झूठ कहा।

खलीफ़ा—मैंने कहा और मैं सच कहता हूँ।

नवाब—आपको ज़रूर साबित करना होगा और अगर आपने साबित न किया तो आपसे रंज होगा।

खलीफ़ा—इस वक्त हुज़ूर बेकार नाराज होते हैं। यह सब बातें उस वक्त कहने की हैं जब मैं साबित न कर सकूँ। और मुझसे रंज की क्या बात है। मैं नौकर हूँ। जब चाहिये निकाल दीजिये।

यह फ़िक़रा ज़रा चुभता हुआ था क्योंकि ज़ाहिरा खलीफ़ा

नौकर नहीं थे। सिर्फ दोस्ताना आना जाना था। जो लोग बड़े आदमियों के पास दोस्ताना आमदरफ्त रखते हैं, वह नौकरों से बहुत अच्छे रहते हैं। इसलिये कि साथ खाना, साथ पीना, रंडी, नाच, थियेटर, अपना खर्च, घर भर का खर्च, सब नवाब साहब के ज़िम्मे। फिर हर मौक़े पर नवाब साहब के बराबर बैठते हैं। बातचीत में बराबरी। दिल्लगी, मज़ाक़, गाली गलौज सब में बराबरी। ग़रज़ कि ऐसे लोग सब तरह अच्छे रहते हैं। फिर यह कि जब कोई बात पड़ी तो यह कहने को मौजूद हैं—क्या हम किसी के नौकर हैं?

नवाब—निकाल देना कैसा? कुछ आप नौकर नहीं हैं और न मैंने कभी खयाल किया।

खलीफ़ा—यह आपकी रईसी है। मैं अपने आपको एक अदना नौकर समझता हूँ।

नवाब—मैं आपको आला दर्जे का दोस्त खयाल करता हूं। मगर इस मामले में आपने ग़लती की। नहीं मालूम किसी ने झूठ सच कह दिया है। इतनी बड़ी बात और ऐसी बे सिर पैर की। यह कहा किसने आपसे। ज़रा उसका नाम तो मुझको बताइये।

खलीफ़ा—नाम भी बता दूँगा।

नवाब—तो बताइये ना।

खलीफ़ा—नाम बताना कैसा, सामना करा दूँगा।

नवाब—वाह, इससे बेहतर क्या है।

अब गाड़ी घर पर पहुँच गई थी। घर पर पहुँच कर रोज़ की तरह दस्तरख्वान बिछा। जुमेरात का दिन था। शाह साहब के कहने के मुताबिक़ शराब नहीं पी। रास्ते में वह बात सुनी

थी। तबीयत में गुस्सा भरा हुआ था। आज की सोहबत बेमजा रही। नाम के लिये खाना खाया। खलीफ़ा जी से देर तक बात नहीं की। आख़िर जब खलीफ़ा जाने लगे—

नवाब—अच्छा तो कल ज़रूर ज़रूर उस शख्स का सामना करा दीजिये वरना ज़रूर रंज होगा।

नवाब यह आख़िरी बात कहना नहीं चाहते थे मगर अपने आप ज़बान से निकल गई।

खलीफ़ा—(बात का रुख खूब समझे हुए थे और अपनी ताक़त पर पूरा भरोसा था) मेरे आपके हरगिज़ मलाल न होगा। इसलिये कि मैंने जो कहा है सच कहा है और उसे कल साबित कर दूँगा और उस शख्स का सामना भी करा दूँगा।

× × ×

ग्यारह बजे रात को नवाब साहब ने गुसल किया, कोठे पर गये। वहाँ दुबारा नहाये। जादू के ताक में दाख़िल हुए। संदूक़ खोला। पाँच सौ रुपये चहरेदार नये घन के सब्ज़ अतलस की थैली में बंद, कलाबत्तू में बँधे हुए मिले। और एक रुक्का मिला। रुक़्क़े में यह लिखा था कि खर्च की तरफ़ से इत्मीनान रहे। ज़रूरत होने पर जितना चाहेंगे, हाज़िर किया जावेगा। बारह बजे फिर अलारम दिया गया। अब की बार परस्तान की शराब का शीशा मिला। एक दौर पन्ने के प्याले में भर के पिया। आँखों में नशा आया। आज नवाब साहब ने मिर्ज़ा रुसवा साहब का शेर, यह जो किसी से सुन रक्खा था, एक पर्चे पर लिखकर चिट्ठी-पत्री के ख़ाने में डाल दिया—

यह तो माना हमने हाँ शीशे में है बाक़ी शराब,
कुछ मज़ा देती नहीं है हमको बेसाक़ी शराब।

चंद मिनटों के बाद फिर अलारम (घड़ी की घंटी) हुआ। यह रुक्क़ा मिला—आदम-ज़ाद (मनुष्यों की सन्तान) औरतों की ज़ात से जो सदमे तुमको पहुँचे उससे हमको सख़्त रंज हुआ। हम से प्रेम का सम्बन्ध जोड़ो, बेमुरव्वतों से मुँह मोड़ो। आज तिलस्मी कमरे में तिलस्मी दरवाज़े के सामने एक क़द-आदम आईना लगाया गया था और एक जवाहर-जड़ी-कुरसी उसके सामने बिछी थी। आईने के चौखटे पर तिलस्मी अक्षर जो लिखे हुए थे, हम उनका तर्जुमा (अनुवाद) यहाँ लिखे देते हैं—

तुम अपने हुस्न के जल्वे से क्यों रहो महरूम,
तुम आईने की तरफ़ देखो हम तुम्हें देखें।

सब्ज़-क़बा की भेंट।

आज बड़े लुत्फ़ का नज़ारा (दृश्य) है। आशिक़ व माशूक़ दोनों का जल्वा एक ही आइने में नज़र आता है। यह उसकी सूरत पर मुग्ध हैं। जब कोई किसी को चाहता है, माशूक़ के दिल में एक ख़ास क़िस्म का घमंड पैदा हो जाता है। इस घमंड का इज़हार (प्रदर्शन) देखने और सामना होने के वक़्त और आँख भौंह से होता है।

कुछ अहतियात इधर है, कुछ झिझक उधर। चाव-भरी निगाह इधर है नाज़ की शर्म उधर। वाक़ई माशूक़ों का किसी पर आशिक़ होना भी एक दिलबरी (प्रेम) का ढंग है बल्कि ज़ुल्म है। यह समझ लीजिये कि ऐसे लोग जिस पर आशिक़ हुए, उसे मार ही डाला। जैसे यही नवाब साहब का मामला

आपको याद है कि पहला दर्शन टूटे खंडहर में हुआ था। फिर वहाँ एक ही बार देखने से नवाब का क्या हाल हुआ। इसके बाद मालूम हुआ कि यह जिस परी की सूरत के दीवाने हैं, वह इन पर खुद ही आशिक़ है। इस दिल को खुश करने वाले हाल को सुनके नवाब का जो हाल हुआ उसकी लज्जत और आनंद को वही खूब समझ सकते हैं जिस खुश-क़िस्मत पर कभी कोई अच्छी सूरत वाला आशिक़ हुआ हो।

क्या खूब वह मुझको चाहते हैं
यह भी एक तुर्रा दिलबरी है।

एक हकीम का क़ौल है कि अगर कोई तमाम उम्र रात को यह स्वप्न देखता रहे कि मैं बादशाह हूँ तो गोया उसने तमाम उम्र बादशाहत की। यही हाल हमारे नवाब साहब का था।

इसके बाद हारमोनियम के बजने की आवाज आई और यह मालूम हुआ जैसे पर्दे के पीछे कोई नाच रहा है। छम छम घुँगरू बोल रहे हैं। ग़ज़ब के तोड़े लिये जाते हैं कि दिल पामाल हुआ जाता है (पैरों से रौंदा)। हर सम के साथ सब्ज़-क़बा तिलस्मी दरवाज़े में आ खड़ी होती है और उसका अक्स सामने आईने में दिखाई देता है। फिर यह ग़ज़ल गाई गई। इसके एक एक मिसरे बल्कि हर हर लफ़्ज़ को सब्ज़-क़बा आँख के इशारे से बताती जाती थी। नवाब साहब मुग्ध हुए बैठे थे।

हिजाब आइने से ऐ फ़रिश्ता-खू क्या है।
नज़र उठाके ज़रा देख रोबरू क्या है॥
बताओ ऐ दिले ख़ाना ख़राब तू क्या है।
जो तू करे न अदावत तो फिर अदू क्या है॥
तमाम शहर में रुसवा ख़राब आवारा,

तुम्हारे चाहने वाले की आबरू क्या है॥
सिलाए जेब को नासह अगर तो सिलवालो,
जिगर को चाक करेंगे अभी रफ़ू क्या है।
कुछ आईने से ही राजे नियाज़ खिलवत में,
कोई सुने तो कि आपस में गुफ्तगू क्या है।
अभी तो रश्क ने बदला है कुछ योंही सा रंग।
बहेंगे आँख से लख़्ते-जिगर लहू क्या है॥
यही खुशी है तो इज़हारे शौक़ से तोबा,
मलाल जिससे हो तुमको वह गुफ्तगू क्या है॥
बसी हुई है जो खुशबू तेरे पसीने की,
यह पैरहन को है नाज़िश कि नाज़बू क्या है॥
नहीं मुराद अगर चश्म ओ दिल से ऐ रुसवा,
फिर इस्तलाह में पैमाना ओ सबू क्या है॥

कमरे की सजावट और दीवार सब्ज़, पन्ने के रंग के कँवलों की रोशनी और गोलों पर उसका अक्स, राग का लहरा, हारमोनियम के ऊँचे सुर, तबले की गमक, घूँघरुओं की आवाज़, सब्ज़ क़बा की जगन्मोहनी सुंदरता का दृश्य, दिल-फ़रेब इशारे, मनोमोहक संकेत, और सबके ऊपर परस्तानी शराब का नशा—जिसमें हर तरह के नशे का जौहर शामिल था—इस हालत में बेख़ुदी (बेहोशी, आपे से बाहर होना) को कहीं लेने जाना था। आख़िर नवाब साहब ने कुर्सी पर आराम फ़र्माया।

× × ×

शाह साहब के कहने के मुताबिक़ बेगम साहिबा के सिरहाने ज़मीन खोदी गई। हाथ भर गहरा खोदने के बाद एक पीतल की

तख्ती और एक ताँबे का पुतला निकला। इस तख्ती पर एक नक्शा बना हुआ था और पुतले पर तिलस्मी अक्षर खुदे थे। शाम को यह दोनों चीजें शाह साहब को दिखलाई गईं। तख्ती हुब के अमल (वशीकरण) की थी और पुतले पर बुग्ज़ का अमल (दुश्मनी, लड़ाई) किया गया था। तख्ती पर चाहनेवाले और जिसकी चाह है उसके नाम पढ़े गये। तख्ती पर बेगम साहिबा और एक और शख्स का नाम था, जिसको नवाब साहब नहीं जानते थे। पुतले पर बेगम साहिबा और छोटे नवाब के नाम थे।

शाह साहब—आप समझ सकते हैं कि यह दोनों चीजें किसने गढ़वाई हैं और किसने गाढ़ी हैं।

नवाब साहब और खलीफ़ा जी ने मिलकर इन्कार किया।

शाह साहब—यह घनश्याम जोगी की कारस्तानियां हैं और यह दोनों चीजें आपकी अन्ना (धाय) के हाथ की गाढ़ी हुई हैं। आपको क्या मालूम, दुनिया में कौन दुश्मन है और कौन दोस्त। तिलस्मी संसार में दोस्त दुश्मन उस रिश्ते से नहीं लिये जाते जो रिश्ते दुनिया में कायम हैं। यहाँ का हिसाब कुछ और ही है। मुमकिन है कि दीखने वाली दुनियां में कोई आपका दोस्त या प्यारा हो, बल्कि क़रीबी रिश्तेदार हो। तिलस्मी दुनिया में उसका ताल्लुक किसी ऐसे शख्स से है जो आपका क़ुदरती दुश्मन जैसे रक़ीब (प्रतिद्वंदी) है। लिहाजा वही दोस्त या अज़ीज आपका उस दुनिया में दुश्मन हो जावेगा और उससे आपकी जान को खतरा होगा।

खलीफ़ा—वाक़ई क्या उसूल (सिद्धांत) बतलाया है।

नवाब—दुरुस्त है। यह बातें मेरे दिमाग में भी नहीं थीं।

शाह साहब—आपके जहन में क्यों होती। यह वह बात मैंने आपको बतलाई है कि बड़े बड़े आमिल इसको नहीं जानते और इसी वजह से धोखा खाते हैं। यही हाल ज्योतिष की दुनिया में है। जैसे वह शख्स ऐसे नक्षत्रों में पैदा हुए हैं कि ज्योतिष के अनुसार उन्हें दुश्मनी करनी चाहिये। अगरचे उनमें जाहिरी दोस्ती या रिश्तेदारी हो, मगर असल में वह दुश्मन होंगे। वह दुश्मनी किसी न किसी पैराये में ज़ाहिर होगी। जैसे आपने देखा होगा कि अकसर मा बाप या उस्ताद अपने शागिर्दों को बहुत फटकारते, मारते पीटते रहते हैं। असलियत उसकी यही है कि ज्योतिष या तिलस्म के संसार में इनकी उनकी दुश्मनी है। खुद मेरे उस्ताद ने एक दिन मुझको तख्ती खींचकर मारी। ए देखिये (सर की तरफ़ इशारा करके) यहाँ से सर खिल गया। सेरों खून बह गया।

उस्ताद मुझ पर बहुत ही मेहरबान थे। बाद को उन्हें खुद अफ़सोस हुआ। आखिर उन्होंने अपना और मेरा जन्म-पत्र देखा। मालूम हुआ कि सितारों (ग्रहों) के हिसाब से उनके मेरे दुश्मनी है। और उस दिन मंगल उसके दाहिने पर था। उसने गोया मार खिलवाई। हिसाब से उस दिन उसके हाथ से मुझे क़त्ल होना था। फिर मालूम हुआ कि मेरा सितारा भी ज़बरदस्त था, उसी ने रोक दिया वरना ऐसे मेहरबान के हाथ से मेरी जान गई होती।

खलीफ़ा—आज आपने ऐसा अजीब-ग़रीब भेद इन अमलों का बतलाया। मेरी मा भी और सब लड़कों को बहुत चाहती हैं मगर मुझसे हमेशा नाखुश रहती हैं। बचपने में बहुत मारपीट किया करती थीं। और किसी लड़के लड़की को उन्होंने

फूल की छड़ी तक नहीं छुआई। मैं खुद हैरान रहता था कि यह माजरा क्या है। आज मालूम हुआ कि उसकी वजह यह थी।

शाह साहब—अगर आप अपना और अपनी मा का जन्म-पत्र मेरे पास ले आइये तो मैं साफ़ साफ़ बता दूँ कि दुश्मनी की वजह क्या है। जाहिर में तो ऐसा मालूम होता है कि यह दुश्मनी तिलस्मी संसार की है। अच्छा आप अपनी मा का नाम (अच्छा नाम न सही रास ही) बता दीजिये, तो शायद मैं कुछ ज्यादा कह सकूँ।

खलीफ़ा जी ने अपनी मा के नाम का पहला अक्षर बता दिया।

शाह साहब—अहा! मुझे ताज्जुब है कि उन्होंने बचपने में आप का गला क्यों न घोंट दिया।

खलीफ़ा वाक़ई आप सही कहते हैं। वह मुझसे बचपने से ही ख़िलाफ़ रहती थीं। सुना है कि एक दिन ऐसा मारा था कि अधमरा कर दिया था। वह तो मार ही डालतीं मगर दादी अम्मा ने जान बचा ली।

शाह साहब—बात यह है कि उन पर जिस वीर का अमल है वह आपका असली दुश्मन है।

खलीफ़ा—जी हाँ, ठीक फ़र्माते हैं। सिवाय इसके और वजह कोई समझ ही में नहीं आ सकती।

शाह साहब—वजह क्या समझ में आए, उनसा दोस्त जान का दुश्मन हो। और जो तिलस्मी दुनिया और ज्योतिष-संसार दोनों की दुश्मनी जमा हो जाती है, उस सूरत में जान बचना कठिन है।

खलीफ़ा—क्या ऐसा भी होता है?

शाह साहब—खुद नवाब साहब उसको एक मिसाल मौजूद हैं।

खलीफ़ा—क्या यहाँ दोनों अदावतें जमा हो गई हैं।

शाह साहब—बे शक।

× × ×

हाथ फैलाऊँ मैं अब आके गले से मिल जाएँ।
और फिर हसरते आग़ोश तमन्ना क्या है॥

चाहे सोते में हो चाहे जगने में (सुषुप्ता या जाग्रत अवस्था) किसी का बेपर्दा सामने आ बैठना, मेंहदी-रचे हाथ से शराब पिलाना, मेहरबान होकर गले लगा लेना—यह ऐसी बातें हैं जो दिल पर नक्श हो जाती हैं। यह ऐसा ख़याल है कि कभी दिल से नहीं निकलता और यह वह स्वप्न है जिसकी अगरचे कोई ताबीर (अच्छा बुरा फल) न हो, लेकिन तमाम उम्र नहीं भूलता।

खलीफ़ा ने आज नवाब के दिल पर वह तीर मारा था और ऐसा घातक ज़ख्म लगाया गया था, जिसका पुर होना बग़ैर इस इलाज के मुमकिन ही न था। मगर यह मेहरबानी ऐसे वक्त, और ऐसी हालत में हुई कि उसकी असलियत को जान लेने के बाद भी सिवाय स्वप्न के और कुछ समझ ही न सकते थे। सुबह के वक्त नवाब साहब अपनी पलंगड़ी पर से निहायत खुश खुश उठे। तिलस्मी मकान में ताला लगा कर ज़ीने से नीचे उतरे। ज़ीने के दरवाज़े में हमेशा की तरह अपने हाथ से दोहरा ताला चढ़ाया। खलीफ़ा जी पहले ही से इंतज़ार कर रहे थे और एक तरफ़ फ़र्श के कोने पर बी इमामन महरी धरी हुई थीं। नवाब साहब को देखकर खलीफ़ा जी और बी महरी दोनों उठ खड़े हुए। मुजरा

तसलीम के बाद नवाब साहब और खलीफ़ा जी बैठ गये। बी महरी हाथ जोड़े हुए सामने खड़ी रहीं।

मदार बख्श ने हुक्क़ा लगाया। ख़लीफ़ा जी के इशारे से यह सब किनारे किनारे हो गये। सिर्फ़ तीन आदमी बाक़ी रह गये। नवाब साहब समझ गये कि रात को जो खलीफ़ा जी ने बात कही थी उससे महरी को भी कुछ ताल्लुक़ है। ख़लीफ़ा जी ने बात-चीत छेड़ी।

ख़लीफ़ा—इमामन, देखो तुम असल में बड़े नवाब साहब की नमक-ख्वार हो। तुमको अब (छोटे नवाब की तरफ़ इशारा करके) इनकी खैर-ख्वाही चाहिये। हाँ, वह काग़ज़ तो दिखाओ।

महरी—हाँ, वह बात सच है, मगर मुझे अपनी जान और आबरू का खयाल है। ऐसा न हो किसी के मुँह से कुछ निकल जाय तो मैं तो कहीं की न रहूँगी।

ख़लीफ़ा—इससे ख़ातिर जमा रक्खो। नवाब साहब की सलामती में तुम्हारा कोई कुछ बना बिगाड़ नहीं सकता। जो तनख्वाह तुम्हें बेगम साहिबा देती हैं वह नवाब साहब देंगे और जान और आबरू पर तुम्हारी क्या नुक़शान आ सकता है।

महरी—बस यही मेरा मतलब है। और आप जानते हैं कि मैं ऐसी बातों से दूर भागती हूँ। मगर वह तो कहिये इत्तफ़ाक़ से मुझे यह काग़ज़ मिल गया। इस पर बेगम साहिबा की मुहर लगी थी। मैं मुहर उनकी पहचानती हूँ। वह काग़ज़ मैंने उठा लिया। आपको दिखाया। आपने कुछ और ही कहा। यह सारी कारस्तानी मुए करीम खां की है। मैं उसे सीधा आदमी जानती थी। यह क्या मालूम था कि मुआ बुड्ढा बग़लोल, नमक-हराम कुटना-पन करता है।

यह कहकर महरी ने बटुए से काग़ज़ निकाल कर आगे फेंक दिया। यह एक इक़रारनामे का मसौदा था जो हकीम साहब की तरफ़ से बेगम साहिबा के नाम पर था। इसकी पुश्त पर चिट्ठी-नवीस के हाथ की मंजूरी लिखी थी और बेगम साहिबा की मुहर लगी थी। मज़मून इक़रारनामे का यह था—

मनकि हकीम———वल्द———साकिन———का हूँ।

चूंकि सती-साध्वी बेगम साहिबा ने मेरे साथ निकाह क़ानूनी और दाइमी करने का मुआहदा किया है, लिहाज़ा यह इकरारनामा मय नीचे दी हुई शर्तों के लिखकर रजिस्ट्री कराये देता हूँ।

(१) यह कि निकाह के वक्त, एक हज़ार रुपया नक़द बतौर मेहर पेशगी बेगम साहिबा को दूँगा।

(२) बाद निकाह तमाम उम्र बेगम साहिबा के साथ निहायत प्रेम और आदर से पेश आऊँगा।

(३) बेगम साहिबा को अपने नक़्द रुपये और जायदाद का पूरा पूरा अख़त्यार रहेगा। मुझको उनकी ज़ाती जायदाद में किसी तरह की दस्तंदाज़ी का अख़त्यार न होगा।

(४) मैं बतौर रोटी कपड़ा व खर्च पानदान मुबलिग़ पचास रुपया माहवार बेगम साहिबा को दिया करूँगा और अगर इस माहवार के देने से इन्कार करूँ तो बेगम साहिबा को अख़त्यार होगा कि नालिश करके मेरी जायदाद मनक़ूला व ग़ैर-मनक़ूला (जंगम व स्थावर) से व मेरी ज़ात ख़ास से वसूल कर लें।

(५) सिवाय एक मकान के जिसमें मेरी ब्याहता जोरू मुसम्मात——रहती है और कुल जायदाद अपनी मैं इस इक़रार-

नामे की तहरीर के मुताबिक़ बेगम साहिबा के पास रहन करता-हूँ। जब तक मेहर का रुपया पचीस हज़ार अदा न होगा, उसको किसी और के पास रहन व बै न करूँगा। अगर ऐसा करूँ तो क़सूरवार हूँगा।

(६) बेगम साहिबा को कभी मजबूर न करूँगा कि मेरी ब्याहता जोरू के साथ रहें और न बेगम साहिबा को किसी रिश्तेदार के मकान पर जाने से रोकूँगा चाहे वह रिश्तेदार लखनऊ में हो या लखनऊ से बाहर रहता हो।

(७) बेगम साहिबा का इरादा यात्रा के लिये जाने का है। जब बेगम साहिबा जायँगी तो उनको जाने दूँगा और अगर मुझको अपनी खुशी से साथ ले चलेंगी तो जाऊँगा वरना साथ चलने पर भी मजबूर न करूँगा।

(८) बेगम साहिबा का कहना है कि मेरे पहले शौहर को कोई औलाद न मेरे पेट से है और न किसी और ब्याही या बेब्याही स्त्री से है। न कोई और वारिस मेरे पहले शौहर का मौजूद है। जिस क़दर जायदाद पहले शौहर की है, मेरे क़ब्ज़े में है। वह सब बिना किसी दूसरे की शिरकत मेरी जाती है। अगर कोई शख्स पहले शौहर की औलाद या वारिस होने का दावा करे तो उसकी पैरवी और सबूत मेरे (बेगम साहिबा के) ज़िम्मे है।

(९) बाद निकाह बेगम साहिबा मौजूदा ताल्लुक़ात और रहने का मकान छोड़ करके कोई दूसरा मकान किराये पर या मोल लेकर वहाँ रहेंगी।

(१०) इस मकान की रखवाली और हिफ़ाज़त मेरे ज़िम्मे

रहेगी और रात को मैं भी उसी बेगम साहिबा के रहने के मकान में रहा करूँगा।

(११) इस इक़रारनामे की पाबंदी न सिर्फ़ मुझको बल्कि जहाँ तक मुमकिन होगा मेरे वारिसों को भी करनी होगी।

यह चंद कलमे मय शर्तें होश की हालत में खूब समझकर लिख दिये और रजिस्ट्री करा दिये ताकि सनद रहें और वक्त़ जरूरत पर काम आवें।

इबारत पुश्त इक़रारनामा।

मुझे इक़रारनामे की शर्तें पसंद और क़बूल हैं

मुहर

इस बात का अन्दाजा नहीं हो सकता कि इस इक़रारनामे की इबारत को पढ़कर कम उम्र अमीरजादे के दिल पर क्या सदमा गुजर गया होगा। किसी तरह दिल को यक़ीन ही न आता था कि ऐसी चाहने वाली माँ प्यारे इकलौते बेटे के साथ यह सलूक करेगी। कई बार इक़रारनामे को पढ़ा। मुहर को गौर से देखा। दिल में कहते थे, कुलसुम बेगम, हाय यही तो मेरी माँ का नाम है। माँ कैसी ? उसको तो मेरे बेटे होने से इन्कार है। यह क्या बात है ? मैं अपने बाप का बेटा नहीं। कुलसुम बेगम के गर्भ से न किसी और औरत के पेट से। यह क्या सितम (अत्याचार) है ? हाय इस माँ ने (फिर और मैं क्या कहूँ) कहीं का न रक्खा। शहर में मुँह दिखाने के क़ाबिल न रहा। अच्छा होगा, अब मैं शहर में क्यों रहने लगा ? इन ख्यालों के साथ ही परस्तान का ख्याल आया, दिल को फ़ौरन तसल्ली हो गई। मगर माँ बेटों में जो एक प्राकृतिक संबंध होता है, उसका ख्याल छोड़

देना कोई आसान बात थी। बार बार आँखों से आँसू जारी हो जाते थे। खलीफ़ा जी का समझाना ज़ख्म पर नमक का मज़ा दे रहा था। महरी जो सामने खड़ी थी, उसके फ़िकरे अगरचे ऊपर से तसल्ली देने वाले थे, मगर नवाब के दिल पर छुरियाँ सी लगती थीं।

खलीफ़ा जी ने इस हालत को समझकर इस कमबख्त जमाव को जल्द बरखास्त कर दिया।

खलीफ़ा—(महरी से) अच्छा तो यह काग़ज़ हमें दे दो।

महरी—नहीं, मियाँ ऐसा न करो। काग़ज़ मैंने जहाँ से पाया है वहीं रख दूँगी।

खलीफ़ा—वाह कहीं ऐसा हो सकता है। यह काग़ज़ हमारे पास रहेगा। यही तो एक गिरफ़्त (पकड़) हाथ आई है।

नवाब—(सर उठा के) हाँ हाँ, यह काग़ज़ न देना।

महरी—अगर यह काग़ज़ हुजूर के किसी काम का है तो खैर। न्योछावर करती हूँ। रहने दीजिये।

नवाब—हाँ हाँ काम का क्यों नहीं है।

महरी—मगर एक अर्ज़ मेरी है। अपनी अम्माजान से मेरा नाम न लीजियेगा।

खलीफ़ा—(नाराज़ होकर) कैसी अम्माजान! खुदा चाहेगा तो उनसे कभी सामना भी न होगा।

महरी—तो खैर।

इतना कहके महरी तीन तसलीमें करके रुखसत हो गई। उसके जाने के बाद खलीफ़ा जी और नवाब साहब में बातें होने लगीं।

खलीफ़ा—देखा आपने, यह औरतें किस क़यामत की होती हैं।

नवाब—वल्लाह ! क्या बताऊँ । दिल को किसी तरह यक़ीन ही नहीं आता कि अम्माजान ने यह क्या किया ।

खलीफ़ा—वह क्योंकर यक़ीन आए। आप तो एक भोले आदमी हैं। दुनिया का सात पाँच क्या जाने ।

नवाब—अच्छा तो फिर अब करना क्या चाहिये ।

खलीफ़ा—वही जो मैंने रात को अर्ज़ किया था।

नवाब—क्या ? मैं भूल भी गया ।

खलीफ़ा—अब ऐसी ऐसी मतलब की बातें न भूल जाया कीजिये। वही कुंजियां और माल असबाब अपने क़ब्ज़े में कीजिये।

नवाब—यह न होगा। जाने भी दो। खुदा हमें फिर दे रहेगा। जल्दी यहाँ से चलने की तदबीर करो। मैं अब इस शहर ही में न रहूंगा। तुम्हीं कहो क्या मुँह लेकर रहूं। जब यह बातें बरावर वालों को मालूम होंगी तो कैसी जिल्लत होगी ।

खलीफ़ा—मगर माल अपने क़ब्ज़े में कीजिये ।

नवाब—मुझे माल की कोई परवा नहीं है ।

खलीफ़ा—मगर मुझे है। क्या मानी कि जनाब हकीम साहब के हाथ न लगे ।

हकीम साहब का नाम क्या लिया गया गोया नवाब के दिल पर एक बरछी लगी। खानदानी दुश्मन। बाप का रक़ीब, उसको एक हब्बा न मिलने पाए ।

नवाब—बेशक आप सच कहते हैं। मैं ग़लती पर था मगर यह मेरे नोट वग़ैरह तो सब कुलसुम बेगम (अम्माजान से कुलसुम बेगम हो गईं) के क़ब्ज़े में हैं।

ख़लीफ़ा—फिर हो। कर ही क्या सकती हैं। उनको सिवाय आपके कोई हाथ लगाही नहीं सकता। नोटों के नम्बर मेरे पास मौजूद हैं।

नवाब—मगर इक़रारनामे में तो यह लिखा है, मैं वारिस ही नहीं।

ख़लीफ़ा—हाँ, यह फ़िक़रा मैं खुद नहीं समझा। हकीम साहब का कोई जाल है मगर यह चल नहीं सकता। ख़ातिर जमा रखिये। आपका वारिस होना पूरी तौर से साबित है। तमाम शहर जानता है। इससे किसी को इन्कार नहीं हो सकता। दूसरे आपके वालिद नवाब साहब वसीयतनामे में लिखवा चुके हैं।

नवाब—वालिद ने तो लिखवाया था। खुद भी लिखवा चुकी हैं। चाहे अब अपने लिखे से इन्कार करें।

ख़लीफ़ा—अब इन्कार चल नहीं सकता।

नवाब—मगर झगड़ा होगा।

ख़लीफ़ा—ज़रूर। मगर अंत में आप ही जीतेंगे।

नवाब—यह तो यक़ीन है।

नवाब साहब ने ख़लीफ़ा के कहने के मुताबिक़ घर की कोठरियों और भारी संदूकों के ताले तोड़े। तमाम जवाहरात के संदूक़चे, पशमीना लिबास संदूक़चों से निकालकर इनके हवाले किया। उन्होंने रात ही रात लाखों रुपयों का असबाब खसका

दिया। उसी रात को तीन बजे तिलस्मी कमरे में अलारम हुआ। नवाब साहब ने संदूकचा खोला। यह रुक़्क़ा मिला—

६५५५१६२१६२५३४१६१६१४४

तुम इसी वक़्त शहर से रवाना हो:

तिलस्मी लिखावट नवाब साहब पर आकाश-वाणी का सा हुक्म रखती थी। नवाब फ़ौरन कोठे पर से उतरे। ख़लीफ़ा जी राह देख रहे थे। नवाब को कुछ ताज्जुब हुआ।

नवाब—आप तो मेरे सामने घर गये थे। इस वक़्त कहाँ?

ख़लीफ़ा—नवाब, अजब मामला है। मैं घर में बेहोश पड़ा सो रहा था। स्वप्न में ऐसा मालूम हुआ जैसे कोई कहता है—जाओ। नवाब ने याद किया है। समझा कोरा स्वप्न है। कुछ ध्यान न दिया। करवट बदल के फिर सो रहा। दूसरी बार हाथ पकड़ के बिठा दिया। और फिर वही दीखा। अब की भी मैं फिर लेट के सो गया। तीसरी बार जोर से गाल पर तमाँचा पड़ा कि जाता नहीं, नवाब साहब ने याद किया है। दिन होता तो आप देखते। गाल सुर्ख है और अभी तक दर्द हो रहा है। मैं घबराया हुआ आपके पास दौड़ा आया। कहिये क्या हुकुम है।

नवाब—(मुस्करा के) मुझे सफ़र का हुक्म हुआ है। क्या करना चाहिये।

ख़लीफ़ा—शाह साहब के पास चलिये।

नवाब—अच्छा गाड़ी तैयार कराओ।

ख़लीफ़ा—गाड़ी की जरूरत नहीं। इस वक़्त यों ही चलना चाहिये। जरूर है कि शाह साहब रास्ते में मिल जायँ।

नवाब और ख़लीफ़ा पैदल ही घर से रवाना हुए। इन दोनों को जाते हुए सिवाय चौकीदार के और किसी ने नहीं देखा। कश्मीरी महल्ले के चौराहे पर शाह साहब से मुलाक़ात हो गई। तीनों आदमी चारबाग़ स्टेशन पर पहुँचे। दर्जा अव्वल का टिकट लिया। देहली को रवाना हुए। दूसरे दिन शामों शाम देहली पहुँचे। यहाँ से तार दिया गया। नवाब साहब के नौकर आठ आदमी तीसरे दिन लखनऊ से रवाना हुए। चौथे दिन मोर की सराय में सब नवाब साहब से मिल गये। यहाँ से लाहौर का टिकट लिया गया। मुलतान, सक्खर होते हुए कराची में जहाज़ का टिकट लिया। बम्बई में दाख़िल हुए।

घर से बेसरो-सामान चल खड़े हुए थे मगर रास्ते में किसी बात की ज़रूरत न हुई। हर मुक़ाम पर जब ख़र्च की तंगी होती थी, नवाब के सिरहाने से रुपयों की थैलियां निकलती थीं। अब शाह साहब ने मुल्क राजपूताना की सैर का इरादा ज़ाहिर किया। बम्बई में नवाब साहब ने मय सब साथियों के फ़क़ीरी का बाना किया।

शिंजरफ़ी तहबंदें बँधी हुई थीं। चिमटे हाथ में। नवाब साहब के हाथ में चाँदी का चिमटा था। उसमें सोने का कड़ा पड़ा हुआ था। कान में पन्ने का लटकन। इस फ़क़ीरी हैसियत से विन्ध्याचल पहाड़ पर अकसीर की बूटियाँ तलाश होने लगीं। नवाब साहब और शाहजी शरीर और छाया की तरह साथ थे।

एक एक बूटी और एक एक पत्ती का ख़वास (गुण) नवाब साहब को बताया जाता था और नवाब साहब सीखते जाते थे। इसी बीच में याबदूह का अमल भी शुरू करा दिया था। जब किसी जगह ठहरे, ख़ास ख़ास मंत्र पढ़ना शुरू किये। सिर्फ एक

खाने में कमी रहती थी। शाह साहब ने कह दिया था कि जिस दिन यह कमी न रहेगी सातों देशों पर राज हो जायगा। दारा और सिकन्दर से बढ़ा हुआ मुल्क हाथ आएगा। अमर जीवन नसीब होगा। उधर अक्सीर की बूटी रोज़ मिलती थी। मगर शर्तें पूरी न होती थीं। यूनानी तरकीबों से सोना बनाने के कई नुस्खे बता दिये गये। सफ़र में भी रसायन का सामान नहीं मिल सकता था, वरना सेरों सोना चाँदी तैयार हो जाता। यूनानी नुस्खे में एक चीज़ ख़ास क़िस्म का ताँबा था। उस्ताद कामिल का क़ौल था कि सिवाय नख़ास क़बरसी के और किसी क़िस्म के तांबे से सोना बनाना नयों के लिये मुश्किल है। एक दिन जैपुर में एक पंसारी की दूकान पर दो तोले नख़ास क़बरसी हाथ आ गया शाह साहब ने फ़ौरन सोना बना के दिखा दिया। तरकीब नवाब साहब को बता दी। दो तोले की टिकया बनी, वह बाज़ार में बेची गई। चौबीस रुपये बारह आने तोले का भाव था। उनचास रुपये आठ आने को बिक गई। इस तमाम रक़म का अच्छा और स्वादिष्ट भोजन तैयार हुआ। दादा पीर की नज़र दिलवाकर फ़क़ीरों और मोहताजों को तक़सीम किये गये। तमाम सराय में धूम हो गई। ज़रूरत वालों ने कीमियागार समझकर घेरा। वहाँ से रात को रवाना हुए। इन्दौर में आए। यहाँ नवाब साहब के साथी एक पहलवान को, जो अब फ़क़ीरी भेस में था, राजा इन्दौर के एक पहलवान ने पहचान लिया। बड़ी ख़ातिरदारी की। उसके बाद बालाजी और नवाब साहब की मुलाक़ात बड़ी धूमधाम से हुई। बाला साहब रियासत में जगह देते थे। नवाब साहब दुनिया छोड़ चुके थे। यहाँ से छुपकर रात को चल दिये। गवालियर में बहुत दिनों तक ठहरे। पुराना क़िला देखा। तान-सेन की क़ब्र पर गये। लश्कर में एक रंडी बहुत गलेबाज़ रहती

थी। उसका मुजरा सुना। ढाई सौ रुपया इनाम दिया। दूसरे दिन रंडी फिर आई। आप ही मुजरा किया। नवाब साहब से मेल (सम्बन्ध) करने लगी। पा मुरीद (चेली) होना चाहा। शाह साहब ने मना किया। जब उस रंडी ने ज्यादा घेरा, शाह साहब ने कूच बोल दिया।

नवाब साहब की यात्रा का पूरा हाल अगरचे बहुत ही दिलचस्प है मगर बहुत लम्बा होने की वजह से हम उसे मजबूर होकर नहीं लिख रहे हैं। मगर एक दिन का वाक़ा (घटना) जो किसी क़दर दिलचस्प है, आगे चलकर लिखे देते हैं। खुलासा यह है कि दो डेढ़ बरस तक तमाम हिन्दोस्तान की खाक छानते फिरे। इस सफ़र में पचास साठ हज़ार रुपया खर्च हुआ। वह सब सब्ज़-क़बा के खज़ाने से आया किया। इस बीच में नवाब कई इल्म सीख गये—कीमिया, रीमिया और सीमिया। (कि जिसकी बाबत यह कहा गया है कि सिवाय पहुँचे हुए फ़कीरों के कोई नहीं जानता)। सफ़र की उम्र कोता होती है। एक दिन शाम को तिलस्मी रुक़्क़ा पहुँचा।

६५१५५१६२३२५९६॥१८१५५१५२३१४२२१२१

"अब कुछ खौफ नहीं। वतन को रवाना हो।"

× × ×

खुदा जाने किधर ले जायगा आज,
मेरा दिल मुझको दीवाना बना के।

छोटे नवाब को जंगल जंगल फिरते हुए पूरे ग्यारह महीने हो गये। जगजीवन बूटी कहीं नहीं मिलती, जिस पर बावन तोले

और पाव रत्ती अक्सीर बनना निर्भर है। आज जबलपुर के पास एक छोटा सा गाँव है। पहाड़ के नीचे थोड़ा सावन बाक़ी है। जब यहाँ पहुँचे हैं यहीं मुक़ाम हुआ है। बनिये की दूकान के सामने एक बहुत पुराना इमली का पेड़ है। उसके चारों तरफ़ एक बड़े चबूतरे पर सब के बिस्तर लगे हुए हैं। साथी लोग खाना पकाने में लगे हैं। साईस घोड़ों को मल रहे हैं। शाह साहब दिन भर के थके माँदे ध्यान में मगन बैठे हैं। नवाब साहब पहले इधर उधर टहला किये। फिर जो में आया, एक ज़रा आगे और चलें। सामने एक छोटी सी पहाड़ी है। इरादा किया उसके ऊपर चढ़ के देखें उस तरफ़ क्या है। 'क्या है' इन दो शब्दों से हमारे और पाठकों के दिल पर मामूली असर से ज्यादा नहीं हो सकता मगर छोटे नवाब के दिल का हाल और ही कुछ था। सब्ज़-क़बा की सूरत दिल पर नक़्श थी, यह भी यक़ीन था कि वह मुझपर जान देती है, मगर कुछ ऐसी लाचा-रियाँ हैं कि सामने नहीं आ सकती। खर्च का भार उसी के जिम्मे है। घर से बेसरोसामान निकल खड़े हुए थे। सफ़र के खर्च के लिये कुछ भी नहीं था। सफ़र में किसी तरह की तक-लीफ़ नहीं हुई। जो चाहा खाया, जो चाहते पहनते। सैकड़ों रुपये की खैरात बाँट दी। किसी बात की कमी न थी। जब जिस चीज की ज़रूरत हुई, मौजूद हो गई। दूसरे तीसरे रुपयों की थैली सिरहाने से निकलती थी। इस तरह की घटनाओं के साथ उस शख़्स के दिल व दिमाग़ की कैफ़ियतों पर ग़ौर कीजिये, जिस पर यह हालतें गुज़रती होंगी। वाक़ई छोटे नवाब को बहुत खर्च करके यह थियेटर दिखाया गया था जिसकी लज्ज़त उम्र भर भूलने को नहीं, लेकिन उस सूरत में जब कि उसका मुक़ा-बला ऐसे रंज से किया जाय सो बिलकुल उससे उल्टा हो—

यानी मुसीबत फ़ाक़ाकशी, दरिद्रता वग़ैरह। इस पहाड़ के उस तरफ़ क्या है? नवाब साहब का भूगोल का ज्ञान परिमित था। सिवाय एक पहाड़, कोह क़ाफ़ (परियों के रहने का स्थान) और दुनिया के किसी पहाड़ का नाम आपको मालूम ही न था। जैसे बच्चा पैदा होने के बाद से एक प्राणी को, चाहे मर्द हो या औरत, मां समझता है और जब कुछ समझ आने लगती है तो हर मर्द को बाप और हर औरत को माँ कहता है। उसे ख़ास ख़ास विशेषताओं का ज्ञान बहुत दिनों में होता है।

इस पहाड़ के उस तरफ़ मुमकिन है कि कोह क़ाफ़ के सर पर देवों का पहरा होगा। लाल देव और काले देव की शकल उन्होंने इंदर सभा में देखी थी। ऊँची चीज़ों में ताड़ का पेड़ मशहूर है और नवाब साहब ने अकसर ताड़ के पेड़ भी देखे थे। बस वही दो शकलें देव को सूरत की कल्पना के लिये काफ़ी थीं। देव अकसर आदम-ज़ाद (मनुष्य) को खा जाते हैं। मगर नवाब साहब को अपने बाहुबल और उन जादू-मंत्रों पर जो शाह साहब ने सिखाये थे, इतना भरोसा ज़रूर था कि अगर कहीं मुक़ाबला हो गया तो हमीं ज़बर रहेंगे। मगर इसकी हिम्मत दिन दहाड़े थी। रात को नवाब साहब बिस्तर पर से भी न उठ सकते थे। इसलिये कि बचपने में जो अन्नाएँ खिलाइयाँ डराया करतीं थीं, वह अभी तक आपके दिल से न निकला था। परियों को यह पर लगी हुई ख़ूबसूरत औरतें समझते थे। मगर सब्ज़ क़बा को बग़ैर परों के देखा था। इसलिये इनका यह खयाल था कि पर ऊपर से लगा दिये जाते हैं। बिल्कुल वैसे ही जैसे इंदर-सभा की परियों के पर लगाये हुए होते हैं। और जब चाहती हैं, वह उतार के रख भी देती हैं। परियों को अख़्तियार होता है कि जब चाहें परों को छुपालें, जब चाहें ज़ाहिर कर दें।

कुछ ऐसे ही विचारों में मग्न पहाड़ की तरफ़ बढ़ते चले जाते हैं। इस वक़्त उस जंगल और पहाड़ का समां देखने के लायक़ था। पहाड़ के नीचे से चोटी एक एक हरी हरी ज़मीन का टुकड़ा नज़र आता था। हर तरफ़ गुंजान दरख़्तों पर पखेरू रात भर के आराम का सामान करके कुछ ऐसे संतुष्ट हैं कि सिवाय उन बाजों को छेड़ने और रागों को अलापने के, जो प्रकृति ने उनके गलों के लिये ख़ास तौर से बना दिये है, और कुछ याद नहीं। सूर्यास्त का समय जितना पास आता जाता है उनके सुर उसी हिसाब से ऊँचे होते जाते हैं। सूर्य का गोला सोने की थाली की तरह पहाड़ की उत्तर-पश्चिम दिशा में एक बड़ी घाटी के धरातल से दो आदमी की ऊँचाई पर नज़र आता है। मगर धूप का कहीं पता नहीं।

इसी तरफ़ सन्ध्या की लालिमा की रंगारंगी का दृश्य देखने के लायक़ है। सुर्ख़—गहरे, नारंजी—ज़र्द—ऊदे बादल की तह में तह आस्मान पर तस्वीर की तरह नज़र आती हैं। सुर्मई रंग के परत पहाड़ की श्रेणी से कुछ ऊँचे दूर तक फैले हुए हैं मानों इन पहाड़ों के उस तरफ़ ऊँचे पहाड़ों की एक और श्रेणी चली गई है। पहाड़ ऊपर से नीचे तक तरह तरह की वनस्पतियों की पोशाक से ढके हुए हैं। चारों तरफ़ हरियाली ही हरियाली नज़र आती है। यह जगह सब्ज़-क़बा के सैर करने के स्थान के लिये बहुत ही उपयुक्त है। नवाब साहब इसी को कोहक़ाफ़ समझे हुए हैं। छोटी सी नदी, जिसके पुल से नीचे उतर के, नवाब साहब बाँई तरफ़ मुड़े हैं, दूर तक लहराती हुई चली गई है और आगे चलकर गुंजान (घने) दरख़्तों में ग़ायब हो गई है। उसके किनारे छोटे बड़े, गोल और लंबोतरे, रंग रंग के पत्थर इस ख़ूब सूरती से जगह जगह फैले हुए हैं कि कहीं ऐसा मालूम होता है

जैसे किसी ने एक एक करके चुने हैं। इसी तरह के पत्थरों की तह पानी की सतह के नीचे दरिया के तले में भी नज़र आती है। नदी का पानी साफ़ शफ़ाफ़ देखके एक ख़ास तरह की उमंग दिल में उठती है, जिसको एक असंभव इच्छा समझना चाहिये। जी चाहता है कुल पानी पीलें या घर में उठा ले जायँ। यहाँ कोई दो क़दम के फ़ासले पर पहाड़ी की ऊँचाई शुरू होती है। पहाड़ की बनावट इस तरह की है कि सब से नीची परत में बड़े बड़े पत्थरों की सिलें तह पर तह चुनी हुई हैं, इसके ऊपर वाली परतें गोल पत्थर के, लगभग एक ही अंदाज़ के, एक से एक जुड़ा हुआ; फिर एक तह सिलों की। इस तरतीब से पहाड़ी के ऊपर तक की परतें चली गई हैं। इन परतों को देख कर नवाब साहब को यक़ीन हो गया कि यह सब देवों की कारस्तानी है क्योंकि इस तरह बराबर-बराबर परतें कौन चुन सकता है। ऐसा मालूम होता है जैसे किसी पुराने पक्के क़िले के खंडहर पड़े हुए हैं। यह क़िला ज़रूर देवों ने बनाया होगा या उनके पुराने मकानों के खंडहर हैं।

पहाड़ी का रास्ता घूमता हुआ नीचे से ऊपर तक चला गया है। इस रास्ते के दायें बायें बड़े बड़े गहरे गढ़े मिलते हैं। इन सब मे हरे भरे दरख़्त गोया लबालब भरे हुए हैं। कहीं कहीं गढ़ों में उतरने का रास्ता भी है और कहीं बिलकुल नहीं है। नवाब की कल्पना ने निश्चय किया कि ऐसे ही किसी कुएँ में शाहज़ादा बेनज़ीर क़ैद किया गया होगा और इन्हीं सिलों में से एक सिल उस कुएँ के मुँह पर ढाँक दी गई होगी। पहाड़ी की चोटी पर पहुँच के उनको एक तख़्ता समतल ज़मीन का मिला। इसके बीच में एक चौकोर पत्थर पड़ा हुआ था। अब तो यक़ीन हो गया कि यह किसी देव की चौकी है। इसी के पास एक

पत्थर की सिल पड़ी थी। इसके पास एक पहाड़ी दरख्त था। उसकी जड़ पर नवाब साहब बैठ गये और चारों तरफ़ नज़र दौड़ा दौड़ाकर देखने लगे। कोसों तक सिवाय पहाड़ों और जंगलों के कुछ दिखाई न देता था। सूर्य अब पश्चिमी क्षितिज से मिला हुआ था। दूसरी तरफ़ चांद निकल आया था। दोनों प्रकाश के शरीर एक दूसरे के मुक़ाबले में थे। यह मालूम होता था जैसे नीली गुंबद के दोनों तरफ़ दो गोल बराबर के आईने लगा दिये गये हैं। कुछ देर बाद सूर्य अस्त हो गया मगर उसके डूबने से पहले ही पश्चिम के क्षितिज से कुछ ऊपर (ज़ोहरा) बृहस्पति का तारा अजीब हुस्न (सौंदर्य) से चमक रहा था। और सितारे भी आसमान में चमकते नज़र आते थे। मगर चाँद की रोशनी उन पर ग़ालिब थी (दबाए हुए थी)। बृहस्पति की आभा उस समय चन्द्रमा को लज्जित किये देती थी।

सब कुछ था, मगर नवाब का यहाँ ठहरना और ऐसे वक्त—हमें यक़ीन नहीं आता। नवाब वह आदमी हैं जो ग़रीबी की हालत में भी रात को अपने बिस्तर से नहीं उठ सकते। बचपन में जो अन्नाओं व दायाओं ने जूजू मना की शादी, बुआ दौलत के हौआ वग़ैरह वग़ैरह से वक्त वक्त पर डराया था, वह ख़ौफ दिल में समाया हुआ था और अब भी है। फिर इस वक्त ऐसी जगह ठहरना कैसे हो सकता है। अगर यह कहा जाय कि शाह साहब की अलौकिक शक्ति थी क्योंकि ऐसे ऐसे जादू-मंत्र के काट सिखा दिये थे कि नवाब के दिल से ख़ौफ़ (भय) बिलकुल निकल गया था, उसको हम नहीं मानते। हाँ एक बात दिल में आती है कि जहाँ नवाब बैठे हुए थे, यहीं से थोड़ी दूर पर वाजिद यह ग़ज़ल श्याम कल्याण की धुन में गा रहा था और शीदी मसऊद मुँह से तबला बजा रहा था। वाजिद का जन्म से अच्छा

गला था और कुछ गान-विद्या से परिचित भी था। आवाज़ का यह हाल था जैसे अरगन बज रहा है। पिसी हुई (मंझी हुई) तानें निकलती थीं। उधर शैदी मसरूर मुँह से तबला बजाने में एक ही था। कोई ताल ऐसी न थी जो उसने मुँह से न निकाली हो। ऐसे ऐसे टुकड़े लगाता था कि अच्छे अच्छे तबलिये और पखावजी हैरान हो जाते थे।

बेचैन न हो दर्द से आराम यही है,
मरने का मज़ा ए दिले नाकाम यही है।
सच कहता हूँ मरने को मेरे सहल समझिये,
मैं आपका आशिक़ हूं मेरा काम यही है।
मैंने जो कहा उनको हँसी से सितम आरा,
कहते हैं कि हाँ सच है मेरा नाम यही है।
इन हाथों से गर जहर अगर हमको पिलादो,
हम समझें कि बस बादए गुलफ़ाम यही है।
देखो कभी आईना कभी जुल्फ़ संवारो,
आलम में तुम्हारी सहरओ शाम यही है।
देखा है मुझे अपनी खुशामद में जो मसरूफ़,
उस बुत को यह धोका है कि इस्लाम यही है।
अशआर मेरे सुनके कहा कौन है मिर्ज़ा,
क्या हो जो बता दूं कि मेरा नाम यही है।
उसकी झपती हुई चितवन पे न जा ए नादान,
पसे पर्दा भी ज़रा देख कि होता क्या है॥

लखनऊ में पहुँचने के बाद फिर छोटे नवाब अपने दीवान-खाने में उतरे। आज ही रात को सब्ज़-क़बा ने अपना जलवा दिखाया। तिलस्मी दरवाज़ा उसी तरह बंद रहा। चंद मिनट से

ज़्यादा दीदार न आज तक नसीब हुआ था, न आज हुआ।

'रुए गुल सैर न दीदेम बहार आख़िर शुद।'

(हमने फूलों की सैर तबीयत भरके नहीं देखी थी, कि बहार (वसन्त) ख़तम हो गई)

परस्तान की शराब में बेहोशी की दवा की पुट लगी हुई थी। जहाँ छोटे नवाब ने दो एक दौर पिये और अंटा ग़ाफ़ील हो गये। शाह साहब अब तक यही कहे जाते थे कि आप ग्यारह बजकर सत्रह मिनट पर परस्तान में दाख़िल हो जाते हैं। दो डेढ़ बरस तक गोकि छोटे नवाब सफ़र में रहे मगर रोज़ परस्तान में सोते थे। ज़ाहिरी दीदार (दर्शन) से बेशक महरूम (वंचित) रहे। मगर ख़्याल में पास रहने का मज़ा रोज़ मिलता रहा अगरचे उसका हिस (अनुभव) छोटे नवाब को एक पल के लिये भी नहीं हुआ। मगर शाह साहब की जादूभरी बातों में वह असर था कि कभी नवाब साहब को इसके न होने का शुबह तक न हुआ।

मगर यह ज़माना छोटे नवाब के बढ़ने और जवानी का था। इसलिये कि बदक़िस्मत रईसज़ादों का बढ़ना और जवानी दौलत की कमी हो जाने पर निर्भर है। छोटे नवाब का यह ज़माना क़रीब आ पहुँचा था। बल्कि असल में तो दौलत में कमी हो चुकी थी। मगर अभी तक छोटे नवाब को इसकी ख़बर न थी। जैसे किसी चमकीले जवाहरात के देखने के बाद कुछ देर तक उसकी चमक दिमाग़ में रह जाती है, यही हाल आदमी की हर दिमाग़ी हालत का है। छोटे नवाब को अभी पूरी तौर से अपनी तबाही (बरबादी) का यक़ीन न था। इसलिये कि अभी तक वही साज़ ओ सामान था गोकि सामान-असबाब का बिकना

शुरू हो गया था। मगर दस्तर ख्वान की रौनक़ यानी मुफ्त-खोरे अभी तक मौजूद थे। गाड़ी घोड़े बिक चुके थे मगर किराये की गाड़ी पर अब तक सैर हुआ करती थी। और यह हैसियत इस बिना पर थी कि बीस हज़ार का एक नोट अभी तक नंबरों के गुम हो जाने की वजह से नहीं भुनाया गया था।

सारांश यह कि आज मिलने-भेंटने के बाद नवाब तिलस्मी कमरे में पड़े जागा किये। सब्ज़ कँवल रोशन थे। कमरा जगर-जगर कर रहा था। कोठे पर चाँदनी छिटकी हुई थी। नवाब इस एकान्त में अपनी पिछली और अगली हालत पर ग़ौर कर रहे थे। तिलस्मी दरवाज़ा सामने था। तिलस्मी सन्दूक़चा खोला। उसमें शराब का शीशा खाली था। फ़ौरन जम्हाइयाँ आने लगीं। शरीर के अंग सिकुड़ने लगे क्योंकि परस्तान की शराब में चैतन्य करने वाली चीज़ों का खास अंश है। आज खुदा जाने सब्ज़-क़बा के कारकुनों से क्या ग़लती हुई कि शराब ग़ायब करदी गई। कई बार अलारम दिया। कोई जवाब न मिला, क्योंकि परस्तान की मधुशाला खाली हो चुकी थी। अब उसमें एक बूँद बाक़ी नहीं थी। और जम्हाइयाँ आईं। बदन टूटने लगा। अब यह हाल है कि न बैठे चैन पड़ता है न खड़े। आलस्य की दशा है, मगर क्या किया जाय, मुरशद की आज्ञा के पाबंद हैं। सब्ज़-क़बा का शौक़ ऐसा न था कि कोठे पर से उतर आते। इतने में तिलस्मी दरवाज़े पर निगाह जा पड़ी। देखा कि बीच के दिलहे का शीशा टूटा हुआ है। खुदा जाने नवाब के कान में परस्तानी कमरे के पीछे से किस क़िस्म की आवाज़ें आईं कि कान उसी तरफ़ लग गये। नवाब की वह हालत थी जिसे सोने और जागने के बीच की समझना चाहिये। मगर इन आवाज़ों में एक आवाज़ ऐसी भी थी जिसे कान पहचानते थे। आज हारमोनियम

और पियानों की सुरीली आवाजों के बदले एक मर्द के चीखने और बेहूदा गाली गलौज का शोग़ा था। और उसके साथ ही एक औरत की आवाज की झंकार दिल में उतरी जाती थी। इस आवाज़ को नवाब ने आज तक न सुना था। नवाब दिल ही दिल में कह रहे हैं। घनश्याम जोगी, जिसके डर के मारे शाह साहब मुझको डेढ़ बरस तक मुल्कों मुल्कों लिये फिरे, मुमकिन है कि उसी की आवाज़ हो। मगर बोलने का ढंग और आवाज़ का अंदाज उस आवाज़ से जिसे मैं अच्छी तरह पहचानता हूँ किसी क़दर मिलती है। सुना करते हैं कि जादूगर लोग अपनी सूरत दूसरों की सी बना सकते हैं। क्या अजब है कि आवाज भी बना लेते हों। फिर अगर यह आवाज़ घनश्याम जोगी की है तो ज़रूर है कि दूसरी आवाज़ सब्ज़-क़बा की हो। ज़रूर यह सब्ज़-क़बा की आवाज़ है। हाय! मेरी सच्ची आशिक़ परी पर ज़ुल्म हो रहा है। घनश्याम जोगी कैसी गंदी गालियाँ दे रहा है। शाह जी ने कितने ही जादू के मंत्र सिखलाये थे। उन्हें पढ़ने लगे। मगर कुछ भी असर होता दिखाई न दिया।

इससे तो घनश्याम जोगी और भी नाराज़ हो गया। हाय, अब तो ऐसा मालूम होता है कि सब्ज़-क़बा पर मार पड़ेगी। लो, वह तमाँचा पड़ा। हाय सब्ज़-क़बा किस दर्द से रो रही है। अफ़सोस तिलस्म का पर्दा बीच में खड़ा है वरना घनश्याम जोगी से जाकर अभी समझ लेता। इसके बाद रोने की आवाज़ देर तक आया की। फिर मालूम हुआ कि जैसे कोई हिचकियां ले रहा है। फिर ख़ुर्राटों की आवाज़ आई। ख़ैर घनश्याम जोगी सो रहा। अब सब्ज़-क़बा का पीछा छूटा। नवाब ने दुबारा अलारम दिया। सब्ज़-क़बा सामने आ खड़ी हुई। सब्ज़-जोड़ा नुचा खिंचा, बाल परेशान, चेहरे पर उदासी छाई हुई। इस

क़दर आसार उस लड़ाई के, जिसे नवाब ने अपने कानों से सुना, अब तक बाक़ी थे। टूटे हुए शीशे में से एक तरफ़ का हाथ साफ़ नज़र आता था।

गोरा हाथ, उसमें फँसी फँसी चूड़ियां मगर हाथ के पीछे चूड़ी के टूटने से जो ख़राश का सामान था, वह भी दिखलाई पड़ता था।

अब तो यक़ीन हो गया कि वह ज़ोर के तमाँचे इसी नाज़ुक शरीर पर पड़े हैं, जो इस वक़्त रंज की तस्वीर बनी खड़ी है।

× × ×

पहाड़ सी रात आँखों में कट गई। रात भर नींद का तो क्या ज़िक्र, पलक तक झपकाने की क़सम है। दिले बेताब बार बार अलारम की कुंजी मरोड़ने पर मजबूर करता था। सब्ज़-कबा सामने आ खड़ी हुई थी। ग्यारह बजे रात से सुबह तक दस बार सामना हुआ।

आज नवाब का पलंग उठाने न कोई देव आया न जिन्न। इसलिये कि सब्ज़-कबा ख़ुद ही परस्तान में न थी। घनश्याम जोगी के खर्राटों की भयानक अवाज़ कानों में आ रही थी। ऐसा मालूम होता था जैसे उस तरफ़ घनश्याम जोगी सो रहा है और बेचारी सब्ज़-कबा जाग रही है। जब अलारम दिया जाता है, तिलस्मी दरवाज़े में आ खड़ी होती है। नवाब ने कई बार इरादा किया कि आज तिलस्मी दरवाज़े के तिलस्म को तोड़ डालें मगर हिम्मत न पड़ी। घनश्याम जोगी का डर दिल में समाया हुआ था। तीन बजे रात को ऐसा मालूम हुआ कि जैसे घनश्याम जोगी ग़फ़लत की नींद से जागा। पानी माँगा। सब्ज़-

क़बा ने पानी पिलाया। इसके बाद जो बातें नवाब साहब के रक़ीब घनश्याम जोगी और सब्ज़-क़बा में हुईं, वह सब नवाब साहब ने अपने कानों से सुनीं, क्योंकि नवाब साहब ने अपनी कुर्सी तिलस्मी दरवाजे के पास ही रख दी थी। शीशे के टूट जाने से उधर की आवाज, चाहे कैसी ही आहिस्ता से क्यों न हो, साफ़ इधर सुनाई देती थी। अब नवाब साहब ने अलारम नहीं दिया न सब्ज़-क़बा आई। अपने और सब्ज़-क़बा के प्रेम के मामले का फ़ैसला नवाब ने अपने दिल में कर लिया था। मुद्दतों पुराना भेद पर्दा टूटने से नवाब साहब पर खुल गया था। नवाब को कुछ ऐसा सदमा (शोक) भी नहीं हुआ क्योंकि यह अपने आपको जालसाजों का शिकार पहले ही से समझ चुके थे और यह कोई नई बात न थी। ढाई लाख के नोटों के जाने के बाद जब आँखें खुलीं तो मालूम हुआ कि दुनिया एक जालसाज़ी का तिलस्म है। कोई शख्स किसी से (खास कर इनसे) बेग़रज़ (निस्वार्थ) नहीं मिलता। किसी की कोई बात जाल से खाली नहीं। अब इनके दिल में भी यह शमा गया था कि फिर वही किया जाय। इन्हीं लोगों से तो काम है। मसलहत-वक्त और समय के अनुसार काम करो। बहुत दूर अन्देशी से काम लेना ऐसी हालत में फ़िज़ूल है। जिस तरह बन पड़े अपना मतलब निकालो।

मौरूसी जायदाद तो खतम हो गई। मां खफ़ा होकर करबला चली गई। मामूं की बेटी, जिनके साथ ब्याह ठहरा था, उनका निकाह मुर्शिदाबाद के एक लायक़ रईस-जादे के साथ हो गया। ग़रज कि कुल खुश नसीबी की बातें, जिन पर इनकी लोक और परलोक की उन्नति निर्भर थी, इनके खिलाफ़ तय हो गईं। अब अगर बासी रोटी मिल सकती है तो इन्हीं जालियों की भीख से

मिल सकती है। वह फ़ायदे की उम्मेद आइन्दा या किसी और तरीक़े से, जिसमें चाहे ज़िल्लत भले ही हो, पर जान तो चैन से रहेगी। इसके साथ ही इनको यह भी ख़्याल आया कि अच्छा अब उन लोगों को लेना चाहिये जिनसे हमने बेवकूफ़ी और ग़फ़लत के ज़माने में पहलू-तिही (उपेक्षा) की थी। इस तरफ़ कुछ जीने की सूरत नज़र आती थी। मगर अफ़सोस कितनी ज़िल्लत होगी। यह बात—'क्यों हम न कहते थे'—किससे सुनी जायगी। मगर जो कुछ हुआ ठीक है और हम उसके सुनने के सज़ावार हैं। फिर इसमें बुराई क्या है? कहने दो। यह तो देखो कि कुछ अपना मतलब भी किसी से निकल सकता है। अच्छा वह लोग कौन हैं जिनसे कुछ उम्मेद हो सकती है। सबसे पहले मिर्ज़ा काज़म अली का ख्याल आया। अफ़सोस मैंने उसके साथ बुराई की। उसके मौरूसी हक़ों से आँख फेरकर, ठीक इस वक्त जब कि मुझे सबसे ज्यादा उसी पर भरोसा चाहिये था, मुसाहिबों से उसे निकाल दिया।

काज़म अली के साथ ही ख़ुरशेद का ख्याल आया। आज मालूम हुआ कि बाज़ारू रंडी होने पर भी वह क़द्र के क़ाबिल औरत थी। अफ़सोस अगर किसी ने दुनिया में मुझसे मुहब्बत की है तो वह ख़ुरसैद थी। सच बात कहने के जुर्म पर उसे मैंने निकाल दिया और ऐसा नाराज़ हुआ कि उसने कई बार देखने की दरख़ास्त की और मैंने बुरी तरह से जवाब साफ़ दिया। अब उसके दिल में मेरी तरफ़ से क्या जगह बाक़ी रही होगी। अफ़सोस मिर्ज़ा काज़म अली पर कितनी बड़ी तुहमत (अपराध) लगाई गई। इस वक्त भी और अब भी ईमान से कह सकता हूँ कि मिर्ज़ा काज़म अली का दामन इस लौस (ऐब) से पाक था। ख़ुरशेद को सिर्फ़ उनकी सोज़-ख़्वानी (मर्सिया पढ़ने) की वजह से

उनकी तरफ़ तवज्जह थी। वह जिनको मैं अपना सच्चा दोस्त और जां-निसार समझता था, उनकी निगाहें खुरशैद पर भी पड़ती थीं, यह मैं आँखों से देखता था। मगर मेरी आँखों पर कैसे ग़फ़लत के पर्दे पड़ गये कि ऐसे लोगों के ऐब भी मुझे हुनर मालूम होते थे। वह शेख़ जिनको खुरशैद हमेशा मुरशद के नाम से याद करती थी, और मैं बड़ा मानता था, वाक़ई इसी लायक़ था। मेरी तबाही का बानी-मुबानी (मूल कारण) वही मरदूद था। शाह साहब अगरचे मक्र और फ़रेब में बेमिसल (अनुपम) हैं, मगर मुरशद के सामने कुछ नहीं। उसी का बनाया हुआ है। खैर उसके हिस्से में भी बीस पच्चीस हज़ार रुपया आ गया होगा। तीस तीस हज़ार मुंशी और दारोग़ा के पल्ले पड़े। वकील साहब एक पचासा बना ले गये। मुरशद का बेटा कैसा मेरा दोस्त बना हुआ था। वाक़ई वह जालसाजी के फ़न में अपने बाप का बाप है। फिर अगर उसको खुरशैद ख़लीफ़ा कहती थी और मिर्ज़ा काज़म अली ताईद (समर्थन) करते थे तो क्या बेजा था। अच्छा, मगर अब यह बातें दिल ही दिल में रखने की हैं। हाय, इन ज़ालियों ने कैसी ज़बान-बंदी की है कि मुँह से भी कुछ नहीं कह सकता। सब तो सब यह मैंने क्या ग़ज़ब किया कि बुज़ुर्गों के वक्त का तमाम असासा (माल) जिसमें कम से कम लाख डेढ़ लाख का जवाहरात था, अम्माँजान के जाने के बाद ख़लीफ़ा के हवाले कर दिया। भला अब वह मुझे देंगे। तोबा!

महाजनों के तमस्सुक कितने निकल आए। मेरे फ़रिश्तों को भी इन क़र्ज़ों की ख़बर नहीं। यह नशे की हालत में जो चिट्ठियाँ शराब के लिये लिखवाई जाती थीं वह असल में तमस्सुक थे। स्टांप की मुहर छुपाके कैसे दस्तख़त लिये हैं। ज़ालियों ने अपना

पूरा काम कर लिया और उसके साथ ही मेरा काम तमाम कर दिया खैर खुदा समझे।

अम्माँ जान पर कैसे सख्त तोहमत लगाई और मुझे यक़ीन आ गया। आख़िर वह भेद भी खुल गया न! इमामन की चालाकियाँ थीं। इमामन की चालाकियाँ क्या, यह भी मुरशद का फ़िक़रा था। आखिर कुलसुम बेगम चिट्ठी-नवीस का निकाह हकीम साहब से करवा दिया। और क्या फ़िक़रा लिखवाया है कि मेरे कोई औलाद नहीं। भला अम्माँ जान मुझे क्यों ख़ारिज करतीं।

अफ़सोस मैं कहीं का न रहा। सुनता हूँ अम्माँ जान सख्त बीमार हैं। अगर, खुदा न करे, कोई बात गड़बड़ हुई तो उनके आख़िरी दर्शन से और उनके साथ जो कुछ बचा बचाया है, उससे भी महरूम (वंचित) रहा।

रात भर नवाब साहब इसी उधेड़ बुन में रहे। इतने में सुबह की तोप चली। मसजिदों में अल्लाह अकबर के नारे की सदा गूँजने लगी। ठंडी हवा के झोंके आने लगे। नवाब रात भर के जागे हुए थे। नींद ने प्रभाव जमाया। सो रहे। सुबह को कोई आठ नौ बजे आँख खुली।

तिलस्मी कमरा अब उनको एक मामूली कमरा मालूम होता था। उसमें जो चीजें मौजूद थीं, जैसे कुर्सी, पलंगड़ी शीशे अलारम जिन पर इस वक्त सूर्य की तेज किरणें पड़ रही थीं, अब उनकी निगाह में मामूली चीजें मालूम होती थीं। तिलस्मी दरवाजा क्या, एक शीशे का अलमारी-नुमा दरवाजा था। पन्ने के पट में कैसे सब्ज़ शीशे लगे हुए थे। अब उन्होंने बेतकल्लुफ़ उस दरवाजे को खोला। उस दरवाजे के नीचे एक सब्ज़ कपड़े

का पर्दा पड़ा था। उसको उठाके देखा। एक काठ का दिलहे-दार दरवाजा नजर आया। नवाब ने हिम्मत करके उसे भी खोला। सारे तिलस्मों का भेद एक आन में खुल गया। देखा कि एक कमरा है, मामूली तौर से सजा हुआ। उसमें एक पलंग लगा है। वही शख्स जिसको यह घनश्याम जोगी समझे हुए थे (या असली बात से जानकर अनजान बने हुए थे) पड़ा सो रहा है। उसी के पाँय ते सब्ज़-क़बा वही रात का लिबास पहने ग़ाफ़िल सो रही है। शराब की बोतल औंधी पड़ी है। गिलास टूटा हुआ अलग रक्खा है। सामने चौकि पर लोटा पानी का, घड़ोंची पर दो घड़े कोरे कोरे रक्खे हैं। उन पर कुझरे ढके हुए हैं।

इस वक्त नवाब साहब को मालूम हुआ कि परस्तान के पर्दे के पीछे वैसी ही दुनिया आबाद है जैसी इस तरफ़ है, जहाँ हम आप रहते हैं।

× × ×

देखो इस तरह भी मिल लेते हैं मिलने वाले,
शमा का बस न चला बज़्म में परवाने से।

नवाब साहब रोज़ की तरह तिलस्मी कमरे का ताला बन्द करके नीचे उतरे। मदार बख्श ने हुक्का लगाया। नवाब साहब हुक्का पीते जाते हैं और पिछली रात से उस वक्त तक जो कुछ देखा और सुना था, उसमें से हर बात के एक एक पहलू पर नजर है।

आइन्दा जिन्दगी के मनसूबे बाँध रहे हैं। दौलत की कमी में तो कोई शक ही नहीं। मगर उसका कुछ रंज नहीं क्योंकि

दौलत जमा करने में आपको कुछ मेहनत न करनी पड़ी थी। पिछली बातें नवाब साहब की निगाह में एक स्वप्न से ज्यादा वक़त (महत्व) न रखती थीं। अब जिस चीज़ का सबसे ज्यादा ख्याल है वह सब्ज़-क़बा की सूरत है। एक तो उसका घाव बरसों से था। उसका कुछ न कुछ असर जरूर बाक़ी रहा होगा। दूसरे ग़ैर (अन्य पुरुष) के क़ब्ज़े में उसे देखकर बदला लेने की इच्छा ने उस बचे बचाये असर को और भी तरक्क़ी दे दी।

यह क्या कि ग़ैर मज़े ले तुम्हारे जोबन के
यह इत्तफ़ाक़ हमें और हम रहें महरूम।

यह तो हरगिज़ न होगा कि हम महरूम रहें। अच्छा आज रात को समझा जायगा। मगर देखो दुश्मन पर कहीं हमारे इरादे ज़ाहिर न हो जाएँ, वरना ग़ज़ब हो जायगा। फिर कामयाबी बड़ी मुश्किल है। इस वक्त नवाब के अंगों में ऐंठन ज़ोर से हो रही थी। मदार बख्श से चार आने का क़िवाम उधार मँगवाया। दो ही चार छींटे चंडू के पिये होंगे कि तबियत चंगी हो गई। थोड़ी देर के बाद ख़लीफ़ा जी तशरीफ़ लाये। उन्होंने पिछली रात को बहुत ज्यादा शराब पी थी। उसका असर चेहरे से ज़ाहिर था। *नवाब ने इस तरह से बात चीत छेड़ी।*

नवाब—यह आज आपके चेहरे का क्या हाल है? मालूम होता है रात को कहीं ख़ूब उड़ाई।

ख़लीफ़ा—जी हाँ। आपके पास से घर को जाता था कि रास्ते में मियाँ फ़िद्दू मिल गये।

नवाब—(बात काट के) कौन फ़िद्दू?

ख़लीफ़ा—वह हमारे महल्ले में एक छोटे ख़ाँ गंधी रहता

है। पहले तो कुछ न था, अब बड़ा कारखाना हो गया है। फ़िद्दू उसीका लड़का है। बाप तो बेचारा बुड्ढा हो गया है। अब यह है कि दौलत लुटा रहे हैं। हज़ारों रुपये डोर कनकौए में उड़ा दिया। दो सौ रुपये महीने की रंडी नौकर है। शहर के दस पाँच गुर्गे साथ रहते हैं। शराबें पी जाती हैं। मैं तो, आप जानिये, ऐसी सोहबतों से भागता हूँ। मगर दुआ सलाम मुद्दत से है। वह इस सबब से कि एक दिन यह छुट्टन के कमरे में बैठे थे। मैं भी कहीं इत्तफ़ाक़ से जा पड़ा। यह बहुत पिये हुए थे। और छुट्टन से उस ज़माने में इन्सपेक्टर साहब से मुलाक़ात थी। उनका आदमी बुलाने आया। उन्होंने कुछ उसको सख्त सुस्त कहा। भला, पुलिस का आदमी ऐसी कब सुनता है। वह उस वक्त तो चुपका चला गया। थानेदार साहब से सब हाल कहा। उन्होंने हुक्म दिया, जिस वक्त कमरे से नीचे उतरे, फ़ौरन मरम्मत कर दो। फिर देख लिया जायगा। लिहाज़ा ऐसा ही हुआ। मैं भी साथ था। मगर मुझसे क्या वास्ता। थानेदार साहब का हुक्म क़तई (अंतिम) था। भला क्योंकर टल सकता। पुलिसवालों ने खूब ही मार लगाई और फिर पकड़कर थाने पर ले गये। मैं भी साथ साथ चला गया और दारोग़ा साहब से कह सुनकर मामला करा दिया।

नवाब—(दिल—में हाँ, मैं सुन चुका हूँ, पाँच सौ रुपये आप भी खा गये)—(ख़लीफ़ा जी से) वाक़ई आपने बड़ा काम किया। मैं सुन चुका हूँ।

ख़लीफ़ा—उस दिन से यह हो गया है कि जहाँ मुलाक़ात हो जाती है, पीछा छुड़ाना मुश्किल पड़ जाता है।

नवाब—जी हाँ, फिर दोस्ती में तो ऐसा होता ही है। तो कै बोतलें चढ़ीं।

ख़लीफ़ा—पाँच बोतलें एकशा नंबर वन की मेरे सामने खुलीं। और पहले जितनी खुल गई हों, उसको मुझे ख़बर नहीं।

नवाब—भई आज तो मेरा यही जी चाहता है।

ख़लीफ़ा—नवाब ऐसा न करना, जुमेरात है। तुमको शाह साहब ने मना किया है।

नवाब—जी, वह जिसके लिये एहतियात की गई थी उसके नार में मैं दान-पुण्य कर चुका हूँ। अब कोई ज़रूरत परहेज़ की नहीं।

ख़लीफ़ा—यह आप जानिये, मैं नहीं कह सकता।

बात यह थी कि ख़लीफ़ा ने वाक़ई बहुत पी थी। इस वक़्त उसका ख़ुमार था। जो उनका जी चाहता था कि किसी तरह ख़ुमार दूर किया जाय। इधर नवाब ने अपना पूरा इरादा ज़ाहिर किया। ऊँघते को ठेलते का बहाना।

नवाब—देखो तहवील (रोकड़) में कुछ है?

ख़लीफ़ा—मुंशी से बुलाकर पूछिये।

नवाब मुंशी जी के नाम पर चौंक पड़े। इसलिये कि यह वह बुज़ुर्ग थे कि हज़ारों रुपये उन्होंने नवाब के ग़बन किये। जालियों के चक्र में मुरशद के बाद इन्हीं की राय होती थी। नवाब का तमाम घर गृहस्थी का सामान, जो ख़लीफ़ा जी के हमलों से बचा, वह इनके हाथ लगा।

नवाब—वह तो कई दिन से नहीं आए। (मदार बख्श को आवाज़ दी) क्यों मुंशी जी कैसे हैं?

मदार बख्श—जी हाँ, कई दिन से घुटनों में दर्द है।

नवाब—तो फिर काहे को आने लगे ? (खलीफ़ा जी से) अच्छा तो आप जाइये। एक पाँच रुपये मेरे नाम से माँग लाइये।

खलीफ़ा—आप जानते हैं कि मुझसे उनसे रंज है। मैं न जाऊँगा।

नवाब—मदार बख्श, अच्छा तुम जावो।

मदार बख्श गया और बेकाम किये हुए वापिस आया। मुंशी जी साहब ने कहला भेजा कि मेरे पास एक हब्बा नहीं है।

नवाब—यह मुंशी जी रहते कहाँ हैं ?

मदारबख्श—यह क्या साहगंज के नाले में मकान है।

नवाब—अच्छा तो मैं खुद जाता हूँ।

खलीफ़ा—हाँ आपही ज़रा तकलीफ़ कीजिये तो काम बन जायगा।

इन सफ़हों के लेखक ने आज नवाब को खुद देखा था क्योंकि उस ज़माने में लेखक भी वहीं रहता था। बल्कि उस वक्त मुंशी जी भी वहीं तशरीफ़ रखते थे। लेखक को उसके और मुंशी जी के मामलों से कुछ जानकारी न थी। मगर इतना मालूम हुआ कि नवाब साहब अमुक पिता के अमुक पुत्र हैं। अब तबाह हो गये हैं। मुंशी जी से थोड़ी देर तक बातें कीं। फिर मुंशी जी मकान के अन्दर चले गये। लेखक से और नवाब से बातें हुआ कीं। फिर मुंशी जी बाहर आए और नवाब से वायदा किया कि मैं एक बजे रुपया भिजवा दूंगा। शायद कोई घड़ी थी, उसके गिरवी रहने की बात हुई थी। नौजवान आदमी थे। छरेरा बदन था। खिलती सांवली रंगत थी। आँखें बड़ी

बड़ी थीं। मूछें निकलती आती थीं। कोई छब्बीस सत्ताईस बरस की उम्र थी। चेहरे से बुद्धिमानी टपकती थी। महीन शरबती का अंगरखा, विलायती चिकन का कुर्त्ता, औरेब का चुस्त घुटन्ना, कंधों पर जाली पर को चिकन का रूमाल संदली रँगा हुआ, हाथ में एक छड़ी, उस पर सब्ज यशब की मूँठ लगी हुई थी। कान में पन्ने का लटकन शायद न था।

नवाब—(मुंशी जी से) अच्छा तो यह काम आज ज़रूर कर दीजिये। मुझे बड़ी ज़रूरत है।

मुंशी जी—(जैसे बड़े ताज्जुब में हो) जी आपकी ज़रूरतें यों ही रहा करती हैं।

नवाब—(लज्जा के स्वर में) अच्छा तो आपको क्या। यह काम कर दीजिये, फिर तकलीफ़ न दूँगा।

मुंशी जी—और वह जो पाँच रुपये परसों गये थे।

नवाब—वह खर्च हो गये।

मुंशी जी—तो वह भी इसी में शामिल कर लिये जाएँगे। और सूद कट जायँगे।

नवाब—नहीं पूरे पाँच दीजियेगा। सूद न काटियेगा।

मुंशी जी—आप तो इस तरह कहते हैं जैसे मैं अपने पास से रुपये निकाल के दूँगा। भला महाजन बग़ैर सूद काटे रुपया देगा ?

नवाब—नहीं, जिस तरह बने पाँच रुपये दीजियेगा। सूद न काटियेगा।

मुंशी जी—अच्छा जाइये। जहाँ तक बन पड़ा, कोशिश करूँगा।

नवाब—तो कब तक ?

मुंशी जी—कोई दो बजे तक।

नवाब—आपके भरोसे रहूँ ?

मुंशी जी—हाँ, हाँ। कहता तो हूं।

इसके बाद नवाब साहब मुंशी जी से रूख़सत हुए। मुंशी जी फ़ौरन अंदर चले गये। फिर लेखक से दो तीन बातें हुई। इसके बाद बड़े तपाक से हाथ मिलाके चले गये।

घर पर पहुँच के देखा कि ख़लीफ़ा जी ने देसी शराब की एक बोतल अपने पास से मंगाली है। नवाब साहब का इन्तज़ार किये बिना दो दौर पी चुके हैं। नवाब साहब के पहुँचने के बाद उनकी भी ख़ातिर की गई। नवाब ने आज देसी शराब पी। तजुर्बे से मालूम हुआ कि नशा हर शराब का एकसा होता है। बल्कि देसी में कुचला मिला होता है, इसलिये नशा विलायती से ज़्याद होता है। मगर विलायती का नशा साफ़ होता है और देर तक रहता है। देसी में यह बात नहीं। बदमज़ा हद से ज़्यादा होती है, बू बहुत आती है। हर सूरत से नवाब ने अपनी हालत को देखते देसी शराब को पसंद किया। एक बजे का वायदा था। तीन बजते बजते तीन रुपये मुंशी जी ने मदार बख़्श के हाथों भेज दिये। फ़ौरन एक रुपये की दो बोतलें आईं। इस वक्त तक और दोस्त भी जमा हो गये थे। इस वक्त से शाम तक और शाम से नौ बजे रात तक ख़ूब जल्सा रहा। इसके बाद जल्सा ख़तम हुआ। ख़लीफ़ा ज़ी रोज़ की तरह घर गये, यानी परस्तान के पर्दे के पीछे पहुँचे। नवाब साहब तिलस्मी कमरे में दाख़िल हुए। चलते वक्त चुपके से एक बोतल मदार बख़्श से और मँगाई। उसे अपने साथ लेते गये।

नवाब साहब वक्त का इन्तज़ार करते रहे। अलारम नहीं दिया ताकि पर्दे के पीछे के लोग ग़ाफ़िल होके सो जायँ। यहाँ तक घनश्याम जोगी के खुर्राटों की आवाज़ आने लगी। इसके बाद नवाब ने अलारम दिया। सब्ज़-क़बा तिलस्मी दरवाज़े में आके खड़ी हुई। नवाब ने फ़ौरन उठके तिलस्मी दरवाजे को खोल दिया और सब्ज़-क़बा का हाथ पकड़कर कमरे के अन्दर खींच लिया और ख़ुद पर्दा उठाके दूसरी तरफ़ के दरवाज़े को बंद करके ताला लगा दिया।

सब्ज़-क़बा—हाय, आज यह क्या, रोज़ के ख़िलाफ़।

नवाब—बरसों से इश्तयाक़ है। आज तो ज़रा हसरते दिल की निकाल लें।

सब्ज़-क़बा—देखिये अच्छा न होगा।

नवाब—अच्छा न होगा तो बुरा भी न होगा।

सब्ज़-क़बा—देख पछतायेगा मेरा जो बुरा दिल होगा,
वस्ल परियों का न तुझको कभी हासिल होगा।

नवाब—बस दिल्लगी जाने दो। साफ़ साफ़ बताओ कि तुम हो कौन और यह वाक़ा क्या था जिसने मेरे लाख डेढ़ लाख रुपये पर पानी फिरवा दिया। शाह जी तुम्हारे कौन हैं? क्योंकि जब से मैंने तुम्हें देखा है, मुझे कुछ और ही सुबह है।

सब्ज़-क़बा—शाह साहब मेरे बाप हैं, और कौन हैं।

नवाब—हाँ मेरा भी यही ख़याल था। घनश्याम जोगी से कब की मुलाक़ात है।

सब्ज़-क़बा—(हंसके) बरसों से मेरा उनका ताल्लुक़ है।

नवाब—मुझे ख्याल पड़ता है कि तुम कुछ दिनों सभा में भी नाच चुकी हो।

सब्ज़-क़बा—बहुत दिनों तो नहीं। हाफ़िज़ की सभा में कोई छै सात महीने तालीम ली थी।

नवाब—हाँ मुझे याद पड़ता है कि तुम सब्ज़ परी बनती थीं। यह कोई सात आठ बरस की बात है।

सब्ज़-क़बा—जी हाँ मैंने भी आपको देखा था।

नवाब—अब यह कहो कि हम से मुलाक़ात रक्खोगी।

सब्ज़-क़बा—क्या हर्ज है। मगर इस वक्त मुझे जाने दीजिये।

यह कहकर सब्ज़-क़बा उठ खड़ी हुई। नवाब ने फिर हाथ पकड़ कर बिठाना चाहा।

सब्ज़-क़बा—देखिये मुझे जाने दीजिये। ऐसा न हो वह जाग उठें।

नवाब—फिर जाग उठें। कर ही क्या सकते हैं।

सब्ज़-क़बा—तो नवाब यह भी तो कोई ज़बरदस्ती है।

नवाब—जी हाँ, ज़बरदस्ती है।

सब्ज़-क़बा—देखो मैं चीखती हूँ।

नवाब—इससे क्या होगा। दरवाज़े में मैंने पहले ही ताला डाल दिया है। नीचे के दरवाज़े भी बंद हैं। फाटक में ताला लगा है इस वक्त तो रुस्तमे-हिंद की भी मजाल नहीं जो मेरे पास आ जाए।

सब्ज़-क़बा—और यह दोस्ती का कोई ख्याल नहीं।

नवाब—जब और लोगों को दोस्ती का ख़याल न हो, तो हमें क्यों हो।

सब्ज़-क़बा—अच्छा तो क्या कुछ आज ही पर निर्भर है। मैं तो रोज़ आती हूँ।

नवाब—जी, बस अब तुम कहाँ और मैं कहाँ। भेद खुल गया। कुछ ही दिन में यह सब कारख़ाना मिटा चाहता है। न यह तिलस्मी कमरा होगा न यह साज़ सामान। यह सब दौलत के ढकोसले थे। जब दौलत नहीं तो यह सामान कहाँ? हर हालत में आज रात को तुम्हें यहीं रहना होगा।

सब्ज़-क़बा—मुझे उज़्र ही क्या, मगर यह सब समझ लीजिये कि अगर वह जाग उठे तो आपका तो कुछ नहीं बना सकते, मुझे मार डालेंगे।

नवाब—मैं अब तुम्हें यहाँ से जाने न दूँगा। खुदा की मेहरबानी से तुम्हारे खाने भर को अब भी बहुत है।

सब्ज़-क़बा—देखो, नवाब, दग़ा न देना। यह न हो कि मैं उधर से भी जाऊँ और इधर से भी।

नवाब—नहीं ऐसा न होगा। ख़ातिर जमा रक्खो।

सब्ज़-क़बा—मगर मैं तो यह समझती हूँ कि खुल्लम-खुल्ला तुम उनसे क्यों बिगाड़ो। अभी चोरी-छुपे बहुत रोज़ तक निभ सकेगी।

नवाब—अच्छा तुम्हारी मर्ज़ी, मगर यह डर है कि ऐसा न हो वह तुम्हें यहाँ से उठा ले जाँए।

सब्ज़-क़बा—इसका यक़ीन रक्खो। पहले तो यहाँ से उठाएँगे नहीं और अगर ऐसा हो भी तो मैं खुल्लम-खुल्ला निकल आऊँगी।

नवाब—सच कहती हो ? क़सम खाओ ।

सब्ज़-क़बा—ख़ुदा रसूल की क़सम, हज़रत अब्बास की क़सम, अपनी जान की क़सम, अगर तुम मुझे सहारा दो, तो मैं तुम्हारा साथ न छोड़ूँ। उस मुए से मुझे ख़ुद नफ़रत है। एक तो मुर्दे के मुँह से बू ऐसी आती है जिससे मेरा दिमाग़ परेशान हो जाता है ।

नवाब—पलीत तो है ही। अच्छा तुम मेरे पास बैठो। मैं तुम्हें ज़िंदगी भर रोटी दूँगा।

सब्ज़-क़बा मगर एक बात है कि दरगाह में चल कर क़सम खाओ कि ज़िंदगी भर न छोड़ूँगा और न दूसरी औरत करूँगा।

नवाब—हाँ, मैं क़सम खाऊँगा, मगर तुम को भी क़सम खानी होगी ।

सब्ज़-क़बा—हाँ आँ, मैं पहले क़सम खाऊँगी। देखो मुझे हर तरह तुम्हारा साथ मंजूर है। इस मुए जालिए का यक़ीन ही क्या है। अम्मां से मुझसे बनती नहीं दर दर की ठोकरें खाना मुझे मंजूर नहीं ।

नवाब—बहतर है। मगर एक दौर तो हमारे साथ पियो।

सब्ज़-क़बा—ऐ हे, नवाब थोड़ी ही देना।

नवाब—वाह मैं सुन चुका हूँ तुम ख़ूब पीती हो।

सब्ज़-क़बा—पीती तो मैं ज़रूर हूँ पर बहुत नहीं पीती हूँ। आज बहुत सी पी चुकी हूँ।

नवाब ने कसके एक दौर सब्ज़-क़बा को दिया, एक आप पी लिया।

हमसे पूछे कोई माशूक़े शराबी के मज़े,
नशे के चढ़ते ही लेंगे बे हिजाबी के मज़े।

× × ×

एक नामी ऐय्याश का क़ौल है कि औरतें तीन तरह की होती हैं। पहली—हूरें। दूसरी—परियाँ। तीसरी—चुड़ेलें। हूरें वह जिनके बारे में किसी शायर का यह शेर मशहूर है—

दु चीज़ क़ुव्वते-रूहे अस्त वो हम बशरअ हलाल,
सरोदे ख़ानये हम-साया व हुस्न रह गुज़रे।

(दो चीज़ें रूह को ताज़गी देने के लिए अच्छी हैं और शरअ से भी हलाल हैं, एक पड़ोसी के यहाँ का गाना और राह चलता सौन्दर्य।

परियाँ वह जो तारों की छाया में आती हैं और तारों की छाया में चली जाती हैं। चुड़ेलें यानी मा-बाप की बेटियाँ जो ब्याह कर आती हैं। यह वह नेक-बख़्तें (पतिव्रता) हैं जो ज़िंदगी भर पीछा नहीं छोड़तीं और मरने के बाद भी चालीस दिन क़ब्र पर बैठा करती हैं। एक ईरानी शायर कहते हैं कि जहाँ औरत के दो तीन बच्चे हुए बुज़ुर्गों में दाख़िल हो जाती हैं। उसका अदब करना चाहिये। बेचारे हकीम साहब की ब्याहता बीवी उस श्रेणी में दाख़िल थीं, जिसका ज़िक्र ऊपर किया गया है। जब से हकीम साहब ने दूसरा ब्याह किया था अपने चीथड़ों से दुखी रहती थीं। हर वक़्त मुँह फूला हुआ, नाक चढ़ी हुई, जो काम करती हैं झटक-पटक के। चूड़ियों की झंकार बार बार सुनाई देती थी। बार बार आग लगे, हज़रत बीवी की झाड़ू फिरे, तिल फूटते रो देना। हर वक़्त बड़बड़ाना ग़रज़ कि नाक में दम था।

गुलाबी जाड़े के दिन थे। ख़ुदा के फ़ज़्ल (कृपा) से लखनऊ की आब-हवा सम-शीतोष्ण थी। बड़े बड़े नामी गरामी हकीम ऐसी फ़सल में ख़ाली रहते थे (ख़ुदा करे हमेशा ख़ाली रहें!)। हकीम साहब कुछ ऐसे नामवर हकीमों में भी न थे। सिर्फ़ महल्ले के लोग ज़रूरत पड़ने पर या अहतियात के लिये नुस्ख़ा लिखवा लिया करते थे। हकीम साहब के पास मरीज़ इस वजह से भी कम आते थे कि आपने कुछ दिन से मियाँ नबीबख़्श के भतीजे हसनअली को दरगाह के पास अत्तारी की दूकान करा दी थी। हर एक मरीज़ से यही कहते थे कि वहीं नुस्ख़ा बंधवाना। एक तो ख़ुद ही भारी दामों का नुस्ख़ा लिखते थे, उस पर मियाँ हसनअली पैसे के दो पैसे लेते थे क्योंकि हकीम साहब से आधा साझा था। उसकी कसर क्योंकर निकलती। एक और सबब हकीम साहब के व्यापार की मंदी का यह भी था कि इस महल्ले में एक ब्रांच अस्पताल खुल गया था। उसमें मुफ़्त दवा मिलती थी। इन कारणों से हकीम साहब बिलकुल बेकार रहते थे। हकीम साहब को कुछ इसकी परवा न थी क्योंकि आपने अपने महल्ले के ग़रीबों को रुपया क़र्ज़ दे देकर अकसर मकान रहन कर लिये थे जो धीरे धीरे हकीम साहब के क़ब्ज़े में आ गये थे। सात आठ दूकानें बाज़ार में बनवा दी थीं। इन सब में किरायेदार रहते थे। मतलब यह कि खाने पीने की तरफ़ से बिलकुल बे-फ़िक्री थी। ख़ैर।

नौ बजे हकीम साहब घर में गये।

हकीम साहब—दस बजा चाहते हैं, अभी तक खाना नहीं तैयार हुआ।

बीबी—फिर नहीं तैयार हुआ, क्या करें। जब सौदा आएगा

तभी तो पकेगा। अभी तो नबीबख्श ने अरवियाँ लाकर दी हैं। गोश्त निगोड़ा गला नहीं। लकड़ियाँ गीली सुलगती नहीं। फिर कोई चूल्हे में अपना सर लगा दे।

हकीम साहब—मैंने छै बजे सौदे के पैसे नबीबख्श को दिये थे, वह अब अरवियाँ लाये हैं। रास्ते में बैठकर हुक़्क़ा पीने लगे होंगे।

मियाँ नबीबख्श बहुत ही मज़ाक़ करने वाले आदमी थे। जब हकीम साहब घर में जाते थे, वह अंदर के दरवाज़े के पास कान लगाये खड़े रहते थे। इसका मतलब यह था कि घर में जो बातें होती हों, उन्हें सुनें। वक़्त वक़्त पर हाँ में हाँ मिलाते रहें। शायद कोई ऐसी बात कान में पड़ जाय जो काम की हो या अगर हकीम साहब या उनकी बीवी कोई बात आपकी शान के ख़िलाफ़ कहें तो फ़ौरन उसकी काट कर दी जाय। इसलिये इस मौक़े पर अरवियाँ देर में लाने का इलज़ाम लगाया गया था, उसको काट करना ज़रूरी था।

नबीबख्श—······में ऊँट बदनाम। नाव किसने डुबाई, ख्वाजा खिज़र ने। अकेला आदमी, दो दो जगह का सौदा सुलफ़।

दो जगह का जिक्र करना कुछ इस वक़्त ज़रूरी न था। सिर्फ़ हकीम साहब की बीवी को भड़काना मंज़ूर था।

बीवी—क्यों दो घरों का सौदा सुलफ़ कैसा? बेगम साहिबा के नौकर चाकर क्या हो गये।

यह एक ऐसी पते की बात थी कि हकीम साहब बेचारे तो गोया जीते जी ज़मीन में समा गये।

हकीम साहब—(नाराज़ होकर) चलो तुन्हें इस क़िस्से से क्या मतलब। तुम अपना काम करो।

बीवी—लो हमें कुछ मतलब ही नहीं।

हकीम साहब—तुम से हज़ार बार कह दिया कि इन झगड़ों से तुम्हें क्या। जो बात होनी थी वह हो गई।

बीवी—ख़ूब हुआ। चलो ख़ुदा मुबारक करे। है कोई सौ दो सौ रुपये का वसीक़ा (पेंशन) बेगम साहिबा का ?

हकीम साहब—न सही वसीक़ा। कोई रुपये की लालच से मैंने शादी की है।

बीवी—ख़ुदा झूठ करे और क्यों निकाह किया था। हुस्न (सौंदर्य) देख के किया होगा। कम उम्र की होंगी।

इस मौक़े पर मियां नबीबख्श ने ग़ज़ब का टुकड़ा लगाया कि बीवी की बाछें खिल गईं और हकीम साहब बेचारे गुल दर गुल हो गये।

नबीबख्श—मियां बेचारे फँस गये। उम्र में तो हकीम साहब हमारे उनके आगे के बच्चे मालूम होते हैं। सूरत शकल भी कुछ ऐसी अच्छी नहीं है।

बीवी—तो क्या तुम्हारे सामने होती हैं ?

नबीबख्श—अब तो सामने नहीं हुईं। जब नवाब अली बहादुर के पास नौकर हुई हैं, उन दिनों में कम उम्र थी। मैं भी नवाब साहब के मकान पर जाया करता था। वहीं मैंने उन्हें देखा था। नवाब के साथ चंडू का भी कुछ दिनों शौक़ किया था।

बीवी—और यह कहो तो नौकर काहे में थीं।

नबीबख्श—अब यह मैं आपसे क्या बताऊँ। रईस आदमी थे। उनके दिल बहलाने को नौकर थीं।

बीवी—तो यह कहो तुम बहुत दिनों से जानते हो।

नबीबख्श—ऐ हुजूर मैं तो उनकी सात पीढ़ी से वाक़िफ़ हूँ। उनकी अम्मां क्या थीं। ख़ुदा बचाये ऐसी औरतों से! और यह ख़ाला साहब, जो अब हैं, उनको क्या आप कम समझती हैं। एक ही छटी हुई हैं।

बीवी—इनकी (हकीम साहब की) ख़लिया सास का हाल मुझसे पूछो। नवाब माजुद्दौला की सरकार में हमारे अब्बा जान दारोग़ा थे, वहीं यह नौकर हुई थीं। वहाँ नवाब की लड़की का कड़ा चुराया, निकाली गई। अब तो सुना है बड़ी पाक साफ़ बनी हैं।

हकीम साहब—वह न होंगी। बेचारी यात्रा कर आई हैं। पाँचों वक्त की नमाज़ पढ़ती हैं। वह कोई और होगी।

बीवी—मैं सच कहती हूँ आपकी ख़लीया सास ने कड़ा चुराया था नवाब ने मुश्कें बाँधी थीं। वह तो कहो हमारे अब्बा जान ने बचा लिया।

हकीम साहब—जी हाँ। आपके अब्बाजान ऐसे ही थे।

बीवी—हमारे अब्बाजान को तो ख़ुदा ने वह लियाक़त दी थी कि जिधर से निकल जाते थे। लोग उनको झुक झुक कर सलाम करते थे।

हकीम साहब—क्यों नहीं। नवाब के यहाँ कबूतर बाज़ों में नौकर थे। अब तुमने दारोग़ा साहब कर दिया।

बीवी—ख़ैर दामाद ने कबूतरबाज तो बना दिया।

हकीम साहब—सारा जमाना जानता है।

बीवी—सारा जमाना जानता है। रवन्नों में नौकर थे। फिर आपने क्यों झक मारा।

हकीम साहब—हमने क्यों झक मारा।

बीबी—अच्छा जिसने तुम्हारी शादी की, उसने झक मारा।

हकीम साहब—मामूँ ने फँसा दिया। हमारे अब्बाजान तो राज़ी भी न थे।

बीवी—चलो अब तो ज़ात-वंती लाए हो माँ की बेटी, दान दहेज़ वाली। जायदाद, नोट, तनख्वाह, वसीक़ा, ख़ाक।

हकीम साहब निहायत संकट में थे। कोई बात बन न पड़ती थी। बीवी की गिरफ़्तें इस क़दर माक़ूल थीं कि सिवाय बग़लें झाँकने के और कुछ बन न पड़ता था।

हकीम साहब—चलो तुम्हारे ताने देने को तो हो गया।

बीवी—क्यों। क्या अब इससे भी गई।

हकीम साहब—अच्छा खाना जल्दी तैयार करो।

बीवी—(बावर्ची-ख़ाने से उठकर तख्त पर आ बैठीं) हमसे खाना वाना नहीं पकता। क्या कोई नौकरानी बना रक्खा है। मामाएँ नौकर रक्खो या उस मालज़ादी खानगी से पकवाओ, जिसको बीवी बनाकर बिठाया है।

हकीम साहब—यह तुम्हें हो क्या गया है? मैं कहता हूँ कुछ सिड़न तो नहीं हुई हो। बेकार लड़ती हो।

बीवी—हम क्यों सिड़न होने लगे। सिड़ी तुम, सिड़ी

तुम्हारी बेगम साहिबा, बनी है मुई खानगी। वहीं जाने की देर होती है, इसलिये खाने की जल्दी हो रही है।

हकीम साहब आदमी समझदार थे। देखा कि बीवी बिगड़ गई हैं। अब अगर ज्यादा बहस बढ़ी तो खाना वाना भी न मिलेगा। मुलामियत और नर्मी से चाहा कि बात टल जाय।

हकीम साहब—साहब मुझे कचहरी जाना है। जज साहब दस बजे आ जाते हैं। अगर पेशी पर हाजिर न हूँगा, मुक़दमा खारिज हो जायगा। तुम्हें लड़ाई सूझी है। फिर लड़ लेना। अब इस वक्त माफ़ करो।

बीवी ने देखा कि मियाँ दब गये, और शेर हो गईं। सच-मुच दिल में ठान लिया कि आज खाना वाना न पकाओ। देखें तो कि मियाँ किस हद तक दब सकते हैं।

बीवी—कचहरी जाना है। यह नहीं कहते कि चहेती बेगम के पास जाना है।

हकीम साहब को वाक़ई कचहरी जाना था। कितने ही कारणों से चहेती बेगम से हकीम साहब से नफ़रत हो गई थी। बल्कि चाहते थे कि किसी तरह पिंड छुड़ाएँ। मगर यह मुमकिन न था। भला चहेती बेगम साहिबा कब पीछा छोड़ती थीं। हकीम साहब थे तो बड़े सयाने मगर इस मामले में ऐसा धोखा खाया कि जालसाज़ी का शास्त्र जितना याद था, सब भूल गये थे। पचास रुपया पानदान का लिख चुके थे। वह अदालत के ज़रिये से वसूल हो सकता था। रोटी कपड़े की फ़ौजदारी से डिगरी हो सकती थी। मेहर की नालिश दीवानी में दायर हो सकती थी। मतलब यह कि कुलसुम बेगम चिट्ठी-नवीस ने—बल्कि असल में मुरशद और ख़लीफ़ा ने—अच्छी तरह मुश्कें कस ली थीं।

चिट्ठी-नवीस को भी हकीम साहब का कुछ खयाल न था।

सिर्फ़ धोखा देकर शादी हुई थी। इमामन महरी और मियाँ अमजद ने अपना अपना हिस्सा पहले ही वसूल कर लिया था। अगरचे हकीम बेचारे के साथ पूरा जाल किया गया, मगर कोई मौक़ा गिरफ़्त (पकड़) का न था। इक़रारनामा इस पेच से लिखवाया गया था कि उससे किसी क़िस्म का जुर्म किसी पर आइद नहीं हो सकता था। कुलसुम बेगम के साथ शादी हुई थी। कुलसुम चिट्ठी-नवीस का नाम था। छोटे नवाब की मा का नाम कोई जानता भी न था क्योंकि वह ख़ुद और उनके बुज़ुर्ग मुर्शिदाबाद के रहने वाले थे। वाक़ई वह जायदाद वाली थीं। कई लाख के नोट थे। उसका सूद मुर्शिदाबाद से आया करता था। लखनऊ के वसीक़ा-आफ़िस से उसको कोई ताल्लुक़ न था। उनके फ़रिश्तों को भी मालूम न था कि उनके नाम से क्या क्या जाल फैलाये गये हैं। शादी होने के दस ही पाँच बरस के बाद यह जालसाज़ी खुल गई मगर हकीम साहब कर ही क्या सकते थे। अब यहीं पर हम एक भेद खोले देते हैं।

वह मकान जो हकीम साहब के नाम रहन हुआ था, उसका रहन-नामा भी जाली था। बात यह थी कि एक औरत को डोली में बिठाकर रजिस्ट्री आफ़िस ले गये। उसके नाम से मकान की रजिस्ट्री और सरख़त हो गया। असल मालिक को इत्तला भी न थी। सिर्फ़ किराये का मकान ले लिया गया था। हकीम साहब इस मुक़दमे को फ़ौजदारी में चला सकते थे। मगर उससे होना ही क्या था। अगर जाल का सबूत पूरा पूरा पहुँचता, तो मियाँ अमजद बरस दो बरस के लिये क़ैद हो जाते। यह ऐसे लोगों में थे जो जेलख़ाने को सुसराल कहा करते हैं।

दो बार इससे पहले क़ैद हो चुके थे। हकीम साहब समझे कि अमजद के क़ैद करने से नफ़ा क्या होगा। सिर्फ़ बदला लेने की चाह ऐसी चीज़ नहीं जिसके पूरे होने से रुपये के गुलाम की तसल्ली हो सकती हो।

इस वक्त हकीम साहब का पेट बिलकुल खाली था। कचहरी जाने की देर हो रही थी। बीवी मचली बैठी थीं।

बीवी—अगर मैं आज से खाना पकाऊँ तो मेरी मुई जनती पर लानत है। मेरे जीने पर लानत है।

आज बीवी ने बुरे वक्त नख़रा किया। एक वजह इसकी और भी थी। वह यह कि बीवी के मैके में एक लड़के की दूध-बढ़ाई हुई थी। वहाँ से हलवे का हिस्सा आया था। उसमें पूरियां और थोड़ा सा क़ीमा गोश्त, पाँच गुलगुले, थोड़ा सा था। वह यह सात बजे से खाकर बैठ रही थीं। गुलगुले बच्चों को खिला दिये। हकीम साहब के लिये बिलकुल सफ़ाई थी।

हकीम साहब—तो खाना फिर तो आज से न पकाना।

बीवी—हम तो क़सम खा चुके। कभी न पकाएँगे।

हकीम साहब ने देखा कि अब शौहर होने का रौब दिखाने का मौक़ा है। बे उसके बात ही न बनेगी। ग़ुस्से में भरे हुए उठे और गोश्त की पतीली, जो चूल्हे पर चढ़ी हुई थी, उसे उठाके अँगनाई में उछाल दिया। इत्तफ़ाक़ से कहीं एक बोटी उछल के बीवी के पाँव पर पड़ गई। अब क्या था, गोया बम का गोला टूटा। बीवी ने चीख़ चीख़ के रोना शुरू किया। तख़्त पर धड़ाधड़ दुहत्तड़ पड़ रहे हैं। हाय मार डाला, हाय जला दिया। है है, मुझे बेवारिसा समझा है। है है अब्बा जान है है अम्मा जान। अब इस तरह से रोना शुरू कर दिया जैसे

इसी वक्त अब्बा जान ने इंतक़ाल किया है। इसके बाद शादी करने वाले (यानी हकीम साहब के मा बाप)—इलाही शादी करने वालों की क़ब्र में कीड़े पड़ें। हाय मुझे किस आफ़त में फँसाया।

हकीम साहब—(बुजुर्गों की ज़िल्लत, (अपमान) पर गुस्सा ही आ गया। किसने शादी, तुम्हारे बाप ने शादी की थी।

बीवी—(रोती जाती हैं और जवाब देती जाती हैं) हमारे अब्बा गऊ आदमी थे। उनसे मुए जालियों ने फ़रेब किया। हाय, हमारे अब्बाजान क्या जानते थे इस मुए जालिये से पाला पड़ेगा। हाय मुए जालिये। खुदा की मार, मुओं को हैजा खाए।

हकीम साहब—बस अब चुप रहो, बहुत हो चुकी।

बीवी—(और चीख़ के) चुप रहूँ। कोस कोस के खा जाऊँगी जैसे मुर्दे तूने मेरा पैर जलाया है।

हकीम साहब—तो क्या मैंने जान के पाँव जला दिया।

बीवी—मैं क़सम खाती हूँ। जान बूझ के पतीली मेरे सर पर खींच मारी। वह तो हट न जाती तो सर फट गया होता। तू तो मेरे लहू का प्यासा है।

हकीम साहब—(अब देखा कि किसी तरह चरखा रुकता ही नहीं, फिर ज़रा नरम हो गये) नेकबख्त, चुप रह।

बीवी—नेक बख्त, नेक बख्त। नेक बख्त तेरी चहेती। नेकबख्त तेरी अम्मां। नेक बख्त तेरी मैना। लो अब हम नेकबख्त हो गये।

हकीम साहब—अच्छा फिर क्या कहूँ। नेकबख्त कोई बुरी बात कही।

नबीबख्श—(ड्योढ़ी में खड़े जंग के मजे ले रहे हैं) खानम-साहब, यह तो कोई बुरी बात नहीं।

बीवी—आज तक नेकबख्त न कहा। बुरी बात हम नहीं सुनते। नेकबख्त उन्हीं को मुबारक रहे जो नेकबख्त हों। हम तो बद हैं।

हकीम साहब—तुम अपनी जबान से बद बनती हो। मैं तो नहीं कहता।

बीवी—हाँ हाँ। हम तो बद हैं।

अब हकीम साहब बहुत ही घबरा गये। इधर इस झगड़े में दस बज गये। हकीम साहब बेचारे चुपके उठे, बाहर चले गये।

नबीबख्श—हुजूर, तरकारी रोटी लाऊँ। खा लीजिये।

हकीम साहब—(समझे कि इस वक्त, यही ठीक है) अच्छा लाओ।

नबीबख्श—पैसे दीजिये।

हकीम साहब ने पाँच पैसे निकाल के दिये। दो पैसे की तरकारी, तीन पैसे की रोटियां।

नबीबख्श—अच्छा तो लाऊँ काहे में। अंदर से दस्तरख्वान और प्याला ला दीजिये।

हकीम साहब अंदर गये। बावर्चीखाने से दस्तरख्वान उठाया। अलमारी पर से चीनी का प्याला उठाया। बीवी आंसू पूछ के बैठी हैं। किन आंखों से देख रही हैं कि यह करते क्या हैं। जोंहीं हकीम साहब प्याला और दस्तरख्वान बाहर लेके चले, बीवी ने प्याला हाथ से छीन लिया।

बीवी—हाँ, हम भूखे बैठे रहें, तुम बाहर तरकारी रोटी मँगा के निगलो। हम तो प्याला न देंगे।

हकीम साहब ने चाहा हाथ से प्याला छुड़ाकर बाहर ले जायँ। इस छीना झपटी में हाथ से प्याला गिर पड़ा। छन से टूट गया।

एक तो गोश्त की पतीली उछाली गई, वह नुक़सान हुआ। दूसरे चीनी का प्याला, बुजुर्गों के वक्त का टूटा। तीसरे भूख की झांझ, बीवी की टेढ़ी हुज्जत का गुस्सा, नबीबख्श के टुकड़ों का खिसयानपन, मुक़द्दमे के खारिज हो जाने का अंदेशा, इस मवाद ने जमा होकर हकीम साहब की क्रोधाग्नि को सुलगा दिया। ढीले हाथ से एक तमाँचा उन्होंने बीवी के झुरियां पड़े हुए गालों पर जमा दिया।

चलिये अब क्या था गोया बेली-गारद की सुरंग में आग बतादी गई। बीवी वहीं पाँव फैला के जमीन पर बैठ गई। दो हत्थड़ चलने लगे। एक चोल जमीन और एक आस्मान।

बीवी—इलाही हाथ टूटें। इलाही हाथ सड़ें। इलाही हाथ सड़ें। इलाही हाथों में कीड़े पड़ें। तमाचा मारने वाला मरे। तमाँचा मारने वाला गारत हो। ऐ मौला तेरी लाठी में आवाज़ नहीं। अठवारा न कटे।

हकीम साहब—अब सजा को पहुँची।

और लो यह कहके हकीम साहब बढ़े। एक तमाँचा और मारा। बीवी ने धड़ से सर जमीन पर दे मारा।

बीवी—ले मुए मैं खुद सर फोड़े लेती हूँ।

वाक़ई बीवी का सर फट गया। धल धल खून बहने लगा। इसके बाद बीवी ने चिल्लाना शुरू किया।

बीवी—(मातम करने के सुर में) हाय अब तो मेरा सिर फूटा। खून बह रहा है। हाय बेवारसा समझ के मुझे मार डाला। हाय सिर फूटा। हाय दिमाग़ फट गया।

शोर व गुल की आवाज़ सुनके महल्ले के लोग दरवाज़े पर जमा हो गये। इसी बीच में, ख़ुदा जाने किसने हकीम साहब के साले को ख़बर कर दी। यह एक गुर्गा-बेतकान लखनऊ के कुड़क-बांकों में शुमार किये जाते थे। बहन के सर फटने की ख़बर सुनके लठ हाथ में उठाया और अपने साथ दस बारह गुर्गों को जमा करके फ़ौरन मौक़े-वारदात पर पहुँच गये। साथ वालों को ड्योढ़ी में खड़ा किया। ख़ुद घर में घुस आए।

अब तो हकीम साहब घबड़ाये।

मज़हर—(हकीम साहब के साले का नाम था। हकीम साहब की तरफ़ बुरे तेवरों से घूर कर) यह क्या हरकत थी।

हकीम साहब—हरकत क्या थी। अपना सर फोड़ लिया।

मज़हर—दुरुस्त। लगे मुझसे जालिया पन करने। यह नहीं कहते कि औरत का सर फाड़ डाला।

हकीम साहब—नहीं, ख़ुद सर फोड़ लिया।

मज़हर—यह अदालत में बयान कीजियेगा। औरत ज़ात को इतनी हिम्मत ही नहीं हो सकती कि अपना सर आप ही फोड़े। क्यों भाई छुट्टन (मज़हर के गुरु-भाई और कुछ दूर का रिश्ता भी था। ड्योढ़ी में लठ बाँधे खड़े थे। दरवाज़े के पास पहुँच गये। अंदर घसे आते हैं)।

छुट्टन—(दरवाज़े के अंदर मुँह डालकर) क्या सचमुच सर फूट गया।

मज़हर—जी हाँ, सर खिल गया। ख़ून का दरिया भरा हुआ है। और जनाब हकीम साहब फ़र्माते हैं कि आप ही सर फोड़ लिया।

छुट्टन—(हँसके) अच्छा तो पुलिस को ख़बर कर दूँ।

मज़हर—(पुलिस को एक गाली देकर) हम दबैल हैं? अभी यहीं इनकी मरम्मत किये देते हैं।

यह कहकर हकीम साहब का हाथ पकड़ के एक दो ठुक रसीद किये। हकीम साहब भी लिपट पड़े। मियाँ मज़हर ने आँटी देकर उनको ज़मीन पर दे मारा और एक दो तीन घिस्से बता दिये कसके। हकीम साहब बेचारे मछली की तरह फड़कने लगे। बीवी दौड़ के कोठरी में जा छुपीं। छुट्टन और उनके साथ के चार पाँच आदमी अंदर घुस आए। हकीम साहब की अच्छी मरम्मत की। मियाँ नबीबख़्श बेचारे मुनमुना से आदमी कर ही क्या सकते थे। मारे ख़ैरख़्वाही के दौड़कर चौकी पर ख़बर दी। वहाँ से एक हवलदार और दो बरक़ंदाज़ चले आए। इज़हार लिये जाने लगे।

× × ×

हवलदार—यह क्या वारदात हुई।

मज़हर—(हकीम साहब की तरफ़ इशारा करके) इन्होंने हमारी बहन का सिर फोड़ डाला।

हवलदार—कहाँ है तुम्हारी बहन।

मज़हर—यहीं है और कहाँ है।

हवलदार—बुलाओ।

मजहर—बुलाएँ क्योंकर। पर्दानशीन औरत है।

हवलदार—तो फिर हम इजहार क्या लिखें।

मजहर—इजहार लिखवा देंगी।

हवलदार—(हकीम साहब की तरफ इशारा करके) तुम्हारे कौन हैं?

मजहर—बहनोई।

हवलदार—(हकीम साहब की तरफ देखकर) आप बतलाइये क्या मामला है?

हकीम साहब—यह तो जैसे आदमी हैं इनकी वज्ऐ से जाहिर हैं। बात यह है कि मैंने दूसरी शादी की है। इस वजह से इनकी बहन बेबात को मुझसे लड़ा करती हैं। आज भी इसी तरह लड़ाई हुई। उन्होंने एक टक्कर जमीन पर मारी। सर में चोट जरूर आई। इतने में किसी ने इनको खबर कर दी। यह वहाँ से दस बाहर लुंगाड़ों को लिये हुए मेरे मकान में घुस आए। कई आदमियों ने मिलकर मुझे मारा।

मजहर—यह झूठ कहते हैं। जिस वक्त मैं आया हूँ, यह अपनी बीबी को मार रहे थे। मैंने आकर छुड़ा दिया।

हकीम साहब—खुदा से डरो। कौन मार रहा था।

मजहर—तुम खुदा से डरते हो। खुद तो औरत का सर फोड़ा और हमसे कहते हो खुदा से डरो।

हवलदार—हकीम साहब बेशक गुस्सा बुरी चीज है। मैं समझता हूँ कि आपने कोई जुर्म नहीं किया। मगर मुकदमा संगीन है। थाने पर जरूर चलना पड़ेगा। और मुसम्मात को भी डोली पर सवार होकर जाना पड़ेगा।

हकीम साहब—मगर आप समझिये कि इसमें एक ज़रा हमारी तौहीन है ।

यह कहकर हवलदार की तरफ़ उन निगाहों से देखा जिसका यह मतलब था कि दस बारह रुपये ले लीजिये और मुक़दमे को यहीं रफ़े-दफ़े कर दीजिये । मियाँ मज़हर भी पुलिस की दस्तंदाज़ी पसंद नहीं करते थे । मुँह फेर के अलेहदा खड़े हो गये क्योंकि यह भी शरीफ़ कहलाते थे । इतने लुंगाड़ेपन के होते हुए भी कुछ शराफ़त की बू बाक़ी थी । बहन का बदला अपनी मर्ज़ी के माफ़िक ले चुके थे और उनको अपने बाहु-बल पर इतना घमंड था कि जब चाहेंगे हकीम साहब को धपिया लेंगे । दूसरे यह भी उनको अच्छी तरह मालूम था कि हकीम साहब ने सर नहीं फोड़ा । यह बहन ही का काम है ।

हवलदार—(हकीम साहब के इशारे को समझे और आँख के इशारे से जवाब भी दे दिया कि इतने में मामला न होगा) नहीं तो हकीम साहब, इसमें मेरा कुछ अख़्त्यार नहीं है । थानेदार साहब के पास चले चलिये । जैसा वे कहेंगे, वैसा किया जायगा ।

हकीम साहब ख़ूब जानते थे कि अगर, ख़ुदा न करे, थानेदार साहब तक जाने की नौबत आई तो बिना एक पचासा दिये हुए छुटकारा न होगा । बहतर यही है कि यहीं कुछ और बढ़ा दो । यह इस फ़िक्र में थे कि एक बरक़ंदाज़, करमख़ाँ नाम का, आगे बढ़ा और हवलदार का हाथ पकड़ के अलेहदा ले गया । दो बातें चुपके चुपके कीं । और चिल्लाकर 'हवलदार साहब, जाने दो । बीवी मियाँ का मामला है । हकीम साहब शरीफ़ आदमी हैं । इधर शिकायत करने वाले की तरफ़ से भी रज़ामंदी ज़ाहिर है । जाने दो ।'

हवलदार—(हँसके) मगर ऐसा न हो कि थानेदार साहब को खबर हो।

करम खाँ—नहीं कौन खबर करेगा।

जीत सिंह—(दूसरा बरक़ंदाज़) जाने दो मुसर कौन बड़ा मामला है। बीवी मियाँ में लड़ाई हुई। लखनऊ की औरतें, तुम जानते हो, कैसी होती हैं।

मज़हर—नहीं तो पुलिस की दस्तंदाज़ी इस मामले में हम भी नहीं पसंद करते।

हवलदार—तुम क्यों पुलिस की दस्तंदाज़ी पसंद करोगे। थानेदार साहब के सामने जाते हुए तो तुम्हारी नानी मरती है।

मज़हर बड़े बांके तिरछे थे, मगर हवलदार के सामने मुँह से बात न निकली। इसलिये कि आपका रंग ढंग इस क़िस्म का था कि पुलिस जब चाहे बदमाशी में चालान कर दे। और आप साल दो साल के लिये आलमबाग़ की सैर कर आएँ। खुलासा यह कि—सर पै आई हुई बला खैर से गुज़र गई।

इस मुक़दमे के तय होने के बाद हकीम साहब ने फिर कचहरी जाने का इरादा किया मगर एक दोस्त ने आकर खबर दी कि मुक़दमा अदमपैरवी में खारिज हो गया। चलिये कचहरी जाने की तकलीफ़ बच गई।

× × ×

सौत

यहाँ तो हकीम साहब पर वारदात गुज़री। वहाँ सुनिये कि नहीं मालूम किसने (किसने क्या ? मियां नबीबख़्श ने) तमाम

वाक़यात ज़रा ज़रा बयान कर दिये। शाम को हकीम साहब जो गये तो बेगम साहिबा ने इस तरह मिजाज पुर्सी की।

कुलसुम बेगम—सुनती हूं आज तो आपके मकान पर बड़ा मार्का हुआ।

हकीम साहब—(झेपकर) जी हाँ, घर में लड़ाई हुई। उन्होंने गुस्से में अपना सर फोड़ लिया। साले साहब दौड़े आये। मुझसे हस्त मुश्त हुई।

कुलसुम बेगम—वह तो मुआ एक ही गुर्गा है। मैंने सुना है उसने तुम्हें उठाके पटक दिया और खूब मारा।

नबीबख्श यहाँ भी साथ थे। यह कैसे मुमकिन हो सकता था कि हकीम साहब कोई बात झूठ कह सकते। क्योंकि मियां नबीबख्श की लल्लो किसी जगह रुकती ही न थी। वहाँ तो ड्योढ़ी में से खड़े खड़े लगा रहे थे, यहाँ आमने सामने बात चीत हो रही थी क्योंकि कुलसुम बेगम ऐसे लोगों (जैसे मियां नबीबख्श) से पर्दा करना शान के ख़िलाफ़ समझती थीं।

नबीबख्श—एक घूसा मियां ने भी करारा मारा था। वह तो उसने दोनों हाथ ऐसे गाँठ लिये कि मियां हमारे फड़फड़ाने लगे।

हकीम साहब—एक घूंसा ? तीन घूंसे मेरे ऐसे पड़े हैं कि मियां मज़हर याद करते होंगे।

नबीबख्श—नहीं हुज़ूर मैं तो खड़ा देख रहा था जब उसने दोनों हाथ आपके जाँघ के नीचे दबाए हैं। उस वक़्त मेरे जी में आया कि अंदर घुस जाऊँ मगर छुट्टन ने हाथ पकड़ के मुझे दरवाज़े से बाहर कर दिया। उस वक्त मुझसे कुछ न बन पड़ा। चौकी पर दौड़ा गया।

हकीम साहब—यह तुमने ऐन बेवक़ूफ़ी की। भला थाने पर जाना क्या ज़रूर था। सारे महल्ले में ज़िल्लत हुई। और पन्द्रह रुपये मुफ़्त देने पड़े।

नबीबख़्श—जी हाँ, अब तो कहिये ही गा। बेवक़ूफ़ी की। जब हवलदार आए हैं जभी तो मज़हर ने आपको छोड़ा है नहीं तो दबाये हुए बैठा था और ऊपर से घूँसे मार रहा था।

कुलसुम बेगम—और बीवी साहिबा कहाँ थीं।

नबीबख़्श—वहीं थीं और कहाँ थीं। जब चौकी पर से आदमी आए हैं उस वक़्त कोठरी में छुपीं।

कुलसुम बेगम—यह सामने बैठी देखा कीं और मियाँ पिटा किये। ख़ुदा ही ऐसी औरतों से बचाए। नाम तो ब्याहता का है। ऐसियों ही से मर्द राज़ी रहते हैं।

नबीबख़्श—(हुक़्क़े का एक कश लेकर) वल्लाह, सच है।

कुलसुम बेगम—मैं तो ऐसे भाई को ख़ाक में मिला देती जो मियाँ को मारे। उड़ जाए वह भाई। ज़मीन का पेवंद हो ऐसा भाई। देखो तो इधर का सारा गला सूजा हुआ है।

नबीबख़्श—गला सूजा हुआ है, मैं कहता हूँ सारा बदन चूर चूर है। मैंने तो उसी वक़्त कहा था। दूध में फिटकिरी डाल के पी लीजिये।

कुलसुम बेगम—तो क्या नहीं पिया ?

नबीबख़्श—कहाँ पिया।

हकीम साहब—नहीं कुछ ऐसी चोट नहीं आई थी।

नबीबख़्श—यह तो मियाँ के कहने की बात है। चोट क्यों

नहीं आई। पुरवाई हवा चलेगी तो मालूम होगा।

यहाँ यह बातें हो ही रही थीं कि इतने में खलिया सास (यानी बी मुग़लानी) माला जपती हुई चली आई। हकीम साहब ने झुककर बंदगी की।

खलिया सास—जीते रहो। सलामत रहो। हाँ मैंने सुना है बड़ी लड़ाई हुई।

अब सारा हाल उनके आगे दोहराया गया। इस तरह कि कुलसुम बेगम अपनी लस्सानी ज़बान में हर वाक़े को बयान कर रही थीं और मियाँ नबीबख्श नमक मिर्चें लगाते जाते थे। और खलिया सास मौक़े मौक़े पर ऊई, हे हे कहती जाती थीं। आख़िर में उन्होंने यह नतीजा निकाला।

खलिया सास—मैं कनीज़ (हकीम साहब की बीवी के छुटपने का नाम था, जिसको बुज़ुर्ग प्यार से और ग़ैर औरतें बेइज्ज़ती से लेती हैं) को बचपने से जानती हूँ बड़ी फ़ैलयाई है।

नबीबख्श—आप सच कहती हैं। मैं तो खुदा-लगती कहूँगा। आज मियां का कुछ भी क़सूर न था। सिर्फ़ खाने के लिये कहा था। उस पर उन्होंने यह आफ़त कर दी। अच्छा वह तो जो कुछ हुआ वह हुआ। आप दूध फिटकरी मंगाती थीं। लाइये लादूँ। उधर से तंबाकू भी अपने लिये लेता आऊँगा।

कुलसुम बेगम ने जीनत (कुलसुम बेगम की मामा का नाम था) आवाज़ देकर संदूक़चा मंगाया।

हकीम साहब—नहीं कोई ज़रूरत नहीं।

कुलसुम बेगम—तुम बका करो। मैं ज़रूर पिलाऊँगी। देखती हो, खाला जान, कहीं दर्द हड्डी में रह जाएगा तो क़यामत हो जायगी।

खलिया सास—नहीं मैं करबला से मोमीयाई लाई थी। वह कहीं रक्खी हुई है। देखूं, संदूक़चे में, यक़ीन है, पड़ी हो।

नबीबख्श—बस तो फ़क़त दूध बाज़ार से मंगवा लिजिये। मोमयाई की क्या बात है। सुना है सारी चोट अंदर से खींच लेती है।

इतने में ज़ीनत संदूकचा ले ही आई। कुलसुम बेगम ने चार पैसे निकाल कर नबीबख्श को दिये। वह दूध लेने बाज़ार गये। खलिया सास मोमयाई ढूँढने के लिये अंदर के दालान में गईं। कुलसुम बेगम और हकीम साहब में फिर उस मामले पर शुरू से बहस छिड़ गई। अब इस बहस का यह रुख बदला कि इस लड़ाई को सौत की ज़ात से किस क़दर ताल्लुक़ है।

कुलसुम बेगम—अच्छा यह तो सब कुछ हुआ। अब यह बताओ कि इस लड़ाई की असल जड़ क्या है।

हकीम साहब—यह तुम आप ही समझ सकती हो।

कुलसुम बेगम—यह तो में पहले ही समझी हुई थी कि मेरे बारे में लड़ाई हुई। फिर मैं अब नहीं छूट सकती तो यह लड़ाइयां रोज यों ही रहें।

हकीम साहब—जी हाँ, सब अच्छे रहे। मेरी जान ग़ज़ब में पड़ गई।

कुलसुम बेगम—सब में तो मैं भी आ गई। मेरे सबब से क्यों तुम्हारी जान ग़ज़ब में पड़ी। और अगर यह सच है तो फिर तुमने क्यों ऐसा काम किया।

हकीम साहब—(एक ठंडी आह भरके) हाँ अब तो बेवक़ूफी हो गई। फिर इसका इलाज?

कुलसुम बेगम—तुम हकीम हो, तुम्हीं इलाज बताओ। अच्छा मुझे छोड़ दो। तुम्हारी जान आफ़त से छूट जाए।

हकीम साहब—(ज़रा ठहरके) छोड़ देने का तो मैंने नाम नहीं लिया। तुम खुद आज समेत पाँच छै बार कह चुकी हो। आख़िर तुम्हारा क्या मंशा है ?

कुलसुम बेगम—देखो, हकीम साहब, तुम्हारी बीवी हैं जाहिल (मूर्ख) और मैं ख़ुदा के फ़ज़ल से बेपढ़ी लिखी नहीं हूँ। मुई इमामन ने मुझे तुम्हें दोनों को फँसाया। मुई ने मुझे तो बयान किया कि निहंग हैं और तुमको यह फ़रेब दिया कि छोटे नवाब की माँ के साथ निकाह करवाए देती हूँ। मैं भी धोखे में आ गई और तुम भी। मैं अगर जानती तुम चीटियों-भरे कबाब हो तो काहे को यह बात होती।

हकीम साहब—हाँ मैं समझता हूँ कि तुम इस मामले में बेक़सूर हो। तुम्हें भी धोखा दिया गया।

कुलसुम बेगम—अच्छा तो अब भी कुछ नहीं गया है। तुम मुझे छोड़ दो। ख़ाला करबला जाने को कह रही हैं। उन्हीं के साथ मैं भी चली जाऊँगी। तीन हिस्से मेहर मैं तुम्हें माफ़ कर दूँगी। एक हिस्सा दे दो।

हकीम साहब—अगर मैं अपनी तमाम जायदाद बेच डालूँ बल्कि मैं भी बिक जाऊँ तो भी मुझसे एक चौथाई हिस्सा मेहर न अदा हो सकेगा। और मैं छोड़ने क्यों लगा। वजह क्या। क्या दो दो औरतें दुनिया में होती नहीं हैं।

कुलसुम बेगम—अगर नहीं छोड़ते तो फिर उसी तरह मेरे साथ भी पेश आओ जिस तरह बीवियों के साथ पेश आना चाहिये।

हकीम साहब—इसमें तो मुझसे अभी तक कोई क़सूर नहीं हुआ। रोज तुम्हारे पास आता हूँ। खाने पीने को जो कुछ हो सकता है हाजिर करता हूँ। इसके सिवा और जो तुम्हें कहना हो, कहो।

कुलसुम बेगम—कहना यह है कि एक रात यहाँ रहा करो, एक रात वहाँ। दूसरी बात यह कि मेरे तुम्हारे जो इक़रार हैं, उसे पूरा करो।

हकीम साहब—अच्छा यह भी सही। मैं आज से ऐसा ही करूँगा। मगर वह इक़रार कौन है जिसे पूरा करूँ।

कुलसुम बेगम—बस इसी बात पर तो मेरे आग लगती है। आख़िर पचास रुपये महीने का इक़रार था कि न था।

खलिया सास—हाँ यह तो मैं भी सुनती हूँ कि पचास रुपये महीने का इक़रार था।

कुलसुम बेगम—इक़रार क्या कुछ मुँह ज़बानी था। स्टांप के काग़ज़ पर रजिस्ट्री हो गई है।

हकीम साहब—देखिये ख़ालाजान, बात यह थी कि निकाह तो और ही धोखे में हुआ। हम कुछ और समझे थे और वहाँ कुछ और बात निकली।

खलिया सास—हाँ यह सच है मगर अब तो एक शख्श ने अपनी आबरू दी। वह तो निगोड़ी कहीं की न रही। और यह तो मैं खूब जानती हूँ कि निबाह किसी तरह न होगा क्योंकि उसकी तबियत इस तरह की ठहरी कि ब्याहता ख़समने रंडी कर ली। उसने खड़े खड़े छोड़ दिया। तुम ठहरे बीवी के चरण-सेवक।

हकीम साहब—अब तो निबाह किसी तरह करना चाहिये क्योंकि अब तो जो होना था वह हो गया। मैं हर तरह राज़ी हूँ। आज तक रात के रहने को नहीं कहा। अब आज क्या है। ख़ैर यों भी सही।

कुलसुम बेगम—हमारे नाम पर 'ख़ैर यों सही'। और जो टेढ़ी बात करें, भाई से चार गुर्गे लगाकर जूतियाँ खिलवाएँ, उन्हीं का अभी तक दम भरे जाते हो।

हकीम साहब—(यह आखिर के चंद फ़िक़रे कुलसुम बेगम के हकीम साहब के दिल पर नश्तर का काम कर गये। गुस्से में आकर जवाब दिया) दम कौन भरता है। उनसे ज़रूर कसर निकाली जायगी और मियाँ मज़हर को तो बग़ैर जेलखाना भेजे हुए खाना पीना हराम है। जाते कहाँ हैं मेरे हाथ से।

कुलसुम बेगम—वाह कुछ अमजद और इमामन को तुमने जेलखाना भिजवा दिया, कुछ मज़हर को भिजवाओगे।

हकीम साहब—अच्छा देख लेना। और मियाँ अमजद क्या छूट जाएँगे। उन्होंने तो मेरे साथ दोहरा जाल किया। मगर इसमें 'मुरशद' भी शामिल था। मियाँ अमजद और बी इमामन का यह दिल गुर्दा कहाँ। यह उन्हीं के फ़िक़रे हैं।

कुलसुम बेगम—यह 'मुरशद' कौन है ? फूफा जान ?

हकीम साहब—जी हाँ, यह उन्हीं का चुटकला था। जभी तो शहर में बदनाम हैं। तमाम अमीर रईस उनके नाम से कानों पर हाथ धरते हैं।

कुलसुम बेगम—यह तो तुम ग़लत कहते हो। शहर के अमीर

रईस तो उन्हें आँखों पर बिठाते हैं। जिस सरकार में गये उसे बना दिया।

हकीम साहब—कैसा कुछ। एक तो छोटे नवाब ही को बना दिया। अस्सी हजार की डिग्री करा दी। और फिर वारंट में फँसवा दिया। वह तो कहिये उनकी फूफी ने ग्यारह सौ रुपये देके छुड़ा दिया। मगर बकरे की माँ कब तक खैर मनाएगी। हजारों डिगरियाँ हैं।

कुलसुम बेगम—छोटे नवाब ने खुद अपना रुपया खराब किया। शरावें पी, नाच रंग देखे, परियों के तख्त उतारे। फिर इन हरकतों में रुपया न खर्च होता तो क्या होता।

हकीम साहब—यह सब खलीफा जी (जिनको तुम बड़े भैया कहती हो) उनकी कारस्तानियां थीं।

कुलसुम बेगम—तुम्हारी उनकी तो खुल्लम-खुल्ला दुश्मनी है। तुम तो ऐसा कहोगे।

हकीम साहब—अच्छा एक मैं दुश्मनी की वजह से कहता हूँ। सारा शहर थड़ी थड़ी कर रहा है।

कुलसुम बेगम—कोई भी नहीं कहता। हमने तो तुम्हारे मुँह से अभी सुना है। खुद जिसका मामला है यानी छोटे नवाब अब तक उनका दम भरते हैं। और क्यों न दम भरें? सारा जमाना छोटे नवाब से फिर गया। भैया अभी तक आठ आने रोज चंडू को दिये जाते हैं।

हकीम साहब—बेशक आठ आने रोज चंडू को देते हैं। मगर अभी तक एक नोट बाक़ी भी तो है जिसके नंबर गुम हैं। लोग नंबरों का पता लगाने कलकत्ते गये हुए हैं। इस नोट का

भी खात्मा हो जाय, फिर आठ आने रोज दें तो जानें।

कुलसुम बेगम—फिर कोई भी तो किसी को बे मतलब देता है।

हकीम साहब—यह कहो। अब राह पर आईं। हद के जा लिए हैं।

कुलसुम बेगम—और तुम जालिए नहीं हो।

हकीम साहब—मैंने जाल क्या किया ?

कुलसुम बेगम—एक जाल ? सैकड़ों जाल।

अब बात चीत में रंजिश ज्यादा होती जाती थी। खलिया सास का दखल देना जरूरी था।

खलिया सास—अच्छा तुम्हें पुराने झगड़ों से बहस क्या है। अपनी अपनी बातें करो।

इस बीच में मियां नबीबख्श दूध लेकर आ गये थे मोमयाई और दूध हकीम साहब को पिलवाया गया। रात ज्यादा गई थी। आज हकीम साहब ने यहीं आराम किया।

× × ×

कुछ दिनों हमसे दोस्ती रखते,
दुश्मनों को भी आजमाना था।

आजमाना कैसा ? आजमा चुके। साढ़े तीन लाख के नोट भुर्र हो गये। सिर्फ ग्यारह हजार नवाब साहब के हाथ आए। मगर अभी वही कारखाना है। नवाबी ठाठ में बिलकुल कमी नहीं। शराबख्वारी ज्यादा बढ़ गई क्योंकि परियों के जादू का शौक़ तो दौलत की कमी के साथ तशरीफ ले जा चुका था।

अक्सीर के नुस्ख़ों ने कोई काम न दिया और न उनसे काम लिया गया। इसलिये कि अब आँखें खुल चुकी थीं। थोड़ी बहुत नेक और बद की पहचान हो गई थी। शाहजी जाली निकले। उसकी सब बातें ग़लत थीं, अक्सीर के नुस्ख़ों का यक़ीन क्या। सब्ज़-क़बा से मिलाप के बाद नफ़रत हो गई थी। जिन लोगों ने दग़ा की थी, उनका आना जाना धीरे धीरे अपने आप कम हो गया था। अगरचे नवाब ने किसी को मना नहीं किया, मगर अब कौन आता है। भारी भारी रक़में लेके अपने अपने घरों में बैठ रहे। आना कैसा। अगर किसी मौके पर इत्तफाक़ से सामना हो गया, आँखें झेप गईं। मामूली सलाम के बाद, जहाँ तक बन सका, उस मौक़े से टल गये अब सिर्फ़ उन लोगों से राह-रस्म बाक़ी रह गया जिन्होंने साढ़े तीन लाख के नोटों में से कोई हिस्सा न लिया था। ग्यारह हज़ार (के आधे) में शिरकत थी। कुर्क़ी और वारंट हद से ज्यादा थे। इसलिये घर से निकलना बिलकुल बंद था। इस ज़माने में नवाब साहब ने शाहगंज में एक मकान किराये पर लिया था। वहीं रहते थे। इन दिनों कन-कौओं का शौक़ पैदा हो गया था। ग्यारह हज़ार में से बहुत सी रक़म कनकौओं में उड़ा दी। ग्यारह हज़ार की असल ही क्या थी। वह भी ख़तम हुई। अब रहा सहा जो असासा बाक़ी था, उसके बिकने की नौबत आई। यह भी इस गये गुज़रे हाल में हज़ार दो हज़ार से ज्यादा था। किसी बाज़ारी रंडी को नौकर तो नहीं रक्खा, मगर रोज़ाना किसी न किसी का आना ज़रूर था। कुछ दिनों यह मामला रहा। फिर बगन नामी एक रंडी से मुहब्बत बढ़ी। कई महीनों वह रात को आया की नवाब उसके मकान पर भी जाते थे। बगन के कमरे से मिला हुआ खुरशैद का कमरा था। यहाँ एक दिन खुरशैद से सामना हो ही गया।

अगली पिछली बातें छिड़ीं। इस क़िस्म की बातें हुईं जो ऐसे मौक़ों पर हुआ करती हैं।

ख़ुरशैद—क्यों, नवाब, हम न कहते थे।

नवाब—(सर झुकाके) तुम सच कहती थीं।

सिवाय इसके इस मौक़े पर और क्या बात होती। ख़ुरशैद की शिकायतें सब ठीक थीं मगर दोषों का परिहार करना नवाब के क़ाबू की बात न थी। सिवा ठीक और दुरुस्त कहने के और चारा क्या था। उन दिनों ख़ुरशैद की बढ़ती थी। एक ताल्लुक़े-दार की पाँच सौ रुपये माहवार की नौकर थी। टुकड़ी सवारी की। कई हज़ार का गहना हाथ गले में। दरवाज़े पर सिपाहियों का पहरा। चार चार महरियां, दस बारह ख़िदमतगार मामाएँ असीलें, पेशख़िदमतें—ग़रज़ कि सब अमीराना ठाठ। नवाब जिस रंडी के पास जाते थे वह उसके आगे बिलकुल हक़ीर (तुच्छ) मालूम होती थी। बगन एक दुबलीसी, सांवली सी औरत थी। कम हैसियत, छछोरी, बदतमीज़, कच्ची ज़बान। भला उसका और ख़ुरशैद का क्या मुक़ाबला। खुलती चंपई रंगत, गोल गोल भरे भरे बाज़ू, भारी मरकम सभ्य बोल चाल। हाँ ज़रा उम्र में बगन से छै सात बरस बड़ी थी। बगन की उम्र सोलह सत्रह बरस की थी। ख़ुरशैद बीस और पचीस के बीच में थी। यह सब कुछ सही लेकिन नवाब का अगर वह ज़माना होता, तो शायद बगन दो एक रोज़ से ज़्यादा न बुलाई जाती और न उस हालत में ख़ुरशैद ही पर ज़्यादा तवज्जह होती। मगर अब मामले ऐसे पेच दर पेच थे कि नवाब बगन के मकान पर दौड़ दौड़ कर जाते थे। वह अकसर मौके पर नख़रा करती थी। इस मौके पर ख़ुरशैद से जो सामना हुआ तो आपस के

संबंध की सूरत ही और हो गई। खुरशैद को कुछ तो अगली मुहब्बतों का खयाल, कुछ नवाब की मौजूदा हालत पर अफ़सोस और उसके साथ रहम, फिर अपनी पाबंदी। इस हालत में बगन से नवाब का राह रस्म कुछ न कुछ ना गवार ज़रूर था। फिर इस सब पर तुर्रा, नवाब की बेपरवाही। (इस बेपरवाही का समझना मुश्किल है) हर शख्स दूसरे के दिल का अंदाज़ नहीं कर सकता। नवाब ने अपनी और खुरशैद की हालत का मुक़ाबला करके दिल ही दिल में यह फ़ैसला कर लिया था कि अब वह अगला जोश मुमकिन नहीं। पहले उसकी हैसियत नौकर की थी और अब बराबरी बल्कि बरतरी (बढ़कर होने का) का दावा होगा। फिर इस हालत में हम दबके भी मिलें तो कोई फ़ायदा न होगा। इससे अपनी आन-बान रखना बहतर होगा। अब हम भी खुरशैद से इस तरह मिलें कि गोया हमको कोई परवाह नहीं है। हम अपने हाल में खुश हैं। इस हालत में बगन ग़नीमत है। इन खयालों से इधर बगन खुरशैद का रंग ढंग नवाब की तरफ़ देखकर नवाब से ज़्यादा लिपटने लगी। यह खुरशैद का और भी बुरा लगा। अब किसी क़दर ज़िद पैदा हुई। क्यों क्या हममें यह ताक़त नहीं कि इस छोकरी को नीचा दिखावें। यह बातें जो हमने बयान की हैं अगरचे इसका रहस्य समझना ज़रा मुश्किल है मगर ऐसे मौक़े पर यह सब हुज्जतें दिल ही दिल में हो सकती हैं और अपनी अपनी हाजत के माफ़िक नतीजे निकाल लिये जाते हैं। औरतों के दिल के भेद, उनके भाव और प्रेरणाओं का समझना बहुत ही कठिन है। लिहाज़ा हम सिर्फ़ ऊपर की घटनाओं से ही बहस करते हैं। खुलासा यह कि खुरशैद ने कुछ ही दिनों में नवाब को अपना कर लिया। बगन से अब बिगड़ गई। मगर खुरशैद पाबंद थी।

इसलिये चोरी छुपे मिलना होता था। खुरशैद के दिल में नवाब की मुहब्बत पहले से थी। मगर इतनी नहीं कि पाँच सौ रुपये की नौकरी पर वह उनकी खातिर लात मार देती। न यह ऐसी बात चाह भी सकते थे। मगर धीरे धीरे हुआ ऐसा ही। नवाब से जब दुबारा मेल मुहब्बत हुई तो सब से पहले यह भेद बगन को मालूम हुआ। उसको छुपाने की कोई वजह न थी। बगन को ज्यादा तर इस मामले में जिद न बढ़ती मगर बात यह थी कि नवाब बगन के कमरे से उठकर अकसर खुरशैद के मकान में जाया करते थे क्योंकि हम पहले लिख चुके हैं कि दरवाजे पर पहरा रहता था। एक दिन इत्तफाक से बगन नशे में थी। इस हालत में नवाब उसके पास से उठकर खुरशैद के कमरे में जाने लगे। बगन ने दामन पकड़ लिया।

बगन—मैं तो न जाने दूंगी।

नवाब भी नशे में थे। दामन छुड़ाने लगे। इस बहस में नवाब का नया शरबती अंगरखा निकल गया। नवाब फिर उठके जाने लगे। दीवार पर से होकर रास्ता था। नवाब दीवार पर चढ़ रहे थे कि बगन ने टाँग पकड़ कर घसीटी। यह धम से गिर पड़े। सख्त चोट आई। इस गुस्से में नवाब ने एक तमांचा बगन को मारा और हाथ से ढकेल कर खुद खुरशैद के मकान में चले गये। बगन चीखें मार मार कर रोने लगी। इसके बाद खुरशैद को गालियां देना शुरू किया। खुरशैद ने बहुत जब्त किया मगर फिर भी औरत जात; कहाँ तक चुप रहती। आखिर वह भी जवाब देने लगी। धीरे धीरे वह गजब की लड़ाई हुई कि भटियारियां मात हो गईं। चौक में लोगों की भीड़ हो गई। दो बजे तक दोनों तरफ से गाली गलौज

हुआ की। दूसरे दिन ताल्लुक़े-दार साहब को पता लगा। उन्होंने खुरशैद को निकाल दिया। चलिये मैदान खाली हो गया। मगर खुरशैद को इस नौकरी के छूट जाने का ज्यादा रंज न हुआ। न ऐसे लोगों को रंज होता है। इसलिये कि ऐसे लोगों के बहुत खरीदार होते हैं। जब से होस संभाला, कोई मुसीबत पड़ी नहीं। हमेशा ऐश में कटी और तुर्रा यह है कि जिस मरने वाले से जो कह देंगे, वह हो जायगा। और ऐसा अकसर होता भी है। उधर नवाब ने हद से ज्यादा तावेदारी करना शुरू की। चंद ही रोज़ के बाद शहर भर को मालूम हो गया कि खुरशैद के घर पड़ गये।

× × ×

एक दिन हकीम साहब अपने हिसाब किताब को देख रहे थे। उम्दा ख़ानम वाले मकान का रहन-नामा बही में से निकल आया। हिसाब लगाया तो साढ़े सत्रह महीने का किराया चढ़ा हुआ था। नबीबख्श को आवाज़ दी।

नबीबख्श—हुज़ूर।

हकीम साहब—नबीबख्श जाओ तो। आज उम्दा ख़ानम से किराया वसूल करके लाओ। कहना कि साढ़े सत्रह महीने चढ़ गये हैं। अब ज्यादा की हमको गुंजायश नहीं है। फ़ौरन किराया दीजिये और मकान को खाली कर दीजिये। उसमें कोई किराये दार रख दिया जाय, क्योंकि आपसे किराया अदा न होगा, वरना हम नालिश कर देंगे।

नबीबख्श—बहुत खूब। तो अभी जाऊँ।

हकीम साहब—और कब।

नबीबख्श—अभी तो अफ़ीम नहीं खाई है।

हकीम साहब—एलो, अफ़ीम खालो। क्या अफ़ीम खाने में कुछ देर लगती है।

नबीबख्श—देर तो नहीं लगती है मगर आपसे कह देना अच्छा है इसलिये कि शायद आते आते ज़रा देर लग जाती तो आप ख़फ़ा होते।

हकीम साहब—अच्छा तो कब तक आ जाओगे।

नबीबख्श—यही कोई दो घंटे में।

हकीम साहब—आज तुमने दिन भर की फ़ुरसत की।

नबीबख्श—जी नहीं। जल्दी आऊँगा।

हकीम साहब—हाँ यानी कोई चार बजे तक।

नबीबख्श—ऐ हुज़ूर दो पहर तो यहीं हो गई है।

हकीम साहब—दो पहर? अभी दस बजे हैं।

नबीबख्श—दस बजे हैं! मैं कहता हूँ ग्यारह कबके बज गये बल्कि बारह का अमल है।

हकीम साहज—घड़ी में दस बजे हैं। तुम कहते हो बारह का अमल है।

नबीबख्श—ऐ हुज़ूर साहब आलम के यहाँ के घड़ियाली से कोई घंटा भर हुए मैंने पूछा था। उसने कहा था ग्यारह बज गये। खुदा जाने आपकी घड़ी कैसी है।

हकीम साहब—जी हाँ, तुम्हें शाहज़ादा साहब के घड़ियाल पर यक़ीन होगा और हमारी घड़ी का एतबार नहीं।

नबीबख्श—तो क्या घड़ियाल ग़लत है।

हकीम साहब— घड़ियाल का क्या एतबार। वह तो शाह-ज़ादा साहब की सलामती मनाता है। घड़ियाली ऊँघा करता है। जब ऊँघते ऊघते चौंका, जो उसके जी में आया, बजा दिया।

नबीबख्श—ठीक है, मगर बादशाही से इस वक़्त तक सारे ज़माने का काम उस पर चल रहा है और यह घड़ी घंटा कोई जानता भी न था। बादशाही में कहीं बड़े बड़े अमीरों के पास घड़ियाँ थीं और बड़ी मँहगी आती थीं। अब जेबी घड़ियाँ निकल पड़ी हैं। जिसको देखो एक घड़ी पाँच रुपये की लेलो। एक पीतल की ज़ंजीर डाल के लटका लो। अकड़ते चले जाते हैं। भला यह पाँच पाँच रुपये की घड़ियां क्या ठीक वक़्त बताएँगी।

हकीम साहब—अब तुम्हारी हुज्जतों का कौन जवाब दे। पाँच रुपये वाली घड़ियां भी ख़ूब ठीक चलती हैं और यह मेरी घड़ी ख़ास इंगलिश है। एक मिनट का कभी फ़र्क़ नहीं पड़ता।

नबीबख्श—जी हाँ, जब से आपने नीलाम में ली है, कोई पाँच रुपये तो मेरे हाथों घड़ी साज़ ले चुका है। बस ऐसी घड़ी है। घड़ी वग़ैरह आठ सात सौ वाली के ठीक नहीं होती है।

हकीम साहब—नबीबख्श की आदत से ख़ूब वाक़िफ़ थे कि जब यह बहस करते हैं किसी से बंद होते ही नहीं और हकीम साहब को भी इनके साथ कहा सुनी करने की आदत हो गई थी। मगर इस वक़्त हिसाब किताब देख रहे थे। हर सूरत में इन्हें टालना मंजूर था। चुप हो रहे।

नबीबख्श—अच्छा तो अब मैं जाता हूँ। तंबाकू गोश्त, तरकारी के लिये पैसे दे दीजिये। उधर ही से लेता आऊँगा।

हकीम साहब—(हिसाब देखने में बहुत व्यस्त थे) यह सब फिर ले आना, इस वक़्त तो जाओ।

नबीबख्श—ले हुज़ूर, आपको दो दो बार टांगे तुड़वाने से क्या फ़ायदा। दे भी दीजिये। बेगम साहिबा से संदूकचा मांग लाऊँ।

खुलासा यह की खुदा खुदा करके नबीबख्श टले। उस वक्त के गये गये शाम को पलट के आए तो यह ख़बर लाए।

नबीबख्श—उस मकान में तो कोई जवाब ही नहीं देता, जैसे कोई रहता ही नहीं।

हकीम साहब—फिर तुम अंदर गये थे।

नबीबख्श— अंदर क्यों कर जाता ?

हकीम साहब—क्यों क्या बाहर से ताला लगा था।

नबीबख्श—जी नहीं, ताला तो न था।

हकीम साहब—फिर अंदर चले गये होते।

नबीबख्श—अंदर क्योंकर जाता। पराये मकान में दर्राना घुस जाता।

हकीम साहब—पराया मकान कैसा ? मकान हमारा है।

यह हकीम साहब ने इसलिये कहा था कि आपको यह यक़ीन था कि उम्दा खानम बेचारी से न रहन का रुपया अदा हो सकेगा न किराया। रहन की मियाद पूरी होने पर दावा कर दूंगा। मकान को नीलाम पर चढ़वा कर अपने नाम छुड़वा लूंगा। ऐसे मामले हकीम साहब ने बहुत से किये थे।

नबीबख्श—वह आपही का सही, मगर मैं तो अंदर नहीं जा सकता।

हकीम साहब—बीसियों बार मेरे साथ गये।

नबीबख्श—आप के साथ जाने की और बात है। आप जहाँ जाइयेगा, मैं आपके साथ चलूंगा।

मियां नबीबख्श की बात ऐसी न थी कि हकीम साहब फौरन उसे काट सकते और इस वक्त एक एक वाक़े की जाँच करनी थी।

हकीम साहब—फिर तुम्हें क्योंकर मालूम हुआ कि मकान खाली पड़ा है।

नबीबख्श—कई बार आवाज़ दी, कुंडी खड़ खड़ाई। दरवाज़ा जोर से खट खटाया। कोई होता तो बोलता न।

हकीम साहब—उम्दा खानम कोठे पर रहती है, वहाँ तक आवाज़ न गई होगी।

नबीबख्श—जी हाँ, क्या बहरी है।

हकीम साहब—यह देखा होता कि कुंडी अंदर से बंद थी या नहीं।

नबीबख्श—यह तो मैंने नहीं देखा।

हकीम साहब—बस यही तो तुम्हारी हरकतें हैं। जिस काम को जाते हो कभी पूरा करके नहीं आते। गये तो थे यह भी देख लेते।

नबीबख्श—यह आपने कहा था।

हकीम साहब—लाहौल वला कुव्वत, इतनी तुममें अक़ल न थी।

नबीबख्श—इतनी अक़ल होती तो फिर तीन रुपये महीने की नौकरी क्यों करते। हम भी न आपकी तरह मसनद पर बैठे होते। अच्छा अब देख आऊँ।

हकीम साहब—जी हाँ, सुबह के गये गये तो अब आए हो। अब कहीं गये तो कल आओगे। यहाँ वहाँ दोनों जगह का सौदा-सुलफ़ करना है।

नबीबख़्श—फिर यह आप जानिये।

हकीम साहब—अच्छा तो कल मैं ख़ुद जाऊँगा। देखूं तो माजरा क्या है।

× × ×

दूसरे दिन हकीम साहब ख़ुद तशरीफ़ ले गये। आवाज़ें दी। कुंडी खड़खड़ाई। तमाम महल्ले में खबर हो गई, मगर उस मकान से किसी की आवाज़ न आई। मकान की कुंडी खुली हुई थी। अन्दर चले गये। इधर उधर देखा कोई न था। पहले उस कोठे पर गये, जहाँ अकसर जाया करते थे जब बेगम साहिबा से ताल्लुक़ बढ़ाया जाता था। फिर उधर से ऊपर के दूसरे कोठे पर चढ़े। जीने पर से किसी के बोलने की आवाज़ आई। ऊपर के जीने से कोठे पर क़दम रक्खा ही था कि किसी ने चिल्लाकर कहा—कौन है। यह आवाज़ औरत की थी।

हकीम साहब—कोई नहीं। मैं हूँ।

वह आवाज़—आप कौन साहब हैं। जनाने मकान में दर्राना चले आए।

हकीम साहब—क्या करें। कल से आदमी फिर फिर जाता है। कोई मकान में बोलता ही नहीं? आख़िर आज मैं ख़ुद आया। यह उम्दा ख़ानम कहाँ हैं।

आवाज़—कौन उम्दा ख़ानम?

हकीम साहब—कौन उम्दा ख़ानम? जिनका यह मकान है।

आवाज़—मकान मीर साहब का है। उम्दा ख़ानम कौन होती हैं। उनका तो नाम तक हमने नहीं सुना।

हकीम साहब—मीर साहब कौन ?

आवाज़—यही मीर साहब, बड़े मीर साहब के बेटे। अभी कहीं बाहर गये हैं। आते होंगे। अच्छा तो आप बाहर जाइये। जब वह आएँगे तब उनसे पूछिएगा।

आख़िर की कुछ बातें इस ढंग से कही गई थीं कि हकीम साहब को बग़ैर कोठे से उतरे कोई चारा न था। नीचे उतरे। दरवाज़े के पास थोड़ी देर ठहरे। फ़िक्र करने लगे कि आख़िर अब किससे उम्दा ख़ानम को दरयाफ्त करूँ। मालूम होता है कि उम्दा ख़ानम ने किसी को किराये पर रख दिया है। यह लोग किरायेदार हैं। यह अभी यहीं थे कि बाहर से किसी के आने की आहट मालूम हुई। आने वाले ने दरवाज़े के अन्दर क़दम रक्खा कि हकीम साहब से सामना हुआ। देखा, वाकई बड़े मीर साहब के बड़े बेटे हैं। मीर साहब ने गरम निगाह से हकीम साहब की तरफ़ देखकर कहा—ख़ैर तो है।

हकीम साहब—जी ख़ैरियत है। उम्दा ख़ानम के पास आया था। आ हा, आप इस मकान में किराये पर रहते हैं।

मीर साहब—ख़ुदा के फ़ज़ल से आज तक तो मैं किराये के मकान में नहीं रहा। मकान मेरा ज़ाती है। और आपकी बेतकल्लुफ़ी ने भी क़यामत की। ज़नाने मकान में आप क्यों तशरीफ़ ले गये। वालिद से और आपसे मुलाक़ात है। मुझसे तो आपसे इस क़दर मेल जोल भी नहीं। यह आपने कमाल किया।

हकीम साहब—जनाब माफ़ कीजियेगा। मैं उम्दा ख़ानम

के पास आया था, जिनका यह मकान है। बल्कि मेरे पास रहन है।

मीर साहब— यह उम्दा खानम कौन बला हैं। मकान मेरा है। यह आप फ़र्माते क्या हैं ?

हकीम साहब—मैं सही कहता हूँ।

मीर साहब—अच्छा सही हो या ग़लत, मगर बाहर तशरीफ़ रखिये। फ़र्माइये तो कुछ बैठने को मंगवा दिया जाय क्योंकि आप वालिद के दोस्तों में से हैं। गो मुझसे कुछ मेल नहीं।

हकीम साहब—(बात के पहलू को समझ गये) तो यह मकान आपका है।

मीर साहब—मैं नहीं समझता कि इस बात को फिर से पूछने से आपको क्या फ़ायद होगा। मगर मैं आपके सवाल का जवाब दिये देता हूँ। जी हाँ मकान मेरा ज़ाती है। न इसमें कोई शरीक है, न इसमें किसी का दावा है। अगर आप हुक्म दीजिये तो क़बाला भी हाज़िर किया जाय।

हकीम साहब—बड़े मीर साहब ने मोल लिया था ?

मीर साहब—जी नहीं। बड़े मीर साहब का नहीं है और यों तो हाँ उन्हीं का है। मैं खुद उनका हूँ मगर यह मकान मैंने अपने ज़ाती रुपये से मोल लिया।

हकीम साहब—किससे मोल लिया।

मीर साहब—अब इसका जवाब मैं यहाँ न दूँगा। माफ़ कीजिये।

हकीम साहब—अच्छा तो मैं जाता हूँ।

मीर साहब—मैं तो नहीं अर्ज कर सकता। तशरीफ़ रखिये। कुछ बैठने को मँगवा दिया जाय। हुक्का भरवा मँगवाऊँ।

हकीम साहब ने देखा कि इस कोरी आव-भगत से कोई फ़ायदा नहीं, लिहाज़ा अब घर ही चलना मुनासिब है।

नबीबख्श—(अब तक मकान के अंदर रहे और मीर साहब से बातें हुआ कीं, वह सब ग़ौर से सुना किये। एक शब्द न बोले। बाहर निकलकर) यह कैसी बात हुई।

हकीम साहब—(अगरचे बोलने को जी न चाहता था मगर जवाब ही देना पड़ा) आप ही देखिये। यह मियाँ अमजद का दूसरा जाल निकला। आप ही उनको लाये थे।

नबीबख्श—जी हाँ। आप तो कहिये ही गा। मैं लाया था कि आपने बुलवाया था।

मियाँ नबीबख्श को क्या ग़रज़ थी कि बग़ैर चूँ चरा व बहस मुबाहिसा इतना बड़ा इलज़ाम अपने ज़िम्मे लेते। इसलिये कि यह बहुत खरे आदमी थे।

नबीबख्श—यह आपने क्या कहा, मैं बुला लाया था। आप ही ने उन लोगों को घेरा। मैं तो जानता ही था। वह महरी एक छटी हुई है और अमजद को तो मैं उस ज़माने से जानता हूँ जब वह लंगोटी बाँधे फिरता था। एक ही फ़ितूरिया लौंडा है। मेरा बस होता तो ऐसे लोगों को घुसने भी न देता।

हकीम साहब—मियाँ अजब आदमी हो। पहले तुम्हीं तारीफ़ें किया करते थे, अब यों कहते हो।

नबीबख्श—तारीफ़ें न करता तो क्या करता। आप उन्हें बुलाते थे, बिठाते थे। फिर मैं उनसे क्यों बुरा होता और मुँह पर कोई भी किसी को बुरा कहता है।

हकीम साहब—तुमने उनके मुँह पर न कहा था तो उसके पीछे हमसे कुछ उनका हाल तो कह दिया होता।

नबीबख़्श—क्या आप नहीं जानते थे।

हकीम साहब—मैं क्या जानता था कि ऐसे जालिए हैं।

नबीबख़्श—तो यह रुपया जो आपने गिरवी का दिया है वह कहीं नहीं गया है।

हकीम साहब—गया नहीं तो क्या मिलता है? छै सात सौ रुपये पर पानी फिर गया।

नबीबख़्श—यह क़िस्मत की बात है।

"हम भी हैं मुख़्तार लेकिन इस क़दर है अख़्त्यार,
जब हुए मजबूर क़िस्मत को बुरा कहने लगे।"

× × ×

ख़तम है दास्तां मगर 'रुसवा',
एक नई बात जी में आई है।

इन घटनाओं के दस बारह बरस बाद छोटे नवाब साहब से मुलाक़ात हुई। पुराने हैदरगंज में रहते हैं। रुपया सवा रुपया माहवार किराये का मकान है। माल असबाब से सिवा कपड़े, बोरिया, टीन का लोटा, एक अदद, मिट्टी की हंडिया, दो अदद, मट्टी के घड़े दो अदद, इसके सिवा मकान में नज़र कुछ न आया। हाँ एक तरफ़ कोने में एक बोतल भी रक्खी हुई थी। मगर यह पक्की तौर से मालूम हुआ कि वह सरकारी माल नहीं। ज़रूरत के वक्त, कलारी से उधार आ जाती है। पुराने आदमियों में अब कोई बाक़ी नहीं। सिर्फ़ एक बड़ी अन्नाजी का दम है।

वही रात दिन खिदमत करती हैं। या दोस्तों में कोई पास नहीं फटकता। लेकिन उस हालत में जब किसी शामत के मारे को अपनी जरूरत से घर से एक रात के लिये गायब हो जाना अभीष्ट होता है और कोई जगह फौरन नहीं दीखती, तो आप ही के घर पर बेतकल्लुफ़ चला आता है। इस हालत में जरूर है कि जहां अपने वास्ते खाने पीने की फ़िक्र करे, नवाब साहब और उनके आदमियों का भी ख्याल रक्खे वरना क्या जरूर है कि नवाब साहब उसके लिये अपने क़ीमती वक्त को खर्च करके जरूरी चीजें मंगाएँ। या महल्ले से चारपाई मांगते फिरें या एक जोड़े कपड़े जो वक्त वक्त पर बाज रिश्तेदार या दोस्तों ने त्याग करके नज़र किये हैं, उनमें से जिनकी जरूरत बिलफ़ैल नहीं होती, वह अकसर कलवार-खाने में और बनिये की दूकान पर बतौर अमानत रहते हैं। मगर तबीयत नवाब साहब की अनुभवों से लाभ उठानेवाली थी। इसलिये उस्तादों ने जिन फ़नों के जरिये से आपसे रुपया वसूल किया, उसकी बहुत कुछ लियाक़त आपको भी आ गई है मगर मस्ती उसको अमल में लाने की ज्यादा फ़ुरसत नहीं देती। जिस दिन नवाब साहब को पेंशन या वसीक़ा मिलता है, अगरचे वह कुल मिलाकर कम से भी कम है, लेकिन एक दो दिन के लिये नवाबी कारखाना हो जाया करता है। खुर-शेद से मुलाक़ात का हाल ऊपर आ चुका है। उसके बाद एक और बाजारी औरत से कई साल लुत्फ़ रहा और उसने भी कुछ दिनों खूब साथ दिया। उसकी आमदनी की रक़म नवाब साहब के वसीके पेंशन से कई गुना ज्यादा थी और वह सब आप ही के खर्च में आती थी। मगर जहालत और उसके साथी ऐब, जैसे स्वार्थ और बेवफ़ाई जो आपने कई लाख की जायदाद गवां के हासिल किये थे, ऐसे थे कि उनके कारण यह मुमकिन

नहीं था कि आप से किसी से दोस्ती निभ सके। इसलिये कि यह जौहर मुमकीन नहीं कि कभी न कभी खुल न जाएँ। मतलब यह है कि उससे भी अलग हो गये। बड़ी अम्मा जी का साथ देना बहुत काम आया और अभी कुछ दिनों और आवेगा। आपकी मां करबला गई थीं, फिर नहीं मालूम कहाँ गुम हो गईं।

एक जमाने में आपने अपने ख़ास दोस्तों को यह चकमा भी दिया था कि वालिदा ने मेरे कुछ नोट घुमा दिये थे, उनका पता लगाइये मगर आपके पुराने संगी-साथियों ने इस फ़िक़रे पर बल न चढ़ने दिया और किसी को आप पर यक़ीन न हुआ, न सहानुभूति हुई। कचहरी के कारो बार में भी आपको कुछ दखल है। जिस महल्ले में आप रहते हैं, वहाँ के पुलिस वालों से भी अक्सर यह मामला रहता है—

तुम हमें पूछो न पूछो, हम तुम्हारे दोस्त हैं
फ़ख़्र करने के लिये इतना तआल्लुक़ कम नहीं।

इतना ताल्लुक ग़रीब महल्ले वालों के धमकाने के लिये काफ़ी है। अगर किसी से कोई गुस्ताख़ी हो गई और नवाब साहब ज़्यादा नशे में हो गये—

वल्लाह थानेदार साहब से कह कर महल्ले से निकलवा दूंगा। बेचारे ग़रीब अनजान मुमकिन है कि ऐसे दो एक फ़िक़रों से दो एक बार काँप उठें, मगर जब वह बार बार कहे जाने लगे और नतीजा कुछ हुआ नहीं तो लोग समझ गये। ग़रज़ कि जो रौब जमाना चाहा था न जमा। जब जाल फ़रेब की हुकूमत से काम न चला तो खुशामद से काम चलता रहा। इस फ़न की बदौलत नवाब साहब को अकसर फ़ायदे हुए। अगर यहीं ढंग

रहा तो फ़ायदे होते रहेंगे। कुछ नवाब साहब के लिये ही खास बात नहीं बल्कि अकसर मूर्ख अमीरज़ादों की यह आदत होती है कि जो लोग उनकी इज़्ज़त के ख्याल से उनके साथ किसी किस्म की मुरव्वत करते हैं तो वह बजाय इसके कि उसका एहसान मानें, उस रियाअत को अपना हक़ समझते हैं। इस वजह से शेख़ी बढ़ती जाती है और वह तरह तरह की ख़राबियों का कारण होती है।

अब हम इस कहानी को ख़तम करते हैं और ख़तम करनेके साथ सिर्फ़ इतनी प्रार्थना और है कि यह कहानी और इसके अलावा जो और नावेल (उपन्यास) हमने लिखे हैं, उनमें किसी में ऐसा कोई वाक़ा नहीं है जिससे दिल व दिमाग़पर कोई भीषण परिणाम जैसे हौल, या भय या दुर्बलता वग़ैरह के पैदा हो सकें क्योंकि असल मंशा हमारा उपन्यास लिखने से रहने सहने के ढंग के हाल-चाल इकट्ठा करना है।

हमारे नावेल न ट्रेजेडी हैं न कामेडी। न हमारे हीरो (नायक) तलवार से ख़तम हुए न इनमें से किसी ने ख़ुद-कुशी (आत्म-हत्या) की। न मिलाप हुआ, न बिछोह।

हमारे नावेलों को मौजूदा ज़माने का इतिहास समझना चाहिये। उम्मेद है कि यह इतिहास फ़ायदेमंद साबित हो और लोग हमें दुआएँ देकर याद करें।

— समाप्त —